भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण

एक अनुशीलन

भगवान अरिष्टनेमि

और

कर्मयोगी श्रीकृष्ण

भगवान महावीर पच्चीस सौं वीं निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

भगवान् अरिष्टनेमि
और
कर्मयोगी श्रीकृष्ण
एक अनुशीलन

लेखक

राजस्थानकेसरी प्रसिद्धवक्ता पं० प्रवर श्रद्धेय
सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनिजी म० के सुशिष्य
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराड़ा, (राजस्थान)

समर्पण

जिनके अमर वात्सल्य का सरस व सुमधुर चिन्तन-पाथेय प्राप्त कर, मैं अपनी जीवन-यात्रा में साहित्य साधना कर रहा हूँ, उन्हीं, परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव राजस्थान केसरी, प्रसिद्धवक्ता, पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के कर कमलों में सभक्ति, सविनय।

—देवेन्द्र मुनि

प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशन में अर्थ सहयोगी

मांगीलालजी चुन्नीलालजी सोलंकी

c/o रतनचन्द हस्तीमल ५०६ रविवार पेठ

सराफा बाजार पूना नं० २ (महाराष्ट्र)

भूमिका

यह लोक या विश्व जड़ चेतनात्मक है। अनादिकाल से इस विश्व में चेतन और जड़का अद्भुत खेल खेला जा रहा है। विश्व के इन दोनों मूल-भूत तत्वों में जैन धर्म ने अनन्त शक्ति मानी है। जड़ या पुद्गल की अनन्त-शक्ति तो आज भौतिकविज्ञान द्वारा सर्वविदित हो रही है। चैतन्य की अनन्तशक्ति का साक्षात्कार भारतीय मनीषियो ने बहुत पहले ही किया था। उन्होंने कठोर साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। समय-समय पर ऐसे अनेक महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने आत्मा के अनन्त ज्ञान-दर्शन और आनन्द को प्राप्त कर जगत के जीवों के कल्याण के लिए धर्म या आध्यात्म का विशिष्ट सन्देश प्रसारित किया। ऐसे महापुरुषों में जैन तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी उल्लेखनीय हैं। ये दोनों महापुरुष यदु कुल में उत्पन्न हुए थे एवं ये दोनों समकालीन ही नहीं, एक कुटुम्ब के ही थे। राजा समुद्रविजय के पुत्र भगवान् अरिष्टनेमि थे और समुद्रविजय के लघुभ्राता वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। जैन आगमों में इन दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध के अनेकों उल्लेख प्राप्त हैं। परवर्ती ग्रन्थों में तो इन दोनों के विस्तृत जीवन चरित्र भी पाये जाते हैं अतः इन दोनों के संयुक्त जीवन चरित्र का जो यह विशिष्ट ग्रन्थ विद्वान् मुनिवर्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने बड़े परिश्रम व अध्ययन से तैयार किया है, वह बहुत ही समुचित एवं उपयोगी कार्य है।

विश्व में अनन्त प्राणी हैं। उन सबमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। महाभारत में श्री व्यासजी ने बहुत ही जोरदार शब्दों में यह घोषणा की है कि मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ और कोई भी (प्राणी) नहीं है। जैन आगम उत्तराध्ययन सूत्र में भी चार दुर्लभ वस्तुओं में पहली दुर्लभता मनुष्यत्व की ही बतलायी

धर्मप्रवर्तक महापुरुषों को यहां की जनता, सर्वोत्कृष्ट आराध्य व पूज्य मानती रही है। उनका जहां भी जन्म हुआ, तपस्या व साधना की, जहां-जहां भी धर्मप्रचार किया एवं सिद्धि या निर्वाण प्राप्त किया वे सभी स्थान उन महापुरुषों की पावन स्मृति में 'तीर्थ' रूप में मान्य हुए। भगवान अरिष्टनेमि का जन्मस्थान शौरीपुर एवं दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाण स्थान गिरनार तीर्थ रूप में मान्य हुए, उनकी जन्मतिथि, दीक्षा, केवलज्ञान एवं निर्वाण तिथि कल्याणक के रूप में मान्य हुई। उनके माता पिता भी, महापुरुषों के जन्मदाता के रूप में यशोभागी बने। महापुरुषों की वाणी का तो अत्यधिक आदर होना स्वाभाविक ही है। वास्तव में कल्याण पथ-प्रदर्शक उस वाणी ने असंख्य व्यक्तियों का उद्धार किया है। उनके मंगलमय व प्रेरणादायक प्रवचनों में दुष्टजनों को शिष्ट बना दिया, पापी को धर्मी और पतित को पावन बना दिया। अतः महापुरुषों के प्रति आदर और भक्ति-भावना होना बहुत ही आवश्यक एवं उपयोगी है। महापुरुषों के जीवन प्रसंगों से जो बोध-पाठ मिलता है, वह अन्य हजारों ग्रन्थों से भी नहीं मिल सकता। इसलिए उनके पावन चरित्र एक नहीं, अनेकों लिखे गये। उनके गुणवर्णन एवं स्तुतिरूप में हजारों-लाखों रचनाएं भारत के कोने-कोने में और सभी प्रकार की भाषाओं में रची जाती रही हैं।

भगवान अरिष्टनेमि का जीवन चरित्र भी बड़ा प्रेरणादायक रहा है। उनका पशुओं की करुण पुकार सुनकर विना व्याहे ही ससुराल से लौट जाना और सर्व संग परित्याग करके साधकीय-दीक्षा ग्रहण कर लेना तो प्रेरणादायक है ही, पर सती राजुल या राजमती ने भी जो सतीत्व का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया वह संसारी जनों को भी बहुत ही आकर्षक व आदरणीय है, फलतः नेमि-राजुल के प्रसंग को लेकर सैकड़ों बारह-मासे लिखे गये। रास, चौपाई, लुहर, स्तवन सज्झाय गीत आदि विविध प्रकार की रचनाएं हजारों की संख्या में प्राप्त हैं। घर-घर में व जन-जन के कंठ में नेमि-राजीमती के पावनगीत गाये जाते रहे हैं। ऐसे महान तीर्थंकर का जीवन चरित्र आधुनिक शैली में लिखा जाना बहुत ही आवश्यक था। यह आवश्यक-शुभकार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी द्वारा सम्पादित हुआ देखकर अवश्य ही प्रसन्नता होती है। पुरानी शैली के जीवन चरित्र तो अनेकों लिखे जा चुके हैं। पर आज के शिक्षित व्यक्तियों के लिए पठनीय ग्रन्थ लिखा जाना बहुत आवश्यक था जिसकी पूर्ति बड़े सुन्दर रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा ही देखकर बड़ा हर्ष हो रहा है।

जैन धर्म में सर्वोच्च स्थान तीर्थंकर महापुरुषों का है। वे जन्म जन्मान्तरों की साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं और अपने विशिष्ट ज्ञान द्वारा (जगह जगह निरन्तर विचरण कर) जनकल्याण का मार्ग प्रकाशित करते हैं। ऐसे निस्वार्थ-उपगारी महापुरुष मान्य और पूज्य होने ही चाहियें। परम्परागत दीर्घ समय तक उनके धर्म शासन से असंख्य व्यक्ति लाभान्वित होते रहते हैं। साधु साध्वी, श्रावक श्राविका इस चतुर्विध संघरूप तीर्थ की स्थापना करने से ही वे तीर्थंकर कहलाते हैं। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में इस भरत क्षेत्र में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। इस अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव हुए, जो आदिनाथ आदीश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है। भारतीय संस्कृति के वे महान पुरस्कर्त्ता थे। जन जीवन में अनेकों विद्याओं, कलाओं का प्रचार तथा लिपि और अंक विद्या का प्रवंतन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से ही हुआ।

ऋषभदेव के बाद बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि, तेइसवें भगवान पार्श्वनाथ, चौबीसवें भगवान महावीर स्वामी विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। आचार्य भद्रबाहु के कल्पसूत्र में पश्चातुपूर्वी से भगवान महावीर, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान नेमिनाथ और भगवान ऋषभदेव का संक्षेप में चरित्र वर्णित हैं। इससे इन चार तीर्थंकरों की विशेष प्रसिद्धि का सहज ही पता चल जाता है। आगे चलकर सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ जो पहले चक्रवर्ती भी थे, उनकी भी प्रसिद्धी बढ़ी, फलतः २४ में से ५ तीर्थंकरों को मुख्यता देते हुए अनेकों कवियों ने अपनी रचना के प्रारम्भ में उन्हें स्मरण किया है, नमन किया है और श्रीमद् देवचन्द्रजी, जो महानतत्वज्ञ और आध्यात्मिक महापुरुष अठारवीं शताब्दी में हो गये हैं, उनके रचित भक्तिभावपूर्ण 'स्नात्र पूजा' में भी इन पाँचों तीर्थंकरों को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है।

भगवान अरिष्टनेमि सम्बन्धी फुटकर विवरण तो स्थानांग और समवायांग सूत्र में प्राप्त है और ज्ञाता, अन्तगड, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में भी वर्णन मिलता है पर व्यवस्थित रूप से कल्पसूत्र में ही सर्वप्रथम संक्षिप्त जीवनी मिलती है। उसके बाद तो आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि आदि अनेक ग्रन्थों में आपका पावन चरित्र प्राप्त होता है। आगे चलकर उन्हीं के आधार से एवं गुरु परम्परा से प्राप्त तथ्यों पर से स्वतन्त्र चरित्र ग्रन्थ अनेकों लिखे गये। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उनमें एक उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई है।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जैन आगमादि ग्रन्थों के अनुसार बहुत ही शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका वर्चस्व बड़ा ही जबरदस्त था। वे बहुमुखी

प्रतिभा के धनी और अपने समय के बहुमान्य महापुरुष थे । ज्ञातासूत्र के द्रौपदी सम्बन्धी 'अपरकंका' नामक १६ वें अध्ययन में श्रीकृष्ण का जो वर्णन मिलता है, उससे वे कितने तेजस्वी, वीर, शक्तिसम्पन्न और मान्य पुरुष थे, इसका सहज ही पता चल जाता है। पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के स्वयंवर में श्रीकृष्ण वासुदेव आदि बड़े-बड़े राजा महाराजा पहुँचते हैं। वहां लिखा गया है कि उनके परिवार में समुद्रविजय आदि दशदशार्ह, बलदेव आदि पांच महावीर, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ राजकुमार, शांब आदि साठ हजार दुर्दान्त बलवान, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा वहां पधारे थे ।

नारद द्वारा द्रौपदी की प्रशंसा सुनकर धातकी खंड द्वीप के पूर्ववर्ती दक्षिण भरत की अपरकंका नगरी का पद्मनाभ राजा, मित्रदेव द्वारा द्रौपदी का अपहरण करता है । तब श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्ती के अनुरोध से अपरकंका पाण्डवों सहित जाते हैं और युद्ध में विजय प्राप्त कर द्रौपदी को वापस लाते हैं। उस समय पांचों पाण्डव युद्ध में हार जाते हैं, जब श्रीकृष्ण नरसिंह रूप धारण कर विजय प्राप्त करते हैं। लवणसमुद्र के अधिष्ठाता सुस्थितदेव श्रीकृष्ण के महान व्यक्तित्व के कारण ही रथ ले जाने का मार्ग (लवण समुद्र में) कर देता है । इससे मनुष्य तो क्या, देव भी उनकी धाक मानते थे व प्रभावित थे, सिद्ध होता है ।

पांच पाण्डव नौका से गंगा नदी पारकर जाते हैं, पर श्रीकृष्ण के लिए नौका को वापिस नहीं भेजते हैं, तब श्रीकृष्ण एक हाथ में घोड़ा, सारथी और रथ उठा लेते हैं और दूसरे हाथ से साढे बासठ योजन चौड़ी गंगा नदी को पार कर जाते हैं। ऐसा महान पराक्रम अन्य किसी में नहीं दिखाई देता। नौका वापिस न भेजने के कारण श्रीकृष्ण पाण्डवों पर कुपित होकर उनके रथों को एक लोहदण्ड द्वारा चूर्ण कर देते हैं और देश निकाला दे देते हैं। तब माता कुन्ती श्रीकृष्ण के पास द्वारका जाकर निवेदन करती है कि तुम्हारा साम्राज्य तो सब दक्षिणार्ध भरत तक फैला हुआ है अतः बताओ पाण्डव जाये कहां ? अन्त में जहां श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के रथों को चूर्ण किया था। वहां पाण्डु मथुरा बसाकर रहने लगते हैं। पाण्डवों के समर्थक (महाभारत के युद्ध आदि प्रसंग में) श्रीकृष्ण का अनोखा व्यक्तित्व महाभारत सम्बन्धी प्राकृत संस्कृत और अपभ्रंश और हिन्दी राजस्थानी में काफी रचनाएं की हैं। संघदास गणि रचित पांचवी शताब्दी के विशिष्ट प्राकृत ग्रन्थ-वसुदेवहिंडी में श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण और अनेक

कन्याओं से विवाह का वर्णन होने के साथ-साथ श्रीकृष्ण सम्बन्धी बहुत-सी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हैं।

प्राचीन जैनागमादि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेकों महत्वपूर्ण विवरण मिलते हैं। जो महाभारत पुराणादि जैनेतर ग्रन्थों में नहीं मिलते। जैन एवं पौराणिक ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन की बड़ी आवश्यकता है। दोनों के साहित्य के तटस्थ अध्ययन से अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आ सकेंगे।

श्रीकृष्ण नीति निपुण राजनेता, धर्म संस्थापक, सबके सुहृद व सहायक और महान शासक होने के साथ-साथ धर्मज्ञ भी थे। महाभारत और पुराणों से उनके बहुरंगी व्यक्तित्व का बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है। महाभारत में युद्ध के समय कर्मयोगी कृष्ण ने अर्जुन को जो (भगवद् गीता के रूप में) उपदेश दिया था वह विश्वसाहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध और बड़ा प्रेरणा-दायी व मार्गदर्शक है। गीता में वैदिक हिंसात्मक यज्ञ आदि का निषेध या विरोध किया गया है और जैन धर्म से बहुत सी मिलती जुलती बातें प्रति-पादित की गई हैं। गीता में समन्वय की प्रधानता दिखाई देती है। जैन धर्म में भी अनेकान्त दृष्टि की मुख्यता है। भगवद्गीता में अनासक्ति एवं समन्वय को महत्व दिया गया है। जो जैन धर्म का भी मर्म या प्राण है। श्री संतबालजी ने जैनदृष्टिकोण से गीता पर विस्तृत विवेचन लिखा है और आचाराङ्ग आदि से गीता वाक्यों की तुलना की है। जोधपुर के श्री दौलतरामजी मेहता ने तो गीता की जैन दृष्टि से गहरी छान-बीन की है। उनका मंथन किया हुआ ग्रन्थ प्रकाशित होने पर बहुत से नये तथ्य प्रकाश में आवेंगे।

महाभारत में भी अनेक स्थल जैन मान्यताओं से मिलते-जुलते हैं। महाभारत के विशिष्ट अभ्यासी श्री उपेन्द्रराय सांडेसरा की एक पुस्तक महाभारत अने उत्तराध्ययन सूत्र प्रकाशित हो चुकी है। श्रीचन्द जी राम-पुरिया ने भी महाभारत का बड़ा अच्छा अध्ययन किया है और भी कई विद्वानों के महाभारत सम्बन्धी ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं, उससे उस पर जैन प्रभाव पुष्ट होता है। श्री दौलतराम जी मेहता ने लिखा है कि गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सचित्र हिन्दी अनुवाद वाले महाभारत के शान्तिपर्व अध्याय २७८ के श्लोक २ में अरिष्टनेमि का नाम और श्लोक ३ में उनको परम ब्राह्मण कहा गया है। जैनागम मान्य समुद्रविजय आदि अनेक उल्लेखनीय व्यक्तियों का विवरण महाभारत में जानबूझकर छोड़ दिया गया प्रतीत होता है।

श्रीकृष्ण भागवत धर्म या वैष्णव सम्प्रदाय के पुरस्कर्त्ता हैं। करीब दो ढाई हजार वर्षों से भागवत धर्म और विष्णु पूजा का प्रचार भारत में निरन्तर दिखाई देता है। श्रीकृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तित हैं। करोड़ों व्यक्ति श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं। भागवतधर्म वैष्णवसम्प्रदाय अहिंसा प्रधान है, इधर अहिंसा जैन धर्म का सबसे बड़ा सिद्धान्त है ही। इस तरह भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के मन्तव्य बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। यह दोनों महापुरुषों के घनिष्ठ सम्बन्ध का प्रबल प्रमाण है। श्रीकृष्ण को हुए पांच हजार से कुछ वर्ष अधिक हुए हैं। अतः जैन मान्यता अरिष्टनेमि के समय सम्बन्धी विचारणीय बन जाती है। क्योंकि दोनों समकालीन व्यक्ति थे तो उनका समय भी एक ही होना चाहिए।

करीब ३०-३५ वर्ष पूर्व, जैन आगमादि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण का जो महत्व-पूर्ण चरित्र मिलता है उसकी ओर मेरा ध्यान गया और मैंने एक शोधपूर्ण लेख शान्तिनिकेतन की हिन्दी विश्वभारती पत्रिका में 'जैन आगमों में श्रीकृष्ण' के नाम से प्रकाशित करवाया जिससे जैनेतर विद्वानों का भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी जैनग्रन्थोक्त सामग्री की ओर ध्यान आकर्षित हो सके। उसके कुछ वर्ष बाद माननीय विद्वान डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के अनुरोध से उस लेख में कुछ और परिवर्तन और परिवर्धन करके श्री कन्हैया-लाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ में मैंने अपना निबन्ध छपवाया। तदनन्तर श्रीचन्दजी रामपुरिया की एक स्वतन्त्र लघु पुस्तिका तेरापंथी महासभा कलकत्ता से प्रकाशित हुई। इस विषय पर सबसे महत्वपूर्ण कार्य श्रीदेवेन्द्र मुनि जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप में सम्पन्न किया है। उन्होंने जैन सामग्री के अतिरिक्त बौद्ध और पौराणिक सामग्री का भी उपयोग करके श्रीकृष्ण का पठनीय जीवन चरित्र इस ग्रन्थ में संकलित किया है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्व निर्विवाद है।

उन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन से पूर्व इसकी पाण्डुलिपि मुझे अवलोकनार्थ भिजवादी थी और मैंने कुछ संशोधन व सूचनाएँ उन्हें लिख भेजी थीं। जिनका उपयोग उन्होंने अपनी पाण्डुलिपि में कर लिया है। फिर भी कुछ बातें संशोधनीय रह गयी हैं उनकी थोड़ी-सी चर्चा कर देना यहां आवश्यक समझता हूं।

(१) पृष्ठ ६१ में ऋग्वेद में 'अरिष्टनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है। वह भगवान अरिष्टनेमि के लिए आया है, लिखा गया है। पर मेरी राय में वहां के अरिष्टनेमि शब्द का अर्थ अन्य ही होना चाहिए।

(२) पृष्ठ ६२ में इसी तरह घोर अंगिरस भगवान नेमिनाथ का ही नाम है। यह धर्मानन्दकोशाम्बी के मतानुसार लिखा गया है। मेरे विचार में वह भी ठीक नहीं है। घोर अंगिरस व नेमिनाथ भिन्न भिन्न व्यक्ति थे।

(३) पृष्ठ ७२ में वसुदेव को वृष्णिकुल और समुद्रविजय को अन्धककुल का लिखा गया है। पर वे दोनों भाई-भाई थे अतः दोनों के कुलों के नाम अलग-अलग देने से भ्रम होता है। वास्तव में वे दोनों अन्धक वृष्णिकुल के ही थे ऐसा मेरा मत है।

(४) मुनि नथमल जी के द्वारा सम्पादित उत्तराध्ययन के अभिमतानुसार मुनि जी ने भी द्वैधराज्य की बात लिखी है पर वह भी विचारणीय है। उत्तराध्ययन सूत्र में समुद्रविजय और वसुदेव दोनों को सौरियपुर का राजा लिखा है। इसी से यह धारणा बनायी गयी है। पर समुद्रविजय बड़े थे और वसुदेव उनके छोटे भाई थे अतः दोनों को राजा लिखने से द्वैध राज्य नहीं होता। आज भी बड़ा भाई महाराजा कहलाता है और छोटे भाई को महाराज कहा जाता है। उदाहरणार्थ—बीकानेर के महाराजा रायसिंह के सुप्रसिद्ध छोटे भाई कविवर पृथ्वीराज महाराज के रूप में प्रसिद्ध थे।

(५) पृष्ठ १८२ में मीराबाई के नरसी के मायरे का उल्लेख व उद्धरण है—जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के अनुसार दिया गया है, वह मायरा भी मीराबाई के द्वारा रचित नहीं है।

और भी कुछ बातें संशोधनीय हैं और कहीं-कहीं मुद्रण दोष की भी अशुद्धियां रह गयी है जिसका परिष्कार शुद्धि पत्र में किया गया है, पर इससे ग्रन्थ के महत्व में कोई कमी नहीं आती। ग्रन्थ वास्तव में ही उच्चकोटि का एवं मौलिक है।

विद्वान् मुनिवर्य देवेन्द्र मुनि जी ने इधर कुछ वर्षों में काफी अच्छे-अच्छे महत्वपूर्ण और विविध विद्याओं के ग्रन्थ लिखकर हिन्दी जैन साहित्य की उल्लेखनीय अभिवृद्धि की है। अभी उनसे और बहुत सी आशाएं है। जैन समाज उनके ग्रन्थों के पठन-पाठन में अधिकाधिक रुचि दिखाये और वे जैन साहित्य का भण्डार निरन्तर भरते रहें यही शुभ कामना है।

बीकानेर
ता० २०-३-७१

— **अगरचन्द नाहटा**

●

लेखक की कलम से

भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण ये दोनों ही भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान सितारे है। दोनों संस्कृति के सजग प्रहरी ही नहीं, अपितु संस्कृति और सभ्यता के निर्माता हैं। जैनसंस्कृति में जिस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि की गौरव-गाथाएँ मुक्त कंठ से गाई गई हैं उसी प्रकार स्नेह की स्याही में डुबोकर श्रीकृष्ण के अनलोढ्त व्यक्तित्व को भी उट्टङ्कित किया गया है। मैं साधिकार कह सकता हूँ कि श्रीकृष्ण के जीवन के उज्ज्वल प्रसंग जो जैन साहित्य में उपलब्ध हैं वे प्रसंग न तो वैदिक साहित्य में प्राप्त हैं और न बौद्ध साहित्य में ही। जैन साहित्य में कृष्ण को भगवान् नहीं, किन्तु महामानव माना है, वासुदेव और श्लाघनीय पुरुष कहा है। एक गरीब वृद्ध व्यक्ति को ईंट उठाते हुए देखकर उनका हृदय दया से द्रवित हो जाता है, तीन खण्ड के अधिपति होने पर भी वे स्वयं ईंट उठाते हैं यह प्रसंग उनकी मानवता की भावना को उजागर करता है। वे माता-पिता व गुरुजनों को भक्ति भावना से विभोर होकर नमस्कार करते हैं, उनकी आज्ञा का पालन करते हैं यह उनकी विनम्र भावना का परिचायक है। वासुदेव होने के कारण वे स्वयं संयम साधना को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, पर अपने पुत्र, पत्नी तथा अन्य परिजनों को त्याग वैराग्य व संयम की प्रेरणा देते हैं, यह उनके विचारों की निर्मलता का द्योतक है। मृत कुत्ते के शरीर में कीड़े कुलबुला रहे हैं, भयंकर दुर्गन्ध से मस्तिष्क फटने जा रहा है, उस समय भी वे उसके चमचमाते हुए दाँतों को ही देखते हैं यह उनके गुणानुरागी स्वभाव को प्रदर्शित करता है, इस प्रकार अनेक प्रसंग हैं जो उनकी मानवता को महत्ता को प्रदर्शित करते हैं। वे सारे प्रसंग इतने सुन्दर और रसप्रद हैं, कि उनके अभाव में श्रीकृष्ण के तेजस्वी व्यक्तित्व को समझा नहीं जा सकता। वैदिक साहित्य में श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार से लिखा गया है। प्राचीन और मध्ययुग के साहित्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का निरुपण

है उन्हें राधा और गोपी-वल्लभ के रूप में चित्रित किया गया है पर जैन साहित्य में उनके उस रूप के दर्शन नहीं होते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ जो जैन साहित्य में हैं, वैसी ही घटनाएं शब्दों के हेर-फेर के साथ वैदिक साहित्य में भी हैं। किस संस्कृति ने किससे कितना लिया यह कहना अत्यन्त कठिन है। महापुरुष सूर्य, चांद, हवा और पानी की तरह होते हैं वे किसी भी सम्प्रदाय विशेष की धरोहर नहीं होते। उनका सार्वभौमिक व्यक्तित्व प्रत्येक के लिए अनमोल निधि है। महापुरुष को सम्प्रदाय विशेष के घेरे में आवद्ध करना उनके प्रति अन्याय करना है। साम्प्रदायिक ग्लास के चश्में को उतार कर ही महापुरुष को देखने से उनका वास्तविक रूप समझ में आ सकता है। मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में किसी सम्प्रदाय विशेष की आलोचना प्रत्यालोचना न कर श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप को रखने का प्रयास किया है, मैं कहाँ तक इस प्रयास में सफल हो सका हूँ इसका निर्णय प्रबुद्ध पाठकों पर छोड़ता हूँ।

यह पूर्ण सत्य है कि जितना श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में विस्तार से लिखा गया है उतना भगवान् श्रीअरिष्टनेमि के सम्बन्ध में नहीं। वैदिक और अन्य साहित्य से जितने भी प्रमाण मुझे प्राप्त हुए हैं वे भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता शीर्षक में दिये हैं। वैदिक हरिवंशपुराण में भी महर्षि वेद व्यास ने श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई माना है। उन्होंने यदुवंश का परिचय देते हुए लिखा है कि महाराजा यदु के सहस्रद, पयोद, कोष्टा, नील और अंजिक नाम के देवकुमारों के तुल्य पांच पुत्र हुए।[1] क्रोष्टा की माद्री नामक द्वितीय रानी से युधाजित् और देवमीढुष नामक दो पुत्र हुए।[2] क्रोष्टा के ज्येष्ठ पुत्र युधाजित् के वृष्णि और अंधक नाम के दो पुत्र हुए। वृष्णि के भी दो पुत्र हुए, एक का नाम स्वफल्क और दूसरे का नाम चित्रक था।[3] स्वफल्क के अक्रूर नामक महादानी पुत्र हुआ।[4] चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत, सुबाहु, बहुबाहु नामक बारह पुत्र और श्रविष्ठा तथा श्रवणा नामक दो पुत्रियाँ हुईं।[5] यहां पर यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रीमद्भागवत में वृष्णि

---

१. हरिवंश पर्व १, अध्याय ३३, श्लोक १

२. हरिवंश १।३४।१-२

३. वहीं० १।३४।३

४. वहीं० १।३४।११

के दो पुत्रों का नाम स्वफल्क तथा चित्ररथ (चित्रक) दिया है। चित्ररथ (चित्रक) के पुत्रों का नामोल्लेख करते हुए "**पृथुर्विपृथु धन्याद्याः**" लिखा है, ऊपर पाठ में "**पृथुविदूरथाद्याश्च**" का उल्लेख कर केवल तीन और दो पुत्रों के नाम लिखकर आगे प्रभृति लिख दिया है।

हरिवंश में अरिष्टनेमि के वंश वर्णन के साथ ही श्रीकृष्ण का वंश वर्णन भी दिया है। यदु के क्रोष्टा, क्रोष्टा के द्वितीय पुत्र देवमीढुष के पुत्र शूर और उनके पुत्र वसुदेव प्रभृति दश पुत्र तथा पृथुकीर्ति आदि पांच पुत्रियां हुई।[6] वसुदेव की देवकी नामक रानी से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ।[7]

सारांश यह है कि वैदिक परम्परा की दृष्टि से भी श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि ये दोनों चचेरे भाई सिद्ध होते हैं। दोनों के परदादा युधाजित् और देवमीढुष सहोदर थे।

" वैदिक और जैन संस्कृति की परम्परा में यही अन्तर है कि जैन साहित्य में अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय वसुदेव के बड़े भ्राता हैं जबकि वैदिक हरिवंशपुराण के अभिमतानुसार चित्रक और वसुदेव चचेरे भाई थे। चित्रक का ही श्रीमद्भागवत में चित्ररथ नाम आया है। संभव है चित्रक या चित्ररथ का ही अपर नाम समुद्रविजय रहा हो। दोनों परम्परा के नामों में जो अन्तर है उसके मूल कारण अनेक हो सकते हैं।

हमने ग्रन्थ के परिशिष्ट में वंश का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने हेतु चार्ट भी दिया है। तथा भौगोलिक परिचय आदि भी।

भगवान् श्री अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण की तुलना करने पर कुछ महत्व-पूर्ण तथ्य हमारे सामने आते हैं।

---

५. हरिवंश पर्व १, अ० १४, श्लोक १४-१५

६. देवभागस्ततो जज्ञे, तथा देवश्रवा पुनः।
अनाधृष्टि कनवको, वत्सवानथ गृंजिमः ॥२१
श्यामः शमीको गण्डूषः पंच चास्य वरांगनाः।
पृथुकीर्ति पृथा चैव, श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः ॥२२
राजाधिदेवी च तथा, पंचैते वीरमातरः ॥२३

—हरिवंश, १।३४।

७. वसुदेवाच्च देवक्यां, जज्ञे शौरि महायशाः।

—हरिवंश पुराण पर्व १, अ० ३५, श्लोक ७।

श्रीकृष्ण गोपाल थे, उन्होंने बाल्यकाल में गौएं चराई थीं, जिस कारण वैदिक परम्परा में गौ-पूजा का महत्व स्थापित हुआ। गाय को माता और वृषभ को पिता माना गया।[८] गाय से रहित स्थान को श्मशान माना गया।[९] आज भारतवर्ष में गौवध का सबसे बड़ा पाप माना जाता है वह हमारी दृष्टि से श्रीकृष्ण की देन है।

भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण से भी आगे बढ़े, उन्होंने गाय को ही नहीं, अपितु समस्त प्राणी के वध को हेय बताया, उन्होंने समस्त प्राणियों की रक्षा पर बल दिया। मांसाहार का तीव्र विरोध किया, जिसके फलस्वरूप जैन परम्परा ही नहीं, अपितु वैदिक परम्परा भी मांसाहार को बुरा मानने लगी

यह पूर्ण सत्य है कि श्रीकृष्ण की अपेक्षा राम अधिक मर्यादा पालक थे इसीलिए उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम कहा जाता है। वाल्मीकिरामायण और रामचरितमानस के अभिमतानुसार श्रीराम शिकार करते थे और मांसाहार भी, किन्तु वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में भी श्रीकृष्ण के जीवन का एक भी ऐसा प्रसंग नहीं आया है जिसमें श्रीकृष्ण ने शिकार खेला हो और मांसाहारी किया हो, यह उन पर भगवान् अरिष्टनेमि का ही प्रभाव था, उनके प्रभाव से ही उनके मन में मांसाहार के प्रति घृणा थी।

समस्त भारतवर्ष में गौ पालन और गोशालाओं का महत्व दिखलाई दे रहा है वह श्रीकृष्ण की देन है। गुजरात-सौराष्ट्र और राजस्थान आदि में गौओं के साथ ही अन्य प्राणियों को भी रखा जाता है, उनका भी पालन-पोषण किया जाता है जिसे पांजरापोल कहते हैं, यह भगवान् अरिष्टनेमि की देन है।

श्रीकृष्ण के जीवन में प्रवृत्ति की प्रधानता थी इसीलिए वे कर्मयोगी के नाम से विश्रुत हैं जबकि अरिष्टनेमि के जीवन में निवृत्ति की प्रधानता है। वैदिक संस्कृति प्रवृत्तिप्रधान है और श्रमण संस्कृति निवृत्ति प्रधान। इस प्रकार दोनों ही महापुरुषों में भारतीय संस्कृति, जो श्रमण और वैदिक संस्कृति का मिला-जुला रूप है वह देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भगवान् श्री ऋषभदेव गृहस्थाश्रम में प्रवृत्तिप्रधान रहे और

---

८. (क) **गोर्मेमाता ऋषभः पिता**

(ख) **गावो विश्वस्य मातरः**

९. **धेनोश्च रहितं स्थानं श्मशानमेव मुच्यते**

साधु अवस्था में निवृत्ति प्रधान। उनके गृहस्थाश्रम का अनुकरण श्रीकृष्ण के जीवन में देखा जा सकता है और उनके सन्त जीवन का अनुसरण भगवान् अरिष्टनेमि के जीवन में।

राजीमती का जीवन महिला समाज के मुख को उज्ज्वल करने वाला है। वह जिसे उपास्य मान लेती है उससे शारीरिक सम्बन्ध न होने पर भी वह अपने हृदयधन के महान् निश्चय का स्वागत करती है। केवलज्ञान प्राप्त होने पर जब अरिष्टनेमि आत्म-कल्याण का मार्ग उपस्थित करते हैं तब वह आमंत्रण को स्वीकार कर प्रेम का उदात्तीकरण उपस्थित करती है।

रथनेमि को आत्म-साधना में पुनः स्थिर कर राजीमती ने उस परम्परा की रक्षा की जो ब्राह्मी और सुन्दरी ने चलाई थी। पुरुष को कर्तव्य बोध का सुन्दर पाठ पढ़ाया। उसने अपनी रक्षा ही नहीं की, अपितु रथनेमि के पतन को भी बचा लिया।

ग्रन्थ में एक प्रसंग आया है जिसका स्पष्टीकरण करना मैं आवश्यक समझता हूँ—प्रतिवासुदेव जरासंध के भय से यादव मथुरा को छोड़कर सौराष्ट्र में पहुँचते हैं और वहां पर वे समुद्र के किनारे नव्य भव्य द्वारिका का निर्माण करते हैं। यादव श्रीकृष्ण को वहां का अधिपति बनाते हैं। वर्षों तक श्रीकृष्ण वहां पर राज्य करते हैं किन्तु जरासंध को इसका पता भी नहीं चलता, अन्त में व्यापारियों के द्वारा सूचना प्राप्त होने पर वह युद्ध के लिए प्रस्थित होता है।

प्रस्तुत घटना को पढ़कर वैज्ञानिक युग में पले-पुसे मानवों के मानस में यह सहज ही शंका उद्बुद्ध हो सकती है कि यह किस प्रकार संभव है कि वर्षों तक पता ही न चले। आज वैज्ञानिक साधनों की प्रचुरता व सुलभता से दुनिया इतनी सिमट कर लघु हो गई है कि मानव घर के बंद कमरे में बैठकर भी रेडियो व टेलीविजन के द्वारा विश्व के समाचार सुन सकता है, देख सकता है। फोन के द्वारा हजारों मील की दूरी पर बैठे हुए व्यक्ति से वार्तालाप कर सकता है। एरोप्लेन और राकेट के द्वारा कुछ ही समय में आधुनिक विश्व की प्रदक्षिणा कर सकता है। पर जिस युग की यह घटना है उस युग में इस प्रकार के वैज्ञानिक साधन सुलभ नहीं थे। यहाँ तक कि आस-पास के गाँवों तक का भी पता नहीं चलता।

लाओत्से ने तीन हजार वर्ष पहले चीन के गाँव की घटना लिखी है—"हमारे पिता तथा वृद्ध व्यक्ति कहते हैं कि हमारे गाँव के पास एक नदी बहती

है, उस नदी के दूसरे किनारे पर एक गाँव है। सायंकाल उस गाँव का धुंआ दिखाई देता है। रात्रि में उस गाँव के कुत्ते भौंकते हुए सुनाई देते हैं, किन्तु हमारे गांव से उस गाँव का कोई सम्बन्ध नहीं है। आज तक उस गाँव को देखने के लिए हमारे गाँव से कोई गया नहीं और न उस गाँव से हमारे गाँव को देखने के लिए ही कोई लोग आए।"

प्रस्तुत प्रसंग के प्रकाश में जब हम उपर्युक्त घटना देखते हैं तो उसकी सत्यता में हमें संशय नहीं हो सकता।

ग्रन्थ लिखते समय ग्रन्थाभाव के कारण मेरे सामने अनेक समस्याएं उपस्थित हुईं। ग्रन्थ का 'पूर्वभव-विभाग' प्रेस में जा चुका उसके पश्चात् लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित द्वितीय आचार्य हरिभद्र का रचित 'नेमिनाहचरिउ" का प्रथम भाग प्राप्त हुआ अतः मैं जानकर के भी उसका उपयोग न कर सका, द्वितीय भाग प्रेस में होने से वह मुझे प्राप्त न हो सका। अन्य कुछ दिगम्बर व श्वेताम्बर ग्रन्थ भी मुझे प्राप्त न हो सके। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जैन व अजैन विद्वानों ने इतना अधिक लिखा है कि उन सभी ग्रन्थों को प्राप्त कर उनका उपयोग करना अत्यन्त कठिन कार्य है, तथापि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों के आलोक में तुलनात्मक दृष्टि से जो कुछ लिख गया हूँ वह उपयोगी सिद्ध होगा—यह मैं मानता हूँ।

महामहिम परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी म० का असीम अनुग्रह, आशीर्वाद तथा पथ-प्रदर्शन मेरे जीवन को सदा आलोकित करता रहा है। उनकी अपार कृपा दृष्टि के कारण ही मैं साहित्यिक क्षेत्र में प्रगति कर रहा हूँ, अतः गुरुदेव के प्रति किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करूं। आभार प्रदर्शन के लिए मेरे शब्द कोष में उचित शब्द ही नहीं हैं। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि उनका आशीर्वाद सदा मिलता रहे और मैं प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता रहूँ।

परमादरणीया सतिशिरोमणि मातेश्वरी प्रतिभामूर्ति श्री प्रभावती जी म० तथा प्रिय बहिन परम विदुषी साध्वीरत्न श्री पुष्पवती जी साहित्यरत्न की प्रबल-प्रेरणा रही कि भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पर मैं शोधप्रधान ग्रन्थ लिखूं, उनकी निरन्तर प्रेरणा के कारण मैं ग्रन्थ प्रस्तुत कर सका हूँ। माँ और बहिन के प्रेम भरे आग्रह को मैं कैसे टाल सकता था?

आगम प्रभावक स्नेह सौजन्यमूर्ति श्री पुण्यविजय जी म० को तथा जैन साहित्य विकास मण्डल के अधिपति साहित्यप्रेमी सेठ अमृतलाल कालीदास

एवं मण्डल के संचालक पं० सुबोधचन्द भाई को विस्मृत नहीं हो सकता जिन्होंने मुझे ग्रन्थ उपलब्ध किये तथा लम्बे समय तक उपयोग करने के लिए उदारता बतलाई।

ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को महान् साहित्यकार पं० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने तथा सुप्रसिद्ध इतिहासकार व पुरातत्ववेत्ता श्री अगरचन्द जी नाहटा ने आदि से अन्त तक अवलोकन कर मुझे अपने अनमोल सुझाव दिये तथा परिष्कार किया और साथ ही मेरे आग्रह को सन्मान देकर श्रीयुत नाहटा जी ने मननीय भूमिका लिखी तदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ। यहां अमर भारती के यशस्वी सम्पादक स्नेहमूर्ति श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' को भी भूल नहीं सकता जिन्होंने ग्रन्थ को मुद्रण कला की दृष्टि से ही सुन्दर नहीं बनाया, पर प्रूफ संशोधन कर मेरे भार को हलका किया है। अन्त में उन सभी लेखकों का व ग्रन्थकारों का आभार मानता हूँ कि जिनसे मुझे सहयोग व मार्गदर्शन मिला है।

—देवेन्द्र मुनि

जैन-भवन
सायन, बम्बई
दिनाङ्क ५ मार्च १९७१
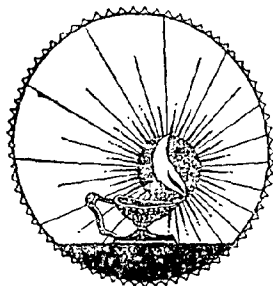
अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड—भगवान अरिष्टनेमि १-१५८

१ तीर्थंकर और वासुदेव १
२ अरिष्टनेमि : पूर्वभव १७
३ भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता ५७
४ जन्म एवं विवाह प्रसंग ६६
५ साधक जीवन ६५
६ तीर्थंकर जीवन १०१

द्वितीय खण्ड—कर्मयोगी श्रीकृष्ण १५६-३४८

७ भारतीय साहित्य में कर्मयोगी श्रीकृष्ण १५६
८ कंस : एक परिचय १८५
९ गौकुल और मथुरा में श्रीकृष्ण १६७
१० द्वारिका में श्रीकृष्ण २२१
११ जरासंध का युद्ध २५१
१२ द्रौपदी का स्वयंवर और अपहरण २६७
१३ महाभारत का युद्ध २८७
१४ जीवन के विविध प्रसंग ३११
१५ जीवन की सांध्य-वेला ३२५
उपसंहार ३४४

परिशिष्ट ३४६-४२२

१ भौगोलिक परिचय ३४६
२ हरिवंश ३८४
३ वंश परिचय ३८७
४ पारिभाषिक शब्द-कोष ३६५
५ प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रंथ सूची ४०६
६ लेखक की महत्वपूर्ण कृतियां ४१८

प्रथम खण्ड

जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता होता है वह तीर्थंकर कहलाता है। जैन परिभाषा के अनुसार तीर्थ शब्द का अर्थ—धर्मशासन है। जो संसार समुद्र से पार करने वाले धर्म तीर्थ की संस्थापना करते हैं, वे तीर्थंकर कहलाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये धर्म हैं, इस धर्म को धारण करने वाले श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका हैं। इस चतुर्विध संघ को भी तीर्थ कहा गया है। इस तीर्थ की जो स्थापना करते हैं उन विशिष्ट व्यक्तियों को तीर्थंकर कहते हैं।

संस्कृत साहित्य में तीर्थ शब्द 'घाट' के लिए भी व्यवहृत हुआ है। जो घाट के निर्माता हैं वे तीर्थंकर कहलाते हैं। सरिता को पार करने के लिए घाट की कितनी उपयोगिता है, यह प्रत्येक अनुभवी व्यक्ति जानता है। संसार रूपी एक महान् नदी है। उसमें कहीं पर क्रोध के मगर मच्छ मुंह फाड़े हुए हैं। कहीं पर मान की मछलियाँ उछल रही हैं। कहीं पर माया के जहरीले सांप फुत्कार मार रहे हैं तो कहीं पर लोभ के भंवर हैं। इन सभी को पार करना कठिन है। साधारण साधक विकारों के भंवर में फंस जाते हैं। कषाय के मगर उन्हें निगल जाते हैं। अनन्त दया के अवतार तीर्थंकर प्रभु ने साधकों की सुविधा के लिए धर्म का घाट बनाया, अणुव्रत और महाव्रतों की निश्चित योजना प्रस्तुत की। जिससे प्रत्येक साधक इस संसार रूपी भयंकर नदी को सहज ही पार कर सकता है।

तीर्थ का एक अर्थ—पुल भी है। चाहे जितनी बड़ी से बड़ी नदी क्यों न हो, यदि उस पर पुल है, तो निर्बल से निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थंकरों ने संसार रूपी नदी को पार करने के लिए धर्म शासन अथवा साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूपी संघ-पुल का निर्माण किया। आप अपनी शक्ति व भक्ति के अनुसार इस पुल पर चढ़कर संसार को पार कर सकते हैं। धार्मिक साधना के द्वारा अपने जीवन को पावन बना सकते हैं। तीर्थंकरों के शासन काल में हजारों लाखों व्यक्ति आध्यात्मिक साधना कर जीवन को परम पवित्र बनाकर मुक्त होते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव ने सर्वप्रथम तीर्थ की संस्थापना की अतः उन्हें तीर्थंकर

कहना चाहिए, परन्तु उनके पश्चाद्वर्ती अन्य तेवीस महापुरुषों को तीर्थकर क्यों कहा जाय ?

कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि धर्म की व्यवस्था जैसी एक तीर्थकर करते हैं, वैसी ही व्यवस्था दूसरे तीर्थकर भी करते हैं, अतः एक ऋषभदेव को ही तीर्थकर मानना चाहिए अन्य को नहीं।

उल्लिखित प्रश्नों के उत्तर में निवेदन है कि एक तीर्थकर ने जैसा निरूपण किया, सर्वथा वैसा ही निरूपण दूसरा तीर्थकर नहीं करता। यदि वह पूरी तरह एकसदृश ही कथन करता है तो तीर्थकर नहीं है। जिसका मार्ग देश काल पात्र आदि की भिन्नता के कारण पूर्व तीर्थङ्कर से भिन्न होता है—सर्वथा एक सदृश नहीं होता वही तीर्थङ्कर कहलाता है। जब पुराने घाट ढह जाते हैं, वे विकृत अथवा अनुपयुक्त हो जाते हैं, तब नवीन घाट निर्माण किये जाते हैं। जब धार्मिक विधि-विधानों में विकृति आ जाती है, तब तीर्थङ्कर विकृतियों को नष्ट कर अपनी दृष्टि से पुनः धार्मिक विधानों का निर्माण करते हैं। तीर्थङ्करों का शासन-भेद इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। इस सम्बन्ध में जिज्ञासु पाठकों को लेखक का 'भगवान् पार्श्व: एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ का उपक्रम अवश्य देखना चाहिए।[३]

सच्चा सुख समझकर पागल की तरह उसके पीछे दौड़ रहा था, किन्तु एक दिन महान् पुरुषों के संग से उसके ज्ञान-नेत्र खुल गये। भेद विज्ञान की उपलब्धि होने से, तत्त्व की अभिरुचि जागृत हुई। सही व सत्य स्थिति का उसे परिज्ञान हुआ।

किन्तु कितनी ही बार ऐसा भी होता है कि मिथ्यात्व के पुनः आक्रमण हो जाने से उसके ज्ञान नेत्र धुंधले हो जाते हैं और वह पुनः मार्ग को विस्मृत कर कुमार्ग पर आरूढ हो जाता है, और लम्बे समय के पश्चात् पुनः सत् मार्ग पर आता है। तब वासना से मुंह मोड़कर साधना को अपनाता है, उत्कृष्ट तप व संयम की आराधना करता हुआ एक दिन भावों की परम निर्मलता से तीर्थङ्कर नाम-कर्म का बंधन करता है और फिर वह तृतीय भव में तीर्थङ्कर बनता है।[४] किन्तु यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जब तक तीर्थङ्कर का जीव संसार के भोग-विलास में उलझा हुआ है, सोने के सिंहासन पर आसीन है तब तक वह वस्तुतः तीर्थंकर नहीं है, तीर्थङ्कर बनने के लिए, उस अन्तिम भव में भी राज्य-वैभव को छोड़ना होता है। श्रमण बनकर पहले महाव्रतों का पालन करना होता है। एकान्त शान्त, निर्जन स्थानों में रहकर आत्म-मनन करना होता है, भयंकर से भयंकर उपसर्गों को शान्त भाव से सहन करना होता है। जब साधना से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म नष्ट होते हैं तब केवल ज्ञान. केवल दर्शन की प्राप्ति होती है। उस समय वे साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ को संस्थापना करते हैं तब तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

उत्तारवाद :

वैदिक परम्परा का विश्वास अवतारवाद में है। गीता के अभिमतानुसार ईश्वर अज, अनन्त, और परात्पर होने पर भी अपनी अनन्तता को, अपनी माया शक्ति से संकुचित कर शरीर को धारण करता है। अवतारवाद का सीधा-सा अर्थ है ईश्वर का मानव के रूप में उतरना—मानव शरीर में जन्म लेना। गीता की दृष्टि से ईश्वर तो मानव बन सकता हैं, किन्तु मानव कभी ईश्वर नहीं बन सकता। ईश्वर के अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य है सृष्टि

४. समवायाङ्ग सूत्र १५७

में चारों ओर जो अधर्म का अंधकार छाया हुआ होता है उसे नष्ट कर धर्म का प्रकाश किया जाय। साधुओं का परित्राण, दुष्टों का नाश, और धर्म की स्थापना की जाय।[५]

जैन धर्म का विश्वास अवतारवाद में नहीं, उत्तारवाद में है। अवतारवाद में ईश्वर को स्वयं मानव बनकर पुण्य और पाप करने पड़ते हैं। भक्तों की रक्षा के लिए उसे अधर्म भी करना पड़ता है। स्वयं राग-द्वेष से मुक्त होने पर भी भक्तों के लिए उसे राग भी करना पड़ता है और द्वेष भी। वैदिक परम्परा के विचारकों ने इस विकृति को ईश्वर की लीला कहकर उस पर आवरण डालने का प्रयास किया है। जैनदृष्टि से मानव का उत्तार होता है। वह प्रथम विकृति से संस्कृति की ओर बढ़ता है फिर प्रकृति में पहुँच जाता है। राग-द्वेष युक्त जो मिथ्यात्व की अवस्था है, वह विकृति है। राग-द्वेष मुक्त जो वीतराग अवस्था है वह संस्कृति है। पूर्ण रूप से कर्मों से मुक्त जो शुद्ध-सिद्ध अवस्था है, वह प्रकृति है। सिद्ध बनने का तात्पर्य है कि अनन्तकाल के लिए अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति में लीन हो जाना। वहां कर्म बंध और कर्म बंध के कारणों का सर्वथा अभाव होने से जीव पुनः संसार में नहीं आता। उत्तारवाद का अथ है मानव का विकारी जीवन से ऊपर उठकर भगवान के अविकारी जीवन तक पहुँच जाना, पुनः उसमें कदापि लिप्त न होना। तात्पर्य यह है कि जैनधर्म का तीर्थङ्कर ईश्वरीय अवतार नहीं है। जो लोग तीर्थङ्करों को अवतार मानते हैं, वे भ्रम में हैं। जैनधर्म का यह वज्र आघोष है कि प्रत्येक व्यक्ति साधना के द्वारा आन्तरिक शक्तियों का विकास कर तीर्थङ्कर बन सकता है। तीर्थङ्कर बनने के लिए जीवन में आन्तरिक शक्तियों का विकास परमावश्यक है।

---

५. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

—श्री मद्‌भगवद् गीता

तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त आत्माओं में अन्तर :

जैन धर्म का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त होने वाली आत्माओं में आन्तरिक दृष्टि से कोई फर्क नहीं है। केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रभृति आत्मिकशक्तिया। दोनों में समान होने के बावजूद भी तीर्थङ्कर में कुछ बाह्य विशेषताएं होती हैं। उन बाह्य विशेषताओं (अतिशयों) का वर्णन इस प्रकार है[६]—

१ मस्तक के केश, दाढी, मूंछ, रोम और नखों का मर्यादा से अधिक न बढ़ना।
२ शरीर का स्वस्थ और निर्मल रहना।
३ रक्त और मांस का गाय के दूध के समान श्वेत रहना।
४ पद्म गंध के समान श्वासोच्छ्वास का सुगन्धित होना।
५ आहार और शौच क्रिया का प्रच्छन्न होना।
६ तीर्थङ्कर देव के आगे आकाश में धर्म चक्र रहना।
७ उनके ऊपर तीन छत्र रहना।
८ दोनों ओर श्रेष्ठ चंवर रहना।
९ आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक-मणि का बना पादपीठ वाला सिंहासन होना।
१० तीर्थङ्कर देव के आगे आकाश में इन्द्रध्वज का चलना।
११ जहां-जहां पर तीर्थङ्कर भगवान ठहरते हैं या बैठते हैं वहां पर उसी क्षण पत्र, पुष्प, और पल्लव से सुशोभित छत्र, ध्वज, घंट, एवं पताका सहित अशोकवृक्ष का उत्पन्न होना।
१२ कुछ पीछे मुकुट के स्थान पर तेजोमंडल का होना, तथा अन्धकार होने पर दस दिशाओं में प्रकाश होना।
१३ जहां-जहां पर तीर्थङ्कर पधारें वहा के भूभाग का समतल होना।
१४ जहां-जहां पधारें वहां-वहां कंटकों का अधोमुख हो जाना।
१५ जहाँ-जहाँ पधारें वहाँ ऋतुओं का अनुकूल होना।
१६ जहाँ-जहाँ पधारें वहाँ-वहाँ संवर्तक वायु द्वारा एक योजन पर्यन्त क्षेत्र का शुद्ध होना।

---

६. समवायाङ्ग ३४, सूत्र, १ पृ० ७१, मुनि कमल सम्पादित

१७ मेघ द्वारा रज का उपशान्त होना।

१८ जानुप्रमाण देवकृत पुष्पों की वृष्टि होना एवं पुष्पों के डंठलों का अधोमुख होना।

१९ अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध, एवं स्पर्श का न होना।

२० मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध, एवं स्पर्श का प्रकट होना।

२१ योजन पर्यन्त सुनाई देने वाला हृदयस्पर्शी मधुर स्वर होना।

२२ अर्धमागधी भाषा में उपदेश करना।

२३ उस अर्धमागधी भाषा का उपस्थित आर्य-अनार्य, द्विपद-चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरिसृपों की भाषा में परिणत होना तथा उन्हें हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी प्रतीत होना।

२४ पूर्वभव के वैरानुवन्ध से वद्धदेव, असुर, नाग सुपर्ण यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, और महोरग का अरिहंत के समीप प्रसन्नचित्त होकर धर्म सुनना।

२५ अन्यतीर्थिकों का नत मस्तक होकर वन्दना करना।

२६ तीर्थङ्कर के समीप आकर अन्यतीर्थिकों का निरुत्तर हो जाना।

२७ जहाँ-जहाँ तीर्थङ्कर भगवंत पधारें वहां-वहां पच्चीस योजन पर्यन्त ईति—चूहे आदि का उपद्रव न होना।

२८ प्लेग आदि महामारी का उपद्रव न होना।

२९ स्वचक्र (स्व-सेना) का विप्लव न करना।

३० परचक्र (अन्य राज्य की सेना) का उपद्रव न होना।

३१ अधिक वर्षा न होना।

३२ वर्षा का अभाव न होना।

३३ दुर्भिक्ष न होना।

३४ पूर्वोत्पन्न उत्पात तथा व्याधियों का उपशान्त होना।

इस प्रकार अनेक लोकोपकारी सिद्धियां तीर्थङ्करों की होती हैं। अन्य साधारण मुक्त होने वाली आत्माओं में इन सिद्धियों का अभाव होता है। वे प्राय: तीर्थकरों के समान धर्म प्रचारक भी नहीं होते। वे स्वयं अपना विकास कर मुक्त हो जाते हैं किन्तु जन-जन के अन्तर्मानस पर चिरस्थायी व अक्षुण्ण आध्यात्मिक प्रभाव तीर्थङ्कर

की तरह नहीं जमा पाते। तीर्थङ्कर और अन्य मुक्त आत्माओं में जो यह अन्तर है वह देहधारी अवस्था में ही रहता है। देहमुक्त अवस्था में नहीं।

प्रस्तुत अवसर्पिणीकाल में चौवीस तीर्थङ्कर हुए हैं। पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव थे और चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर। चौवीस तीर्थङ्करों के सम्वन्ध में सब से प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूलप्रथमानुयोग में था, पर आज वह अनुपलब्ध है। आज सबसे प्राचीन उल्लेख समवायाङ्ग,[७] कल्पसूत्र[८] और आवश्यक निर्युक्ति[९] में मिलता है। उसके पश्चात् त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्र, चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, महापुराण-उत्तरपुराण आदि ग्रन्थों में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्वतंत्र रूप से भी एक-एक तीर्थङ्कर पर आचार्यों ने संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। अगले पृष्ठों में उन्हीं-प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाश में बावीसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही भगवान् अरिष्टनेमि के समय में पैदा हुए वासुदेव श्री कृष्ण के सम्वन्ध में भी चिन्तन किया जायेगा। यहाँ हमें अब संक्षेप में यह देखना है कि भारतीय संस्कृति में वासुदेव का क्या स्थान रहा है।

जैन दृष्टि में वासुदेव :

जैन साहित्य में चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रति वासुदेव और नौ बलदेव, इन तिरेसठ व्यक्तियों को श्लाघनीय और उत्तम पुरुष माना है। स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, आवश्यक निर्युक्ति आदि में उन सभी के नाम,[१०] उनके माता पिता के नाम,[११] उनकी

---

७. चउव्वीसं देवाहिदेवा, पण्णत्ता तं जहा—
उसभ-अजित-संभव-अभिणंदण-सुमइ-पउमप्पह-सुपास-चंदप्पह-सुविधि-सीअल--सिज्जंस-वासुपुज्ज-विमल--अणंत--धम्म-संति-कुंथु--अर-मल्ली-मुणिसुव्वय-नमि-नेमी-पास-वद्धमाणा।

—समवायांग—२४

८. कल्पसूत्र

९. आवश्यक निर्युक्ति ३६९

लम्वाई, चौड़ाई और आयुष्य के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। समवायांग में वलदेव-वासुदेव का परिचय देते हुए लिखा है—

"बलदेव और वासुदेव दशारवंश के मंडन सदृश थे। वे उत्तम थे, मध्यम थे, प्रधान थे, और वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली और सुशोभित शरीर वाले थे। वे कान्त, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप और सुखशील थे, उनके पास प्रत्येक व्यक्ति सुख रूप से पहुँच सकता है। सभी लोग उनके दर्शन के पीपासु हैं। वे महाबली हैं। वे अप्रतिहत और अपराजित हैं। शत्रु के मर्दन करने वालों तथा हजारों शत्रुओं का मान नष्ट कर देने वाले हैं। दयालु, अमत्सरी, अचपल और अचण्ड हैं। मृदु मंजुल, और मुस्कराते हुए वार्तालाप करने वाले हैं। उनकी वाणी गंभीर, मधुर और सत्य होती है। वे वात्सल्य युक्त होते हैं, शरण योग्य हैं। उनका शरीर लक्षण व चिह्न युक्त तथा सर्वाङ्ग सुन्दर होता है। वे चन्द्र की तरह शीतल हैं, ईर्ष्या रहित हैं। प्रकाण्ड दंडनीति वाले हैं। गंभीर दर्शन वाले हैं। वलदेव तालध्वज और वासुदेव गरुड़ध्वज हैं। वे महान् धनुष्य का टंकार करने वाले हैं। वे महान् वल में

---

१०. तिविट्ठे य दुविट्ठे य सयंभूपुरिसुत्तमे पुरिससीहे य तह पुरिसपुंडरीए दत्ते नारायणे कण्हे। —समवायाङ्ग १५८

(ख) आवश्यक निर्युक्तिभाष्य गाथा ४०

११. (क) जंवुद्दीवे णं दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए नववलदेव नववासुदेव-पियरो होत्था, तं जहा, गाहाओ-पयावई य वंभो, सोमो रुद्दो सिवो महासिवो य। अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वासुदेवो॥ जंवुद्दीवे णं दीवे भारहेवासे इमीसे ओसप्पिणीए णव-वासुदेव-मायरो होत्था, तं जहा— गाहा-मियावई उमा चेव पुहवी सीया य अम्मया। लच्छिमई सेसमई केकई देवई तहा॥ —समवायांग-१५८

(ख) स्थानांग ६ स्थान, सू० ८८.

(ग) आवश्यक निर्युक्ति गा० ४११, निर्युक्ति की गाथा में रुद्र के बाद सोम का नाम है।

माता के नाम के लिए आवश्यक निर्युक्ति गा० ४०६ देखो

समुद्र की तरह हैं। रणांगण में दुर्धर धनुर्धर हैं। वे धीर पुरुष हैं और युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले हैं। महान् कुल में पैदा हुए हैं। वज्र के भी टुकड़े कर दें ऐसे वलवान् हैं। वे अर्ध भरत के अधिपति होते हैं। वे सौम्य हैं। राजवंश के तिलक के समान हैं, अजित हैं, अजित रथ हैं। वलदेव हाथ में हल रखते हैं। वासुदेव धनुष्य रखते हैं। वासुदेव शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते हैं। उनके मुकुट में श्रेष्ठ उज्ज्वल शुक्ल विमल कौस्तुभमणि होती है। कान में कुंडल होते हैं जिससे उनका मुख-शोभायमान रहता है। उनकी आँखें कमल सदृश होती हैं। उनकी छाती पर एकावली हार लटका रहता है। उनके श्रीवत्स का लांछन है। सर्व ऋतु में संभवित ऐसे पंचरंगी सुगंधित सुन्दर पुष्पों की माला उनके गले में शोभायमान होती है, उनके अंगोपांग में ८०० प्रशस्त चिह्न शोभित होते हैं। वे मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र के सदृश ललितगति होते हैं। क्रौंच पक्षी के मधुर और गंभीर शारद स्वर जैसा उनका निनाद है। वलदेव नीले रंग के और वासुदेव पीले रंग के वस्त्र पहनते हैं। वे तेजस्वी, नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र हैं। वे नरवृषभ हैं और देवराज इन्द्र के समान हैं। राजलक्ष्मी से शोभित वे राम और केशव दोनों भाई-भाई होते हैं।[१२]

जैन साहित्य में वसुदेव के पुत्र को ही वासुदेव नहीं कहा गया है। नौ वासुदेवों में केवल एक श्री कृष्ण ही वसुदेव के पुत्र हैं, अन्य नहीं। वासुदेव यह एक उपाधि विशेष है। जो तीन खण्ड के अधिपति होते हैं, जिनका तीन खण्ड पर एकच्छत्र साम्राज्य होता है वे वासुदेव कहलाते हैं। उन्हें अर्धचक्री भी कहा जाता है। यह पद निदानकृत होता है।[१३] वासुदेव के पूर्व प्रतिवासुदेव होते हैं, उनका भी तीन खण्ड पर साम्राज्य होता है। जीवन की सांध्यवेला में वे अधिकार के नशे में वेभान बन जाते हैं और अन्याय अत्याचार करने लगते हैं। उस अत्याचार को मिटाने के लिए वासुदेव उनके साथ युद्ध करते हैं। युद्ध में प्रतिवासुदेव वासुदेव से पराजित

---

१२. समवायांग १५८
(ख, आवश्यक निर्युक्ति गा० ४१५

१३. समवायांग १५८

होते हैं। युद्ध के मैदान में वासुदेव के हाथ से प्रतिवासुदेव की मृत्यु होती है, दूसरे शब्द में कहा जाय तो स्वचक्र से उनका हनन होता है। प्रति वासुदेव के तीन खण्ड के राज्य को वासुदेव प्राप्त कर लेते हैं। वासुदेव महान् वीर होते हैं, कोई भी युद्ध में उन्हें पराजित नहीं कर सकता। कहा जाता है कि वासुदेव अपने जीवन में तीन सौ साठ युद्ध करते हैं, पर कभी भी किसी युद्ध में वे पराजित नहीं होते। वासुदेव में बीस लाख अष्टापदों की शक्ति होती है,[१४] किन्तु वे शक्ति का कभी भी दुरुपयोग नहीं करते। जैन परम्परा में वासुदेव को भी ईश्वर का अंश या अवतार नहीं माना है। वासुदेव शासक है, पर उपास्य नहीं। तिरेसठ श्लाघनीय पुरुषों में चौबीस तीर्थङ्कर ही उपास्य माने गये हैं। वासुदेव भी तीर्थङ्कर की उपासना करते हैं। भौतिक दृष्टि से वासुदेव उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक होते हैं, पर निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से चतुर्थ गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते।[१५] वासुदेव स्वयं तीर्थङ्कर व श्रमणों की उपासना करते हैं। श्री कृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि के परमभक्त थे। जब अरिष्टनेमि द्वारका पधारते तब श्री कृष्ण अन्य कार्य छोड़कर उन्हें वन्दन के लिए अवश्य जाते। अरिष्टनेमि से श्री कृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे, अतः वे उनकी उपासना करते थे।[१६]

वैदिक दृष्टि में वासुदेव :

वैदिक परम्परा में वासुदेव को विष्णु का अवतार माना है।[१७]

महाभारत में वासुदेव का उल्लेख आया है किन्तु वासुदेव के स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। वासुदेव वैदिक परम्परा में कब से उपास्य रहे हैं इसको बताने के लिए भण्डारकर,[१८] लोकमान्य तिलक[१९] डाक्टर राय चौधरी[२०] आदि विद्वानों ने पाणिनि व्याकरण[२१] के सूत्रों का प्रमाण प्रस्तुत किया है, और इसके आधार पर उन्होंने बताया है कि ईसा के सात शताब्दी पूर्व वासुदेव की उपासना प्रचलित हो गई थी।[२२] किन्तु वासुदेव की भक्ति का विकसित रूप हमें महाभारत में मिलता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'सूरदास' में स्पष्ट लिखा है कि 'वासुदेव भक्ति का तात्विक निरूपण महाभारत के काल में ही प्रचलित हुआ।'[२३] विष्णु और वासुदेव का ऐक्य भी महाभारतकार ने स्वीकार किया है। वे विष्णु को ही वासुदेव का रूप मानते हैं।[२४]

वैदिक परम्परा में श्री कृष्ण का अपर नाम ही वासुदेव है। डा० भण्डारकर का अनुमान है कि 'वासुदेव' भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम था।[२५] महाभारत के शान्तिपर्व में यह कह गया है कि सात्वत या भागवत धर्म का सबसे पहले कृष्ण वासुदेव ने अर्जुन को उपदेश दिया।[२६] यहाँ पर वासुदेव और श्री कृष्ण दो पृथक व्यक्ति न होकर एक ही हैं, किन्तु डॉ० भण्डारकर ने इन दोनों

---

१८. Collected Works of Sir R. G. Bhandarkar Voi. IV, P. 415

१९. गीता रहस्य पृ० ५४६-४७, बालगंगाधर तिलक

२०. H. Raychaudhary, The Early History of the Vaishanava Seet. P. 24

२१. 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'—पाणिनि अष्टाध्यायी ४।३।९८ सूत्र के वसुदेवक शब्द से वसुदेव की भक्ति करने वाला सिद्ध होता है।

२२. देखिए—राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० ११

२३. सूरदास (भक्ति का विकास) पृ० २६

२४. महाभारत, शान्तिपर्व अ० ३४७, श्लो० ९४

२५. H Raychaudhuri, Early History of the Vaishanava Seet, P. 44

२६. महाभारत, शान्तिपर्व अ० ३४७-४८

को पृथक्-पृथक् स्वीकार किया है। उनकी यह धारणा है कि प्रारंभ में ये दो पृथक अस्तित्व वाले देवता थे जो बाद में एक हो गये। इस मत को परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। महाभारत में जिस श्री कृष्ण का वर्णन है वह एक ही है, उसके नाम चाहे अनेक हों। गीतारहस्य में तिलक ने स्पष्ट लिखा है—'हमारा मत यह है कि कृष्ण चार पाँच नहीं हुए हैं, वे केवल एक ही ऐतिहासिक पुरुष थे।'[२७] हेमचन्द्र रायचौधरी ने अपने वैष्णवधर्म सम्बन्धी ग्रन्थ में कृष्ण और वासुदेव का पार्थक्य स्वीकार नहीं किया है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने कीथ के लेख का उद्धरण दिया है।[२८]

वासुदेव और श्री कृष्ण का सामंजस्य घटित करने के लिए यह भी कहा जाता है कि वासुदेव मुख्य नाम था और 'कृष्ण' गोत्र-सूचक नाम के रूप में प्रयुक्त होता था। 'घटजातक' में वासुदेव के साथ कृष्ण या कान्ह एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उससे भिन्न व्यक्तित्व सूचित नहीं होता। दीघनिकाय के अनुसार वासुदेव का ही दूसरा नाम कृष्ण था।[२९] महाभाष्यकार पतंजलि ने एक स्थान पर लिखा है कि 'कृष्ण ने कंस को मारा और दूसरे स्थान पर लिखा है कि वासुदेव ने कंस को मारा।' इस कथन से यह ज्ञात होता है कि वासुदेव और श्रीकृष्ण एक ही हैं। महाभाष्य में वासुदेव शब्द चार वार और कृष्ण शब्द एक बार

---

२७. गीतारहस्य अथवा कर्मयोग, पृ० ५४८ (पाद टिप्पणी सहित) श्री वालगंगाधर तिलक

२८. "But it is impossible to accept the Statement that Krishna whom epic tradition ideutifies with vasudeo was originally an altogether diffesent individual. On the coutrary, all available evidence, Hindu, Buddhist, and Greek, points to the Correctness of the identity, and we agree with keith when he says that "the separation of Vasudeva and krishna as two eutities it is impossible to justify."

—H. Ray chaudhuri, early history of the Vaishanav Seet., P. 36

२९. देखिए हिन्दी साहित्य में राधा: पृ० ३१ से उध्धृत

आया है। पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि जैसे वैयाकरणों के ग्रन्थों में 'वासुदेवक' एवं "जघान कंस' किल वासुदेवः' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मकदूनिया के राजदूत मैगस्थनीज ने सात्वतों और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा कृष्ण को वासुदेव का पर्यायवाची मानते हैं।[30] आर. जी. भण्डारकर ने अपने वैष्णविज्म और शैविज्म ग्रन्थ में वासुदेव सम्बन्धी शिलालेखों का वर्णन किया है।[31]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक परम्परा में वासुदेव अनेक नहीं, अपितु एक ही हुए हैं। श्री कृष्ण को ही वहाँ वासुदेव कहा गया है।[32] किन्तु जैन परम्परा में वासुदेव नौ हुए हैं। श्री कृष्ण उन सभी में अन्तिम वासुदेव थे।[33] श्री कृष्ण को जैन और वैदिक दोनों ही परम्पराओं ने वासुदेव माना है। हम अगले अध्यायों में श्री कृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जैन और वैदिक दृष्टि से चिन्तन करेंगे।

---

३०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—
डा० रामकुमार वर्मा पृ० ४७२

३१. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर पृ० ४५

३२. वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जय। —गीता १०।३७

३३. नवमो वासुदेवो ऽयमिति देवा जगुस्तदा—हरिवंशपुराण ५५।६०

अरिष्टनेमि : पूर्वभव

●

- विराट् विश्व
- भारतीय दर्शन में आत्मतत्त्व का विवेचन
- धनकुमार और धनवती
- सौधर्म देवलोक में
- चित्रगति और रत्नवती
- माहेन्द्रकल्प में
- अपराजित और प्रीतिमती
- आरण्य
- शंख
- अपराजित
- अरिष्टनेमि

अरिष्टनेमि : पूर्वभव

●

विराट् विश्व :

भारत के मूर्धन्य मनीषियों ने इस विराट्विश्व के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएँ की हैं। चैतन्याद्वैतवादी वेदान्त दर्शन का अभिमत है कि यह विश्व चैतन्यमय ही है, किन्तु जैन दर्शन इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता। उसका स्पष्ट आघोष है कि यदि विश्व (प्रपंच) की उत्पत्ति के पूर्व केवल एक चैतन्य ब्रह्म ही था, अन्य वस्तु नहीं थी, तो यह प्रपंच रूप विश्व कहाँ से उत्पन्न हो गया ? शुद्ध ब्रह्म में विकार कैसे आ गया ? 'पर' के संयोग विना विकार आ ही नहीं सकता। यदि माया के कारण विकार आया है तो माया क्या है ? वह सत् रूप है या असत् रूप ? यदि वह सत् रूप है तो अद्वैतवाद किस प्रकार ठहर सकता है ? क्या ब्रह्म और माया यह द्वैत नहीं है ? यदि उसे नास्ति रूप या असत् माना जाय तो क्या वह आकाश कुसुमवत् नहीं है ? वह शुद्ध ब्रह्म को किस प्रकार विकृत कर सकती है ? जब वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है तो वह किस प्रकार कर्ता बन सकता है ? कर्ता वही बन सकता है जो भाव-रूप और क्रियाशील होगा। किन्तु इन प्रश्नों का सही समाधान वेदान्त दर्शन के पास नहीं हैं।

चार्वाक दर्शन चैतन्याद्वैतवादी दर्शन के विपरीत है। चार्वाक दर्शन नास्तिक दर्शन है। वह विश्व को जड़ रूप ही मानता है।

चैतन्य नामक पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता को वह स्वीकार नहीं करता। जैन दर्शन उसके सम्बन्ध में भी कहता है कि केवल प्रकृति ही है, आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है तो जड़ प्रकृति में यह सुख और दुःख की अनुभूति किसे होती है? ज्ञान-दर्शनमयी चेतना का उद्‌भव स्थान क्या है? यह विवेक और बोध क्या पृथ्वी आदि जड़ भूतों के धर्म हैं? आत्मा का निषेध करने वाला कौन है? जड़ प्रकृति में यह धर्म संभव नहीं हैं। जड़ वस्तुओं में, जैसे ईंट और ढेलों में, कोई अनुभूति नहीं होती, वे एक सदृश ही रहते हैं, उन्हें कितना भी पीटा जाय पर कीड़ों और मकोड़ों की तरह आत्म-रक्षा का प्रयत्न उनमें नहीं होता। चार्वाक दर्शन के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है।

जैन दर्शन विश्व को चैतन्य और जड़ रूप से उभयात्मक मानता है। वह अनादि और अनन्त है, अतीत काल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। पर्याय रूप से परिवर्तन होने पर भी द्रव्य रूप से सदा अवस्थित रहता है।

भारतीय दर्शन में आत्म तत्त्व का विवेचन :

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करनेवाले दर्शनों का भी आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में परस्पर एक मत नहीं है। सभी की विचार-धाराएं पृथक्-पृथक् दिशा में प्रवाहित हैं।

सांख्य दर्शन के अनुसार आत्मा कूटस्थ नित्य है। उसका अभिमत है कि आत्मा तीनों कालों में कूटस्थ—एक रूप रहता है, किञ्चित् मात्र भी उसमें परिवर्तन नहीं होता। जो सुख, दुःख आदि प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत होते हैं, वे आत्मा के नहीं, प्रकृतिजन्य बुद्धि के धर्म हैं। स्मरण रहे कि सांख्यदर्शन के अनुसार बुद्धि आत्मा का नहीं, प्रकृति का कार्य है।[1]

सांख्य दृष्टि से आत्मा अकर्ता है। किसी भी प्रकार के कर्म का कर्ता आत्मा नहीं, प्रकृति है। आत्मा तो केवल प्रकृति के दृश्य को देखने वाला द्रष्टा है, वह मूढ़ है, जो अपने आपको कर्ता मानता है।[2]

---

१. प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।

—सांख्यतत्त्वकारिका, २२

वेदान्त दर्शन भी आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है किन्तु उसकी यह धारणा है कि ब्रह्म रूप आत्मा एक है, सांख्य के समान अनेक नहीं। प्रत्यक्ष रूप में जो नाना भेद दिखाई दे रहे हैं वे भेद माया के कारण से हैं, आत्मा स्वतः अनेक नहीं है। पर ब्रह्म में जब माया का स्पर्श हुआ, तब वह पर ब्रह्म एक से अनेक हो गया। वेदान्त आत्मा को जहां एक मानता है, वहां उसे सर्वव्यापी भी मानता है। सम्पूर्ण विश्व में एक ही आत्मा ओतप्रोत है, आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसका यह सिद्धान्त-सूत्र है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन"

वैशेषिक दर्शन अनेक आत्माएँ स्वीकार करता है। और साथ ही उन सबको सर्वव्यापी भी मानता है। उसकी यह धारणा है कि आत्मा एकान्त नित्य है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। जो कुछ भी सुख-दुःख आदि परिवर्तन दिखलाई देता है वह आत्मा की अवस्थाओं में है, आत्मा में नहीं। ज्ञान आत्मा का गुण है, किन्तु वह आत्मा को बंधन में डालने वाला है। जब तक यह ज्ञान गुण सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता तब तक मोक्ष नहीं हो पाता। तात्पर्य यह है कि आत्मा स्वरूपतः जड़ है। आत्मा से पृथक् पदार्थ के रूप में माने जाने वाले ज्ञान गुण के सम्बन्ध से आत्मा चेतन है, स्वरूपतः नहीं।

बौद्ध दर्शन आत्मा को एकान्त क्षणिक ज्ञानसन्तान के रूप में मानता है। प्रत्येक ज्ञान-क्षण प्रतिपल-प्रतिक्षण नष्ट होता है और नूतन उत्पन्न होता है। किन्तु उनका प्रवाह अनादि अनन्त काल से चला आ रहा है। आध्यात्मिक साधना के द्वारा जब ज्ञानसन्तान अथवा चित्तसन्तति पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है, तब नवीन चित्त उत्पन्न नहीं होता और वही मुक्ति कहलाती है। इस प्रकार जब चित्तसन्तति नहीं रहेगी तब सुख-दुःख भी नहीं रहेगा।

इन सभी दर्शनों से भिन्न जैन दर्शन आत्मा के सम्बन्ध में अपनी मौलिक दृष्टि रखता है। उसका स्पष्ट मन्तव्य है कि आत्मा कूटस्थनित्य नहीं, अपितु परिणामी-परिवर्तनशील नित्य है। क्योंकि आत्मा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, और देव आदि नाना गतियों में

---

२. प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्माणि सर्वशः,
अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। —गीता ३।२७

परिभ्रमण करता है। कभी वह सुख सागर पर तैरता है, कभी दारुण दुःख भोगता है। कूटस्थनित्य मानने पर यह परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि सुख-दुःख को प्रकृति का धर्म माना जाय तो भी युक्ति-युक्त नहीं है, क्योंकि मृत शरीर में सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता। परिणामीनित्य मानने का तात्पर्य यह है है कि आत्मा कर्म के अनुसार नाना गतियों में परिभ्रमण करता है, नाना प्रकार के चोले धारण करता है, किन्तु आत्मतत्त्व के रूप में सदा स्थिर रहता है। जिस प्रकार सुवर्ण नाना आभूषणों का आकार धारण करता हुआ भी स्थायी रहता है।

जैन दर्शन वेदान्त दर्शन की तरह आत्मा को एक और सर्वव्यापी भी नहीं मानता, क्योंकि—सर्वव्यापी मानने पर सभी को एक सदृश सुख-दुःख का अनुभव होना चाहिए। सर्वव्यापी मानने से परलोक भी घटित नहीं हो सकता और न बंधन व मोक्ष ही हो सकता है।

वैशेषिक-दर्शन ने ज्ञान को आत्मा का स्वाभाविक गुण नहीं माना है, किन्तु जैन दर्शन ज्ञान को आत्मा का स्वाभाविक गुण मानता है। ज्ञान से ही जड़ और चैतन्य की भेद रेखा खींची जाती है। यदि आत्मा में से ज्ञान गुण निकल जाय तो फिर आत्मा, आत्मा नहीं है।

बौद्ध दर्शन ने आत्मा को क्षणिक माना है, किन्तु जैन दर्शन निरन्वय क्षणिक नहीं मानता। निरन्वय क्षणिक मानने से कर्म और कर्मफल का एकाधिकरण रूप सम्बन्ध भी सम्यक् रूप से घट नहीं सकता। एक व्यक्ति दुराचार का सेवन करे और दूसरे को दण्ड मिले यह कहाँ का न्याय है? दुराचार करने वाले का कृत कर्म निष्फल गया और उधर दुराचार न करने वाले दूसरे आत्मा को बिना कार्य किये ही फल भोगना पड़ा, यह उचित नहीं।

चार्वाक दर्शन चेतना को पाँच भूतों से उत्पन्न हुआ मानता है, पर उसका भी मन्तव्य तर्कसंगत नहीं है। भौतिक पदार्थों से आत्मा भिन्न है। पृथ्वी, पानी, तेज वायु और आकाश इन पाँच जड़ भूतों के संमिश्रण से चैतन्य आत्मा कैसे उत्पन्न हो सकता है? जड़ के संयोग से जड़ की ही उत्पत्ति होती है, चैतन्य की नहीं। कारण के अनुरूप ही कार्य होता है। उत्पन्न भी तो वही वस्तु होती है जो पहले न हो, किन्तु आत्मा तो पूर्व में था वर्तमान में है और भविष्य

में रहेगा। वह अनादि अनन्त है। आत्मा अरूपी है। रूप, रस, गंध आदि पुद्गल के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। दीपक स्व-पर-प्रकाशक होता है, उसे देखने के लिए दूसरे दीपक की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही आत्मा भी स्व-पर-प्रकाशक है। उसको निहारने के लिए किसी भी भौतिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। स्वानुभूति ही आत्मा की सिद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण है।

जैन दर्शन आत्मा को सर्वव्यापी नहीं, अपितु शरीरप्रमाण मानता है। दीपक के प्रकाश की भाँति उसके प्रदेशों का भी संकोच और विस्तार होता है।

आत्मा निश्चय दृष्टि से शुद्ध, निर्मल और विकाररहित है किन्तु कषाय-मूलक वैभाविक परिणति के कारण वह अनादि काल से कर्मबंधन से आबद्ध है। कर्म-मल से लिप्त होने के कारण ही वह अनादिकाल से संसार-चक्र में घूम रहा है। चौरासी लाख जीव-योनियों में भ्रमण कर रहा है। जैन दर्शन का मन्तव्य है कि आत्मा जो आज अल्पज्ञ है, वह साधना के द्वारा सर्वज्ञ बन सकता है। सम्यग्दर्शन के प्रादुर्भाव के पश्चात् यम नियम, तपश्चरण आदि सद्गुणों का विकास कर पूर्वबद्ध कर्मों को नष्ट कर वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो सकता है। जैनाचार्यों ने प्रस्तुत कथन का समर्थन करने के लिए ही तीर्थंकरों के पूर्वभवों का निरूपण किया है। तीर्थंकर का जीव एक दिन हमारे समान ही विषय वासना के चंगुल में फंसा हुआ था, किन्तु विषय-वासना से विमुख होकर साधना कर वह एक दिन जन से जिन बन जाता है। उपासक से उपास्य बन जाता है।

भगवान् अरिष्टनेमि प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के बावीसवें तीर्थंकर हैं। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, भव-भावना, नेमिनाहचरिउ, (आचार्य हरिभद्र द्वितीय) तथा कल्पसूत्र की टीकाओं में भगवान् अरिष्टनेमि के नौ भवों का वर्णन मिलता है और हरिवंश पुराण, उत्तरपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थों में पाँच भवों का उल्लेख है। भगवान् अरिष्टनेमि के जीव ने सर्वप्रथम धनकुमार के भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था। राजीमती के जीव के साथ भी उनका उसी समय से स्नेह सम्बन्ध चला आ रहा था। संक्षेप में उनके पूर्व भवों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाश में इस प्रकार है :—

रूप तो इतना अधिक सुन्दर है कि उसका लाखवां हिस्सा भी मैं चित्रित नहीं कर सका हूँ।[८] राजकुमारी धनवती ने भी चित्र देखा। वह उस पर मुग्ध हो गई। उसने उसी समय यह दृढ़ संकल्प किया कि "इस जीवन में मैं धनकुमार के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति के साथ पाणिग्रहण नहीं करूंगी।"

किसी समय राजा सिंह का एक दूत कार्यवश राजा विक्रम के दरबार में गया। उसने वहाँ पर युवराज धनकुमार को देखा। धनकुमार की सौन्दर्य-सुषमा को देखकर वह प्रभावित हुआ। लौटकर उसने राजा सिंह से निवेदन किया। राजा सिंह ने जब यह सुना तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने दूत को कहा—तुम्हीं जाकर राजा विक्रम से निवेदन करके राजकुमारी के साथ धनकुमार का सम्बन्ध निश्चित करो। किसी गुप्तचर ने राजकुमारी धनवती को सूचना दी कि दूत तुम्हारा सम्बन्ध निश्चित करने के लिए जा रहा है। धनवती ने अपनी अन्तरंग सहेली के द्वारा दूत को अपने पास बुलाया और अपने हृदय के उमड़ते हुए भावों को पत्र में लिखकर दूत को दिया।[९] दूत ने वहां जाकर प्रथम राजा विक्रम को राजा सिंह का सन्देश सुनाया,[१०] फिर एकान्त में धनकुमार को लेजाकर राजकुमारी धनवती का प्रेम-पत्र दिया। राजकुमारी के स्नेह-स्निग्ध पत्र को पढ़कर धनकुमार प्रेम से पागल हो गया।[११] उसने भी उसी समय

---

८. (क) अयं खलु मयालेखि युवा निरुपमाकृतिः।
धनोऽचलपुराधीशश्रीविक्रमधनात्मजः ॥
प्रत्यक्षं प्रेक्ष्य यस्तं हि प्रेक्षते चित्रवर्तिनम्।
स कूटलेखक इति मां निन्दति मुहुर्मुहुः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३५-३६,

(ख) भव-भावना पृ० १२

९. अर्पणीयो धनस्यायं मल्लेख इति भाषिणी।
धनवत्यार्पयत्तस्य लिखित्वा पत्रकं स्वयम् ॥
—त्रिषष्टि० ४।१।६६

१०. सोऽप्यूचे कुशलं सिंह इह मां प्राहिणोत्पुनः
सुतां धनवतीं दातुं त्वत्सुताय धनाय सः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।७२

राजकुमारी को पत्र लिखा, और प्रेम के प्रतीक के रूप में एक मुक्ता हार भी प्रेषित किया।[१२]

दूत सगाई निश्चित कर पुनः अपने स्थान पर लौट आया। राजकुमारी भी पत्र के साथ पुरस्कार को प्राप्त कर आनन्द से नाचने लगी।

योग्य समय पर राजकुमार का राजकुमारी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। दोनों एक दूसरे को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न थे।

एक समय राजकुमार उद्यान में घूमने के लिए गया। वहां उसने देखा चतुर्ज्ञानी वसुन्धर मुनि प्रवचन कर रहे हैं। वह भी मुनि के प्रवचन को सुनने के लिए बैठ गया। उस समय राजा विक्रम धन, धारिणी रानी और धनवती ये तीनों भी प्रवचन सुनने के लिए वहां पर उपस्थित हुए। प्रवचन पूर्ण होने पर राजा विक्रमधन ने मुनि से प्रश्न किया - भगवन्! यह धनकुमार जब गर्भ में आया था तब इसकी माता ने स्वप्न देखा था कि नौ बार आम का वृक्ष विभिन्न स्थानों पर लगाया गया, इसका क्या तात्पर्य है ?[१३]

---

११. प्रैषीदं धनवत्येति जल्पन् पत्रकमार्पयत्।
तन्मुद्रां धनकुमारः स्फोटयित्वा स्वपाणिना।
तत्पत्रं वाचयामास मदनस्येव शासनम्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।७६-७७

१२. विमृश्येति स्वहस्तेन लिखित्वा सोऽपि पत्रकम्।
धनवत्यै तस्य हस्ते हारेण सममार्पयत्॥—त्रिषष्टि०८।१।८०
(ख) इअ चिंतिऊण तेणवि तहेव भुज्जं सहत्थ परिलिहियं
तह मुत्ताहलहारो य पेसिओ तीए तस्स करे।

—भव-भावना १६०। पृ २०

१३. देशनान्ते व्यज्ञपयत्तं विक्रमधनो नृपः।
धने गर्भस्थिते माता स्वप्ने चूतद्रुमैक्षात॥
तस्योत्कृष्टोत्कृष्ट-फलस्यान्यत्रान्यत्र रोपणम्।
भविष्यति नवकृत इत्याख्यात्तत्र कोऽपि ना॥
नववारारोपणस्य कथयार्थं प्रसीद नः।
कुमारजन्मनाप्यन्यजज्ञातं स्वप्नफलं मया॥

—त्रिषष्टि० ८।१।१०१ से १०३

मुनि ने अपने विशिष्ट ज्ञान से बताया कि—यह धनकुमार इस भव से लेकर उत्तरोत्तर उत्कृष्ट नौ भव करेगा और नौवें भव में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में बावीसवां अरिष्टनेमि नामक तीर्थङ्कर होकर शाश्वत सिद्धि प्राप्त करेगा।[१४]

मुनि की भविष्यवाणी सुनकर सभी को परम प्रसन्नता हुई।[१५]

एक समय धनकुमार और धनवती क्रीडा करने के लिए एक रमणीय सरोवर के किनारे पहुँचे। क्रीडा करते हुए उनकी दृष्टि यकायक अशोक वृक्ष के नीचे गई जहां पर एक मुनि मूर्छित अवस्था में पड़े हुए थे। वे दोनों उसी समय मुनि के पास आये, उनके पैरों से रक्त बह रहा था। ओष्ठ आदि सूखे हुए थे। भक्ति भावना से विभोर होकर उन्होंने मुनि का उपचार किया। मूर्च्छा दूर हुई, मुनि स्वस्थ बने। राजकुमार ने विनम्रवाणी में प्रश्न किया—भगवन्! आपकी यह अवस्था कैसे हुई? आपका नाम क्या है?[१६]

मुनि ने बताया—मेरा नाम मुनिचन्द्र है।[१७] मैं सार्थ के साथ एक

---

१४. मनोऽवधिभ्यां स मुनिर्ज्ञात्वाऽख्यन्ते सुतो धनः।
भवेनानेन नवोत्कृष्टोत्कृष्टान् भवान् गमी॥
भवे च नवमेऽरिष्टनेमिर्नाम्नेह भारते।
द्वाविंशस्तीर्थकृद्भावी यदुवंशसमुद्भवः॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१०६-१०७

(ख) भव भावना ३०६-३०९ पृ० २७

१५. वहीं ८।१।१०८

१६. तत्राशोकतरोर्मूले शान्तो रस इवांगवान्।
घर्मश्रमतृषाक्रान्तः शुष्कताल्वोष्ठपल्लवः॥
स्फुटत्पादाब्जरुधिरसिक्तोर्वीको विमूर्च्छितः।
धनवत्या मुनिः कोऽपि पतन् पत्युः प्रदर्शितः॥
— त्रिषष्टि० ८।१।११२-११३

१७. संभ्रमादभिसृत्योभौ मुनिं तमुपचेरतुः।
शिशिरैरुपचारैस्तौ चक्रतुश्चाप्तचेतनम्॥
तं च स्वस्थं प्रणम्योचे धनो धन्योऽस्मि सर्वथा।
कल्पद्रुम इवावन्यां मया प्राप्तोऽसि संप्रति॥
—त्रिषष्टि० ८।११४।११५

गाँव से दूसरे गाँव विहार कर रहा था। एक दिन मुझे दिशाभ्रम हो गया, जिससे सार्थ का साथ छूट गया। मैं एकाकी रह गया। इस भयंकर जंगल में कभी इधर और कभी उधर भ्रमण करता रहा। तीक्ष्ण कांटों से पैर विंध गये। क्षुधा और तृषा से आक्रान्त होकर वेहोश हो गया। अव तुम्हारे उपचार से मैं स्वस्थ हुआ हूँ। मुनि ने उस समय धर्मोपदेश दिया। उपदेश को सुनकर सर्वप्रथम धनकुमार और धनवती के जीव को सम्यक् दर्शन की उपलब्धि हुई। उन्होंने उस समय श्रावक धर्म को स्वीकार किया।[१८]

यथा समय धनकुमार राजसिंहासन पर आसीन हुआ। एक समय धनकुमार राजा को उद्यानपाल ने सूचना दी कि वर्षों पहले आपके सम्वन्ध में जिस वसुन्धर मुनि ने भविष्यवाणी की थी आज वे नगर के वाहर उद्यान में पधारे हैं। धनकुमार और धनवती दोनों मुनिराज के प्रवचन सुनने को गये। मुनि के उपदेश को सुनकर संसार से विरक्ति हुई। अपने पुत्र जयन्तकुमार को राज्य देकर दोनों ने संयम ग्रहण किया।[१९] उनके साथ उनके भ्राता धनदत्त और धनदेव ने भी संयममार्ग स्वीकार किया। धनमुनि और धनवती ने उग्र तप और जप की साधना कर एक मासिक अनशन के साथ आयुष्य पूर्ण किया।[२०]

---

१८. तो मुणिवरेण सिद्धंतसिंधुसारेण वयणमग्गेण।
सम्मद्दंसणमंती धणस्स उवदंसिओ तत्थ॥
तद्दंसणम्मि हरिसेण पुलइओ सो न माइ अंगेसु।
विन्नायतस्सरूवो मुणिऊण कयत्थमप्पाणं॥
पभणेइ मुनिवरं सामि! तुज्झ अइगुरुपसायवरतरुणो।
भुवणत्तयस्स सारं फलं मए अज्ज संपत्तं॥
—भव-भावना गा० ३९९-४०१ पृ० ३३

(ख) धनवत्या समं सोऽथ मुनिचन्द्रमुनेः पुरः।
गृहस्थधर्मं सम्यक्त्वप्रधानं प्रत्यपद्यत॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१२४

१९. वसुन्धराद्धनो दीक्षां धनवत्या सहाददे।
धनभ्राता धनदत्तो धनदेवश्च पृष्ठतः॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१३२

२०. त्रिषष्टि० ८।१।

(२) सौधर्म देवलोक में :

धनमुनि और धनवती दोनों आयु पूर्णकर प्रथम सौधर्म कल्प में शक्र के सामानिक महर्धिक देव हुए।[२१] धनमुनि के दोनों भाई भी महान् साधना कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए।[२२]

(३) चित्रगति और रत्नवती :

प्रस्तुत भरत क्षेत्र के वैताढ्यगिरि की उत्तरश्रेणी में सूरतेज नामक नगर था। वहां पर सूर नामक एक चक्रवर्ती राजा राज्य करता था।[२३] विद्युन्मति उस चक्रवर्ती की महारानी थी।[२४] एक दिन धनकुमार का जीव सौधर्म देवलोक का आयु पूर्ण कर विद्युन्मति की कुक्षि में आया। शुभ दिन जन्म लेने पर बालक का नाम चित्रगति रखा गया।[२५]

वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणो में शिवमन्दिर नामक नगर था। वहां का राजा अनंगसिंह था। रानी का नाम शशिप्रभा था। धनवती का जीव सौधर्म देवलोक की आयु पूर्ण कर वहां पर उत्पन्न

---

२१. (क) मासान्ते तौ विपद्योभौ कल्पे सौधर्मनामनि।
शक्रसामानिकौ देवावजायेतां महर्द्धिकौ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।१३५

(ख) इअ दुन्नि वि पवज्जं काऊणं अणसणं च अकलंकं।
सोहम्मे सामाणिअदेवा जाया महिड्ढीआ॥

—भव-भावना ४५७, पृ० २६

२२. (क) त्रिषष्टि० ८।१३६

(ख) भव-भावना ४५८

२३. इतोऽत्र भरते वैताढ्योत्तरश्रेणिभूषणे।
सूरतेजः पुरे सूर इति खेचरचयप्रभु॥

—त्रिषष्टि० ८।१।१३७

२४. वहीं ८।१।१३८

२५. पुण्येऽह्नि ददौ चित्रगतिरित्यभिधां पिता॥

—त्रिषष्टि० ८।१।१४१

(ख) चित्तगइ त्ति पइट्ठिअमिमस्स नामं विभूईए।

—भव-भावना ४७५

हुआ। उसका नाम रत्नवती रखा गया।[२६] रत्नवती रूप में देव कन्या के समान थी।

एक दिन राजा अनंगसिंह ने किसी निमित्तज्ञ से प्रश्न किया—रत्नवती का पति कौन होगा ?

निमित्तज्ञ ने अपनी विद्या के बल से कहा—"जो तुम्हारे पास से खड्ग रत्न को ले जायगा, सिद्धायतन में जिस पर देवगण पुष्पवृष्टि करेंगे, जो व्यक्ति मानव लोक में मुकुट के समान शिरोमणि है, वही पुरुष रत्नवती का पति होगा।"[२७]

यह भविष्यवाणी सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ।

उस समय चक्रपुर का अधिपति सुग्रीव नामक राजा था। उसके यशस्वती और भद्रा नामक ये दो पत्नियां थीं। यशस्वती के सुमित्र और भद्रा के पद्म नामक पुत्र हुआ।[२८] दोनों राजकुमार समान वातावरण में पले थे किन्तु उनके स्वभाव में दिन-रात का अन्तर था। एक की प्रकृति सरल, सरस और विनीत थी, दूसरे की कठोर व मायायुक्त थी।[२९] एक दिन महारानी भद्रा ने विचारा—जब तक सुमित्र जीवित रहेगा तब तक मेरे पुत्र को राज्य नहीं मिल सकता। उसने भोजन में सुमित्र को तीव्र जहर दे दिया। जहर से उसके सारे शरीर में अपार कष्ट होने लगा। जब यह वृत्त राजा सुग्रीव

---

२६. इतश्चात्रैव वैताढ्ये दक्षिणश्रेणिवर्तिनी।
अनंगसिंहो राजा भून्नगरे शिवमन्दिरे॥
पत्नी शशिमुखी तस्य नामतोऽभूच्छशिप्रभा।
च्युत्वा धनवतीजीवस्तस्याः कुक्षाववातरत्॥
''''तस्या रत्नवतीत्याख्यां पिता चक्रे शुभेऽहनि॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१४३ से १४६

२७. त्रिषष्टि० ८।१।१४८ से १५०
(ख) भव-भावना ४६३-४६५, पृ० ३६

२८. त्रिषष्टि ८।१।१५२-१५३

२९. सुमित्रस्तत्र गंभीरो विनयी नयवत्सलः।
कृतज्ञोऽर्हच्छासनस्थः पद्मस्त्वपरथाभवत्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१५४

को ज्ञात हुआ तब वह सीधा दौड़कर वहाँ आया, अनेक उपचार किए, किन्तु विष न उतरा।[30]

बिजली की लहरों की तरह सर्वत्र यह सूचना फैल गई कि भद्रा ने सुमित्र को जहर दिया है। पाप के प्रकट हो जाने से भद्रा को वहाँ से भागना पड़ा। राजा और प्रजा सभी सुमित्र की यह स्थिति देखकर आकुल-व्याकुल हो गये।[31]

उस समय चित्रगति विद्याधर विद्या के बल से आकाश में होकर कहीं जा रहा था। उसने नगरनिवासियों को भय एवं चिन्ता से ग्रस्त होकर दौड़धूप करते देखा तो वह नीचे उतरा। जन-जन की जिह्वा पर सुमित्र के सदगुणों की चर्चा और रानी के दुष्टकृत्य के प्रति निन्दा को सुनकर वह शीघ्र ही सुमित्र के पास पहुँचा। मंत्र-बल से उसने उसी समय सुमित्र का जहर उतार दिया।[32] सुमित्र को पूर्ण स्वस्थ देखकर राजा और प्रजा को अत्यधिक प्रसन्नता हुई।

जीवनदान देने के कारण चित्रगति विद्याधर के साथ सुमित्र का अत्यधिक प्रेम हो गया। चित्रगति जाना चाहता था किन्तु सुमित्र ने कहा—"मुझे समाचार मिले हैं कि यहाँ पर सुयश नामक केवलज्ञानी शीघ्र ही पधारने वाले हैं। उनके दर्शन कर फिर तुम यहाँ से जाना।[33]

---

३०. त्रिषष्टि० ८।१।१५५ से १५८
भव-भावना ५०६-५०६

३१. त्रिषष्टि० ८।१।१५८-१५६

३२. अत्रान्तरे चित्रगतिः क्रीडया विचरन् दिवि,
विमानेनागतस्त्रापश्यच्छोकातुरं पुरम् ॥
विषव्यतिकरं तं च ज्ञात्वोत्तीर्य विमानतः,
सोऽभ्यषिंचत्त कुमारं जलैर्विद्याभिमंत्रितैः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१६१-१६२

३३. सुमित्रोऽप्यब्रवीद्भ्रातः सुयशा नाम केवली।
अत्रासन्नप्रदेशेषु विहरन्नस्ति संप्रति ॥
क्रमेण तमिहायातं वन्दित्वा गन्तुमर्हसि।
तदागमनकालं तदत्रैव परिपालय ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।१७२-७३

सुयश केवली वहां पधारे। उनके उपदेश को सुनकर त्याग-वैराग्य की भावना उद्‌बुद्ध हुई। उस समय चित्रगति ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।[३४]

राजा सुग्रीव ने केवली भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! सुमित्र को विष देकर इसकी अपर माता भद्रा कहाँ गई है?

केवलज्ञानी भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—राजन्! मृत्यु के भय से रानी भद्रा राजमहल से निकलकर जंगल में पहुँची। उसके शरीर पर वहुमूल्य आभूषण थे। चोरों ने उसके सारे आभूषण छीन लिए, और भद्रा को पल्लीपति के पास ले जाकर उसे समर्पित कर दिया। पल्लीपति ने उसे एक श्रेष्ठी को वेच दी। वहाँ पर भी वह न रह सकी। वह पुनः जंगल में गई, अग्नि में जलकर प्राण त्याग दिये, और इस समय वह प्रथम नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ से आयु पूर्ण कर वह चांडाल के घर स्त्री बनेगी। एकदिन दोनों में कलह होगा। चण्डाल उसे मार डालेगा। वह मरकर तृतीय नरक में जायेगी, फिर तिर्यक् योनियों में परिभ्रमण करेगी।

केवली भगवान् के मुखारविन्द से सुग्रीव राजा ने रानी भद्रा की स्थिति सुनी, मन में वैराग्य आया। उसी समय पुत्र को राज्य दे वह प्रव्रजित हो गया।[३५]

चित्रगति अपने घर पहुँचा। एक दिन चित्रगति को किसी ने सूचना दी कि अनंगसिंह के पुत्र कमल ने सुमित्र की वहिन का अपहरण किया है। जिससे सुमित्र शोकाकुल है। उसी समय चित्र-गति सैन्य लेकर वहाँ पहुँचा। कमल का उन्मूलन कर दिया। पुत्र को पराजित हुआ जानकर अनंगसिंह को क्रोध आया, वह चित्रगति को पराजित करने के लिए युद्ध के मैदान में आया परन्तु वह चित्र-गति के समाने टिक न सका। अन्त में उसने देवनामी खड्‌गरत्न का स्मरण किया। स्मरण करते ही चमचमाता हुआ खड्‌गरत्न उसके हाथ में आ गया। तभी उसने चित्रगति से कहा—अरे वालक! अव तू युद्ध के मैदान से भाग जा, अन्यथा यह खड्‌ग तेरा शिरच्छेद कर डालेगा।[३६]

---

३४. त्रिषष्टि० ८।१।१७८।१७९   ३५. त्रिषष्टि० ८।१।१९२

३६. अनंगो दुर्जयं ज्ञात्वा रिपुं जेतुमनाश्च तम्।
देवतादत्तमस्मार्षीत् खड्गरत्नं क्रमागतम्॥

चित्रगति ने मुस्कराते हुए कहा—क्या तुम इस लोहे के टुकड़े से मुझे भयभीत करना चाहते हो? धिक्कार है तुम्हें![३७] तुम्हारा-मिथ्या अहंकार क्षणभर में मैं नष्ट कर देता हूँ। उसने उसी समय विद्या के बल से चारों ओर भयंकर अंधकार कर दिया। उस गहरे अन्धकार में कोई किसी को देख नहीं सकता था। चित्रगति ने अनंगसिंह के हाथ से खड्गरत्न छीन लिया और सुमित्र की बहिन को लेकर चल दिया।[३८]

शनैः शनैः अंधकार कम हुआ। राजा अनंग ने देखा—उसके हाथ से कोई खड्गरत्न लेकर भाग गया है। उसे निमित्तज्ञ का कथन स्मरण आया कि जो खड्गरत्न ले जायेगा वही रत्नवती का पति होगा।[३९]

चित्रगति ने सुमित्र को उसकी बहिन लौटा दी। बहिन के अपहरण से सुमित्र को वैराग्य हुआ। उसने सुयश केवली के पास दीक्षा ग्रहण की। नौ पूर्वों का अध्ययन किया। एक दिन सुमित्र मुनि एकान्त स्थान में कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ खड़े थे। उस समय उसका लघुभ्राता भद्रा का पुत्र पद्म वहां आया और उसने

ज्वालाशतदुरालोकं द्विषल्लोकान्तकोपमम्।
कृपाणरत्नं तत्पाणावापपात क्षणादपि॥
कृपाणपाणिः स प्रोचे रे रेऽपसर बालक!
पुरतस्तिष्ठतश्छेत्स्ये शिरस्ते बिसकांडवत्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०४-२०६

(ख) भव-भावना

३७. ऊचे चित्रगतिश्चित्रमन्यादृगिव वीक्ष्यसे।
बलेन लोहखंडस्य धिक् त्वां स्वबलगर्वितम्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०७

३८. इत्युक्त्वा विद्यया ध्वान्तं विचक्रे तत्र सर्वतः।
पुरः स्थमप्यपश्यन्तो द्विषोऽस्थुर्लिखिता इव॥
अथाच्छिदच्चित्रगतिस्तं खड्गं तत्कराद्द्रुतम्।
द्राक् सुमित्रस्य भगिनीं जग्राह च जगाम च॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२०८-९

३९. त्रिषष्टि० ८।१।२१, ११।

(४) माहेन्द्रकल्प में :

आयु पूर्ण करके चित्रगति. रत्नवती और उनके दोनों भाई माहेन्द्रकल्प में देव बने ! चारों जीव वहां आनन्द के सागर पर तैरने लगे।

(५) अपराजित और प्रीतिमती :

पूर्व विदेह के पद्मनामक विजय में सिंहपुर नामक एक नगर था। वहाँ का राजा हरिनन्दी था। उसकी प्रियदर्शना पट्टरानी थी।"[51] चित्रगति का जीव माहेन्द्र स्वर्ग की आयु पूर्ण कर रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।"[52] जन्म लेने पर पुत्र का नाम 'अपराजित' रखा।"[53] आगे चलकर विमलबोध नामक मंत्री पुत्र के साथ उसका हार्दिक स्नेह-सम्बन्ध हो गया।

दोनों मित्र किसी समय घोड़े पर बैठकर जंगल में घूमने के लिए गये। उलटी रेस (शिक्षा) के घोड़े होने से वे उनको रोकने के लिए ज्यों-ज्यों लगाम खींचते त्यों-त्यों वे घोड़े पवनवेग की तरह द्रुतगति से दौड़ते। वे दोनों भयानक जंगल में पहुँच गये। उन्होंने ज्यों ही

रत्नवत्या कनिष्ठाभ्यां ताभ्यां च स समाददे।
व्रतं दमधराचार्यपार्श्वे चित्रगतिस्ततः॥
चिरं तप्त्वा विधायान्ते पादपोपगमनं च सः।
—त्रिषष्टि० ८।१।२५७, २५८

५०. विपद्य कल्पे माहेन्द्रे सुरोऽभूत्परमर्द्धिकः।
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च बान्धवौ॥
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च बान्धवौ।
संजज्ञिरे सुरवराः प्रीतिभाजः परस्परम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२५९-२६०

५१. त्रिषष्टि० ८।१।२६१-२६३

५२. जीवश्चित्रगतेः सोऽथ च्युत्वा माहेन्द्रकल्पतः।
कुक्षाववातरत्तस्या महास्वप्नोपसूचितः॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२६४

५३. अपराजित इत्याख्यां तस्य चक्रे महीपतिः।
—त्रिषष्टि० ८।१।२६६

जीव भी देवलोक से आयु पूर्ण कर चित्रगति के मनोगति और चपलगति नामक दो भाई वने। सभी आनन्दपूर्वक रहने लगे।[४५]

एक दिन चक्रवर्ती ने चित्रगति को राज्य दिया और जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। उत्कृष्ट चारित्र की आराधना कर वे कर्म मुक्त हुए।[४६]

चित्रगति का एक सामन्त राजा था, जिसका नाम मणिचूल था। उसके शशी और शूर नामक दो पुत्र थे। दोनों पिता के निधन के पश्चात् राज्य के लिए परस्पर लड़ने लगे। तव चित्रगति ने राज्य को दो भागों में बांट दिया, किन्तु उन दोनों के मन का समाधान न हो सका। कुछ दिनों के पश्चात् वे पुनः राज्य के लिए लड़ने लगे और दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हुए।[४७]

चित्रगति को जव यह वृत्त ज्ञात हुआ तव उसे मानव की मूढ़ता का विचार आया।[४८] रत्नवती के पुत्र पुरन्दर को राज्य देकर रत्नवती और अपने दोनों भ्राताओं के साथ उसने दमधर आचार्य के निकट संयम स्वीकार किया। जीवन की सांध्यवेला तक उत्कृष्ट तप की आराधना करते रहे और अन्त में पादपोपगमन संथारा कर आयु पूर्ण किया।[४९]

---

४५. धनदेवधनदत्तजीवौ च्युत्वा वभूवतुः।
मनोगतिचपलगत्याख्यौ तस्यानुजावुभौ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२४७

४६. तमन्यदा न्यधाद्राज्ये सूरचक्री स्वयं पुनः।
उपाददे परिव्रज्यां प्रपेदे च परं पदम्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२५०

४७. त्रिषष्टि० ८।१।२५३-२५४

४८. श्रुत्वा चित्रगतिस्तच्च दध्याविति महामतिः।
विनश्वर्याः श्रियोऽर्थेऽमी धिग्जना मन्दवुद्धयः।
युध्यन्तेऽथ विपद्यन्ते निपतंति च दुर्गतौ॥

—त्रिषष्टि० ८।१-२५४, २५५

४९. विमृश्यैवं भवोद्विग्नः सुतं रत्नवती भवम्।
ज्येष्ठं पुरंदरं नाम राज्ये चित्रगतिर्न्यधात्॥

(४) माहेन्द्रकल्प में :

आयु पूर्ण करके चित्रगति, रत्नवती और उनके दोनों भाई माहेन्द्रकल्प में देव बने ! चारों जीव वहां आनन्द के सागर पर तैरने लगे।

(५) अपराजित और प्रीतिमती :

पूर्व विदेह के पद्मनामक विजय में सिंहपुर नामक एक नगर था। वहाँ का राजा हरिनन्दी था। उसकी प्रियदर्शना पट्टरानी थी।"[५१] चित्रगति का जीव माहेन्द्र स्वर्ग की आयु पूर्ण कर रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।"[५२] जन्म लेने पर पुत्र का नाम 'अपराजित' रखा।"[५३] आगे चलकर विमलबोध नामक मंत्री पुत्र के साथ उसका हार्दिक स्नेह-सम्बन्ध हो गया।

दोनों मित्र किसी समय घोड़े पर बैठकर जंगल में घूमने के लिए गये। उलटी रेस (शिक्षा) के घोड़े होने से वे उनको रोकने के लिए ज्यों-ज्यों लगाम खींचते त्यों-त्यों वे घोड़े पवनवेग की तरह द्रुतगति से दौड़ते। वे दोनों भयानक जंगल में पहुँच गये। उन्होंने ज्यों ही

रत्नवत्या कनिष्ठाभ्यां ताभ्यां च स समाददे।
व्रतं दमधराचार्यपार्श्वे चित्रगतिस्ततः॥
चिरं तप्त्वा विधायान्ते पादपोपगमनं च सः।

—त्रिषष्टि० ८।१।२५७, २५८

५०. विपद्य कल्पे माहेन्द्रे सुरोऽभूत्परमर्द्धिकः।
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च बान्धवौ॥
रत्नवत्यपि तत्रैव कनिष्ठौ तौ च बान्धवौ।
संजज्ञिरे सुरवराः प्रीतिभाजः परस्परम्॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२५९-२६०

५१. त्रिषष्टि० ८।१।२६१-२६३

५२. जीवश्चित्रगतेः सोऽथ च्युत्वा माहेन्द्रकल्पतः।
कुक्षाववातरत्तस्या महास्वप्नोपसूचितः॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२६४

५३. अपराजित इत्याख्यां तस्य चक्रे महीपतिः।

—त्रिषष्टि० ८।१।२६६

लगाम ढीली की त्यों ही घोड़े रुक गये। एक ओर कल-कल छल-छल करते हुए झरने बह रहे थे, हरियाली लहलहा रही थी, दूसरी ओर हिरण चौकड़ियाँ भर रहे थे। वन्यपशु इधर से उधर छलांगें मार रहे थे। प्राकृतिक सौन्दर्य को निहार कर वे बहुत ही प्रसन्न थे। दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे थे कि उसी समय जंगल में से किसी मानव की आवाज आयी—'रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, बचाओ!'[५४]

अपराजित ने देखा—एक व्यक्ति भय से कांप रहा है, उसकी शारीरिक भाव-भंगिमा से ज्ञात हो रहा था कि वह शरण-दान मांग रहा है। अपराजित को देखकर और उसके निकट आकर वह चरणों में गिर पड़ा और सुबक-सुबक कर रोने लगा। अपराजित ने उसे धैर्य बंधाते हुए कहा—घबरा मत, मैं तेरी रक्षा करूंगा।[५५]

विमलबोध ने कहा—मित्र! तुमने ये शब्द बिना विचारे कहे हैं। यदि यह कोई अपराधी हुआ तो रक्षण करने में तुम्हें जोर पड़ेगा।

अपराजित—जो शरण में आ चुका है उसकी रक्षा करना क्षत्रियों का कर्तव्य है, शरणागत की जो रक्षा नहीं करता वह वस्तुतः क्षत्रिय नहीं है।[५६]

उसी समय तलवारों को चमकाता हुआ 'मारो, काटो' का भीषण शब्द करता हुआ शत्रु सैन्य वहाँ आ पहुँचा। सेनानायक ने अपराजित से कहा—कृपया आप इस व्यक्ति को छोड़ दीजिए। इसने हमारे नगर को लूटा है। यह हमारा अपराधी है।[५७]

---

५४. त्रिषष्टि० ८।१।२७४

५५. प्रवेपमानसर्वांगमस्थिरीभूतलोचनम् ।
मा भैषीरिति तं प्रोचे कुमारः शरणागतम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२७५

५६. ऊचेऽपराजितोऽप्युच्चैः क्षत्रधर्मो ह्यसौ सदा ।
अन्यायी यदि वा न्यायी त्रातव्यः शरणागतः ॥

—त्रिषष्टि० ८।१।२७७

५७. त्रिषष्टि० ८।१ २७८-२७९

अपराजित आपका कथन सत्य हो सकता है, पर यह मेरी शरण में आ चुका है। मैं इसका परित्याग नहीं कर सकता।[५८]

सेनाध्यक्ष ने अपराजित को युद्ध के लिए आह्वान किया। आह्वान को स्वीकार कर अपराजित ज्यों ही युद्ध के मैदान में आया और उसने अपनी युद्ध-कला का प्रदर्शन किया त्यों ही वह सम्पूर्ण सेना नौ दो ग्यारह हो गई। सेनाध्यक्ष ने अपने राजा कौशलपति के पास जाकर सारा वृत्त सुनाया। राजा कौशलपति भी ससैन्य वहाँ पहुँचा किन्तु वह भी अपराजित के सामने टिक न सका। अपराजित के अपार पराक्रम को देखकर वह चकित हो गया। मंत्री ने राजा से कहा—'क्या इस उद्‌भट वीर को आपने नहीं पहचाना? यह तो आपके मित्र का पुत्र अपराजित है।' राजा ने युद्ध बन्द किया और प्रेम से उसे गले लगाया। राजा अपराजित को लेकर राजप्रासाद में आया और अपनी पुत्री कनकमाला का उसके साथ विवाह कर दिया।[५९]

एक दिन अर्धरात्रि में अपराजित और विमलबोध ने विचार किया—सारे दिन राजमहल की चहारदीवारी में ही बन्द रहते हैं, तो इस समय कहीं बाहर घूमने चलना चाहिए।[६०] चन्द्रमा की निर्मल चाँदनी छिटक रही थी। दोनों अपने शस्त्र-अस्त्र लेकर राजमहल से बाहर निकले, और जंगल में पहुँचे। जंगल में कहीं दूर से किसी नारी का करुण-क्रन्दन उनको सुनाई दिया। वे दोनों विचारने लगे—इस आधी रात में नारी के रुदन की ध्वनि कहां से आरही है? वे शब्दवेधी बाण की तरह उसी दिशा में आगे बढ़े।[६१] कुछ दूर

---

५८. स्मित्वा स्माह कुमारोऽपि शरणं मामुपागतः।
शक्रेणापि न शक्योऽसौ हन्तुमन्यैस्तु का कथा॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२८०

५९. कन्यां कनकमालाख्यां स्वां कौशलमहीपतिः।
जातानन्दो हरिणन्दिनन्दनायान्यदा ददौ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२९२

६०. त्रिषष्टि० ८।१।९३

६१. काप्येषा रोदिति स्त्रीति निश्चित्य स कृपानिधिः।
अनुशब्दं ययौ वीरः शब्दापातीव सायकः॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२९५

जाने पर देखा—एक कुण्ड में अग्नि धधक रही है। एक युवती उस अग्निकुण्ड के पास बैठी हुई है। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। वह रह-रहकर पुकार रही है—'मेरी रक्षा करो, इस दुष्ट से मुझे बचाओ।' उस युवती के पास ही एक व्यक्ति हाथ में चमचमाती तलवार लेकर खड़ा है और तलवार दिखाकर युवती को कुछ संकेत कर रहा है। अपराजित ने यह लोमहर्षक दृश्य देखा और युवक को ललकारते हुए कहा—'इस अबला नारी पर तू अपनी शक्ति आजमा रहा है! तुझे शर्म नहीं आती? तेरी भुजाओं में शक्ति है तो मेरे साथ युद्ध कर।[६२] मेरे रहते तू इस नारी का बाल भी बांका नहीं कर सकता।

यह सुनते ही वह युवक जो विद्याधर था, अपराजित की ओर लपका, पर अपराजित को वह परास्त न कर सका। अन्त में उसने अपराजित को नागपाश के द्वारा बांध दिया, किन्तु अपराजित ने एक ही झटके में नागपाश के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। विद्याधर युवक ने विद्या के द्वारा नाना प्रकार के शस्त्र निर्माण कर अपराजित पर प्रहार किया, किन्तु पुण्य की प्रबलता के कारण एवं असाधारण शारीरिक सामर्थ्य के कारण कोई भी शस्त्र अपराजित को पराजित न कर सका।[६३]

रात्रि पूर्ण हुई। उषा की सुनहरी किरणें मुस्कराने लगीं। अपराजित ने झपटकर विद्याधर युवक की तलवार छीन ली, और उसी तलवार से उसके शरीर पर प्रहार किया। घाव गहरा लगा, मूर्च्छा खाकर युवक भूमि पर लुढक पड़ा। अपराजित ने उपचार कर उसकी मूर्च्छा दूर की और पुनः उद्बोधन के स्वर में कहा—यदि अब भी सामर्थ्य हो तो आओ, तुम मेरे साथ युद्ध करो, मैं

---

६२. आचिक्षेप कुमारस्तमुत्तिष्ठस्व रणाय रे।
अबलायां किमेतत्ते पुरुषाधम पौरुषम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।२९८

६३. पूर्वपुण्यप्रभावाच्च देहसामर्थ्यतोऽपि च।
कुमारे प्राभवंस्तस्य प्रहारा न मनागपि॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३०४

तुम्हारे सामने उपस्थित हूं।[६४]

विद्याधर—तुमने मुझे पूरी तरह पराजित कर दिया है। मैं एक भयंकर भूल करने जा रहा था, उससे तुमने मुझे बचा लिया है। अब तुम मेरे शत्रु नहीं, मित्र हो। पहले तुम एक कार्य करो। मेरे वस्त्र के एक छोर में मणि और मूलिका बंधी है। मणि को पानी में धोकर उस धोवन से मूलिका घिसकर मेरे व्रणों पर लगाओ जिससे मैं पूर्ण स्वस्थ बन सकूं।

अपराजित ने विद्याधर के कथनानुसार लेपन किया। देखते ही देखते जादू की तरह व्रण मिट गये और विद्याधर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

स्वस्थ होने पर विद्याधर ने अपना और उस युवती का परिचय देते हुए कहा—इस युवती का नाम 'रत्नमाला' है।[६६] यह विद्याधर की कन्या है। इसके पिता विद्याधर अमृतसेन ने एक बार किसी विशिष्ट ज्ञानी से प्रश्न किया था कि इसका पति कौन होगा?

ज्ञानी ने बताया—अपराजित कुमार इसका पति होगा।[६७] यह उसी समय से अपराजित कुमार के प्रति अनुरक्त हुई। रात-दिन उसी के ध्यान में लीन रहने लगी।[६८] मैं इसके मनोहारी रूप को देखकर मुग्ध हो गया। मैंने इसे अपने मन के अनुकूल बनाने के लिए

---

६४. भूयः प्रापय्य चैतन्यमुपचारैर्नभश्चरम्।
ऊचे कुमारो युध्यस्व सहोऽसि यदि संप्रति ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३०७

६५. मम वस्त्रांचलग्रन्थौ विद्येते मणिमूलिके।
मणेस्तस्यांभसा घृष्ट्वा मूलिकां देहि मद्व्रणे ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३०९

६६. रथनूपुरनाथस्य विद्याधरपतेरियम्।
दुहितामृतसेनस्य रत्नमालेति नामतः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३११

६७. वरोऽस्या ज्ञानिनाचख्ये हरिणंदिनृपात्मजः।
युवापराजितो नाम गुणरत्नैकसागरः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३१२

६८. वहीं० ८।१।३१३

अनेक प्रयत्न किए किन्तु इसने मेरी एक भी बात स्वीकार नहीं की। इसकी सदा एक ही रट लगी रही कि मुझे अग्नि में जलना स्वीकार है किन्तु मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करूँगी। मैं देखना चाहता था कि यह कैसे अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहती है। मैं इसे कह रहा था—या तो तू मुझे वरण कर या अग्निकुंड में कूदकर अपने शरीर को भस्म कर डाल, किन्तु यह न तो आग में जलना चाहती थी और न मुझे वरण करना चाहती थी। यही प्रसंग चल रहा था कि अकस्मात् तुम आगये। अच्छा हुआ कि तुमने नारी हत्या के भयंकर पाप से बचा लिया। मित्र ! बताओ तुम्हारा परिचय क्या है ?

मंत्रीपुत्र विमलबोध ने राजकुमार अपराजित का विस्तार से परिचय दिया। यह सब वार्तालाप चल ही रहा था कि इतने में रत्नमाला के माता-पिता भी उसको खोज करते हुए वहां पहुँच गये। उन्होंने उसी समय रत्नमाला का पाणिग्रहण अपराजितकुमार के साथ करा दिया। सूरकान्त विद्याधर को अपराजित ने अभयदान दिया। सूरकान्त ने प्रसन्न होकर अपराजित को वह मणि, मूलिका और रूप-परवर्तिनी गुटिका दी।[६९]

रत्नमाला को पिता के घर पर ही छोड़कर अपराजित और विमलबोध देश-विदेश की यात्रा करने के लिए प्रस्थित हुए। कुछ दूर जाने पर अपराजित को प्यास लगी। वह एक आम के वृक्ष के नीचे बैठ गया और विमलबोध को पानी ले आने को कहा। विमलबोध पानी लेने के लिए गया। जब पानी लेकर वह लौटा तब अपराजित कुमार वहाँ पर नहीं था। विमलबोध पानी लेकर इधर-

---

६९. आख्यच्च मंत्रिसूस्तस्मै कुमारस्य कुलादिकम्।
मुमुदे रत्नमालापि सद्योऽभीष्टसमागमात्॥
पितरौ रत्नमालायाः पृष्ठतश्च प्रधाविनौ।
कीर्तिमत्यमृतसेनौ तदानी तत्र चेयतुः॥
ताभ्यां दत्तां रत्नमालामुपयेमेऽपराजितः।
तयोरेव गिरा दत्तं सूरकान्ताय चाभयम्॥
कुमारे निःस्पृहे सूरकान्तस्ते मणिमूलिके।
आर्पयन्मंत्रिपुत्रस्य गुटिकाश्चान्यवेषदाः॥

—त्रिषष्टि० ८।१।३२०, ३२४

उधर भटकने लगा और उच्च स्वर से अपने मित्र को पुकारने लगा किन्तु वहीं पर भी अपराजित का पता न लगा।[७०]

इतने में दो विद्याधर वहाँ आये। उन्होंने विमलबोध से कहा—'आप घबराइए नहीं। हम आपके मित्र अपराजित का पता बताते हैं– इस जंगल में भुवनभानु नामक एक महान् ऋद्धिवाला विद्याधर रहता है। उसके कमलिनी और कुमुदिनी नामक ये दो पुत्रियाँ हैं। एक विशिष्ट ज्ञानी ने बताया कि इन कन्याओं का पति अपराजित राजकुमार होगा और वह अमुक दिन इस जंगल में आयेगा। यह भविष्यवाणी सुनकर हमारे स्वामी ने आप दोनों को लेने के लिए हमें यहाँ भेजा। जब हम यहाँ आये तब आप अपराजित के लिए पानी लेने गये हुए थे। हम अकेले अपराजित को लेकर अपने स्वामी के पास गये। हमारा स्वामी अपराजित को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके सामने दोनों लड़कियों के विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु अपराजित कुमार तुम्हारे विरह के कारण अत्यन्त दुःखी थे अतः उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। रह रहकर वे तुम्हारा ही नाम रटने लगे, अतः हमारे स्वामी ने शीघ्र ही हमें तुम्हारे पास भेजा है। तुम हमारे साथ चलो।" विमलबोध मित्र के समाचार जानकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह उनके साथ चल दिया।[७१] अपराजित से मिलकर उसे बहुत आनन्द हुआ। दोनों कन्याओं के साथ अपराजित का पाणिग्रहण अत्यन्त उल्लास के क्षणों में सम्पन्न हुआ। कुछ दिनों तक दोनों वहाँ रहे, फिर यात्रा के लिए आगे चल दिये।

वे दोनों श्रीमन्दिरपुर नगर में पहुँचे। किन्तु वहाँ नगर निवासियों के चेहरे पर अजीब घबराहट देखकर विचारने लगे—बात क्या है? किसी व्यक्ति ने उन्हें बताया कि राजा का शत्रु असावधानी से राजमहल में चला गया और उसने राजा पर शस्त्र से आक्रमण कर दिया जिससे राजा पीड़ित है। राजा की पीड़ा से नगरनिवासी दुःखी हैं।[७२]

---

७०. त्रिषष्टि० ८।१।३२२-३३३

७१. त्रिषष्टि० ८।१।३३४-३४४

विमलबोध ने नगर की प्रसिद्ध गणिका कामलता से कहा—तुम जाकर राजा को सूचना करो कि एक महान् वैद्यराज आया हुआ है। उसके पास ऐसी जादूई दवा है कि कुछ ही क्षणों में व्रण पूर्ण रूप से ठीक हो जायेगा। गणिका ने सूचना की।

राजा ने अपराजित और विमलबोध को बुलाया। अपराजित ने मणि को धोकर राजा को पानी पिलाया, उसके पानी में मूलिका को घिसकर राजा के व्रण पर लगाया। राजा पूर्ण स्वस्थ हो गया।[७३]

राजा ने परिचय पूछा तो विमलबोध ने विस्तार से अपराजित का परिचय दिया। राजा ने उसे गले लगाते हुए कहा—यह तो मेरे मित्र का पुत्र अपराजित है। प्रसन्न होकर राजा ने अपनी रंभा नामक कन्या का विवाह अपराजित के साथ कर दिया।[७४] कुछ दिन वहाँ रहकर अपराजित ने आगे प्रस्थान किया। दोनों कुंडपुर नगर में पहुँचे। वहाँ पर केवलज्ञानी भगवान विराज रहे थे। भगवान् को वन्दन नमस्कार कर अपराजित ने प्रश्न किया—भगवन् ! मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ?

समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—तुम दोनों भव्य हो। अपराजित तो भविष्य में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अरिष्टनेमि नामक बावीसवां तीर्थंकर होगा, और विमलबोध अरिष्टनेमि का प्रथम गणधर वरदत्त होगा।[७५]

---

७२. स प्रविश्यैकेन पुंसा हतश्छुरिकाच्छलात्।
राज्ञो राज्यधरश्चास्या पुत्रादिर्नास्ति कोऽपि हि ॥
आत्मरक्षी भवन्नद्य तेनायमखिले पुरे।
भ्राम्यति व्याकुलो लोकस्तस्यायं तुमुलो महान् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१। ३४६-५०

७३. मणिप्रक्षालनजलं स भूपतिमपाययत्।
मूलिकां तज्जलैर्घृष्ट्वा नृपाघाते न्यधत्त च ॥
—वही० ८।१।३५७

७४. इत्युक्त्वा कन्यकां रंभां रूपाद्रंभामिवापराम्।
उपरोध्य ददौ तस्मै गुणक्रीतो नरेश्वरः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।३६१

राजाओं ने क्रोधाविष्ट होकर उसे युद्ध के लिए ललकारा। अपराजित कुमार ने ऐसी अद्भुत युद्ध कला का प्रदर्शन किया कि सभी राजागण चकित हो गये। अपराजित के मामा राजा सोमप्रभ ने अपराजित को पहचान लिया। अपराजित ने भी अपना असलीरूप प्रकट कर दिया। सभी राजा सन्तुष्ट हुए। उल्लास व उत्साह के क्षणों में प्रीतिमती का विवाह अपराजित के साथ सम्पन्न हुआ। दोनों एक दूसरे को पाकर प्रसन्न थे।[७९]

कुछ दिनों तक अपराजित वहां रहा फिर पिता का सन्देश आने से अपनी सभी पत्नियों को लेकर अपने घर लौट गया।[८०]

पूर्वभव के अपराजित के दो भाई मनोगति और चपलगति, माहेन्द्र देवलोक में देव हुए थे। वे दोनों वहाँ की आयु पूर्ण कर अपराजित कुमार के सूर और सोम नामक लघु-भ्राता हुए।

किसी दिन अपराजित के पिता हरिनन्दी ने अपराजित को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और मुक्ति प्राप्त की।[८१]

एक दिन अपराजित राजा भ्रमण करने के लिए उद्यान में गया। वहाँ अनगदेव नामक सार्थवाहपुत्र भी आया हुआ था। उसका विराट् वैभव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मन में विचार आया कि मेरे राज्य में श्रेष्ठी लोग भी कितने समृद्ध और सुखी हैं।[८२]

दूसरे दिन राजा घूमने के लिए बाहर निकला। राजा ने देखा—राजपथ पर सैकड़ों व्यक्तियों से घिरी हुई एक अर्थी जा रही है। राजा ने अनुचरों से पूछा—यह कौन है? अनुचर ने निवेदन किया—राजन्! यह वही अनंगदेव है जो कल उद्यान में क्रीड़ा कर रहा था। अकस्मात् व्याधि होने से इसकी मृत्यु हो गई है।[८३]

---

७९. ततोऽपराजितप्रीतिमत्योरन्योऽन्यरक्तयोः ।
चक्रे विवाहं पुण्येऽह्नि भूभुजा जितशत्रुणा ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४१५

८०. वही० ८।१।४१६।४२०

८१. अथान्यदा हरिणंदी राज्यं न्यस्यापराजिते।
प्रवव्राज तपस्तप्त्वा प्रपेदे च परं पदम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४३४

८२. त्रिषष्टि० ८।१।४३८, ४४२

संसार की असारता देखकर राजा के मन में वैराग्य हुआ। प्रीतिमती के पुत्र पद्म को राज्य देकर प्रीतिमती, सूर, सोम, व विमलबोध के साथ अपराजित ने दीक्षा ग्रहण की।[८४] उत्कृष्ट तप संयम की आराधना कर अन्तिम समय में संथारा कर आयु पूर्ण किया।

दिगम्बर ग्रन्थों में :

दिगम्बर आचार्य जिनसेन और आचार्य गुणभद्र ने भगवान् अरिष्टनेमि के पाँच पूर्व भव बताये हैं। उनके पश्चाद्वर्त्ती जितने भी दिगम्बर परम्परा के लेखक हुए हैं, सभी ने इन्हीं आचार्यों का अनुसरण किया है। उसमें सर्वप्रथम अपराजित राजा का भव बताया है। वह इस प्रकार है :—

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर सुपद्म नामक देश था। उस देश में सिंहपुर नामक नगर था। वहाँ का राजा अर्हद्दास था।[८५] जिनदत्ता उसकी रानी थी। एक दिन महारानी राजमहल में सोयी हुई थी। उस समय उसे लक्ष्मी, हाथी, सिंह, सूर्य और चन्द्र ये पांच शुभ स्वप्न दिखलाई दिये।[८६] रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। सवा नौ मास के पश्चात् पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम अपराजित रखा गया।[८७] युवावस्था आने पर 'प्रीतिमती' प्रभृति अनेक राजकन्याओं के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ।

---

८३. त्रिषष्टि० ८।१।४४३, ४४७

८४. त्रिषष्टि० ८।१।४४६-४५०

८५. (क) द्वीपेऽत्रैव सुपद्मायां, शीतोदायास्त्वपाक्तटे।
अभूत् सिंहपुरे भूभृदर्हद्दासो महाहितः॥
—हरिवंश पुराण ३४।३। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।४

८६. (क) हरिवंशपुराण ३४।४। पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।८

८७. (क) अपराजित इत्याख्यां स परैरपराजितः।
पितृभ्यां न्मिमतो द्यावापृथिव्योः प्रथितस्ततः॥
—हरिवंशपुराण ३४।५ पृ० ४१६

(ख) उत्तरपुराण ७०।१०

एक दिन राजा अर्हद्दास अपने परिवार के साथ भगवान् विमल-वाहन को वन्दन करने हेतु मनोहर नामक वन में पहुँचा।[८८] विमल-वाहन के प्रभावशाली प्रवचन को श्रवण कर अन्य पाँचसौ राजाओं के साथ अर्हद्दास ने दीक्षा ग्रहण की। अपराजित कुमार को भी उस समय सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई।[८९]

एक दिन अपराजित राजा ने सुना कि गंधमादन पर्वत पर जिनेन्द्र विमलवाहन और पिता अर्हद्दास मुक्त हो गए हैं। यह सुनकर राजा ने अष्टमभक्त (तेला) की तपश्चर्या की।[९०] राजा धर्म साधना कर रहा था कि उस समय आकाश मार्ग से दो चारण-ऋद्धिधारी मुनि पधारे।[९१] राजा ने मुनियों को वन्दन किया। उनके चमकते हुए चेहरे को देखकर राजा के मन में अत्यधिक अनुराग उत्पन्न हुआ। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैंने पूर्व में कहीं इन मुनियों को देखा है। राजा ने मुनिराज के सामने जिज्ञासा प्रस्तुत की। दोनों मुनियों में ज्येष्ठ मुनि ने समाधान करते हुए अपने पूर्व भव का कथन इस प्रकार किया—

राजन् ! पश्चिम पुष्करार्ध के विदेह में गण्यपुर नामक नगर था। वहाँ का राजा सूर्याभ था, उसकी रानी का नाम धारिणी था। उसके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामक तीन पुत्र थे।[९२]

---

८८. उत्तर पुराण ३४।८।४१६

८९. (क) प्रवव्राज नृपोऽस्यान्ते पञ्चराजशतान्वितः।
वभ्रेऽपराजितो राज्यं सम्यक्त्वं चैव निर्मलम् ॥
—हरिवंश पुराण ३४।९

(ख) उत्तरपुराण ७०।१६

९०. जिनेन्द्रपितृनिर्वाणं गन्धमादनपर्वते।
श्रुत्वा कृतवानष्टमं भक्तं कृतनिर्वाणभक्तिकः ॥
—हरिवंशपुराण ३४।१०

९१. (क) हरिवंशपुराण ३४।१२, पृ० ४२०
(ख) उत्तरपुराण ७०।२३

९२. पुत्रास्त्रयस्तयोश्चिन्तामनश्चपलपूर्वकाः।
गत्यन्ता वेगवन्तास्ते स्नेहवन्तः सुपौरुषाः ॥
—हरिवंशपुराण ३४।१७। पृ० ४२०

उसी समय दूसरे एक नगर अरिञ्जय पुर के राजा का नाम अरिञ्जय था। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम प्रीतिमती था। प्रीतिमती का रूप ही सुन्दर नहीं था अपितु वह सभी विद्याओं में पारंगत भी थी। वह उत्कृष्ट तप करना चाहती थी अतः उसने अपने पिता से कहा कि मुझे इच्छित वर दीजिए।[९३]

पिता ने कहा—तप के अतिरिक्त तू जो भी वस्तु चाहे, वह मांग सकती है?[९४] उसने कहा—तो फिर जो गतियुद्ध में मुझे पराजित करे उसी को आप मुझे दें, अन्य को नहीं। पिता ने कहा—'तथास्तु'। उसके विवाह के लिए स्वयंवर की रचना की गई।[९६] सहस्रों विद्याधर उपस्थित हुए। चिन्तागति, मनोगति, और चपलगति—ये तीनों भाई भी वहाँ पहुँचे। सभी विद्याधरों ने विचार किया—प्रीतिमती विद्या में हमसे अधिक प्रवीण है और हम उसे गति युद्ध में भी जीत नहीं सकते। अतः वे सभी चुप वैठे रहे किन्तु चिन्तागति, मनोगति, और चपलगति गतियुद्ध के लिए तैयार हुए[९७] पर वे उससे पराजित हो गये।[९८]

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि चिन्तागति ने प्रीतिमती को जीत लिया। जव वह चिन्तागति के गले में वरमाला डालने लगी तव चिन्तागति ने उससे कहा—यह वरमाला मेरे छोटे भाई के गले में डाल, क्योंकि उसे प्राप्त करने के लिए तूने प्रथम उससे गति-युद्ध

---

९३. हरिवंशपुराण ३४।१८-१९, पृ० ४२०

९४. कन्याकूतविदूचे स वृणीष्व वरमीप्सितम्।
तपसोऽन्यमितीदं च श्रुत्वाऽह प्रीतिमत्यपि॥
—हरिवंशपुराण ३४।२०। पृ० ४२०

९५. तपो वरप्रसादो मे पितर्यदि न दीयते।
गतियुद्धे विजेत्रेऽहं देयेत्येष वरोऽस्तु मे॥
—हरिवंशपुराण ३४।२१, पृ० ४२०

९६. हरिवंशपुराण ३४।२२

९७. हरिवंशपुराण ३४।२६, पृ० ४२१

९८. हरिवंशपुराण ३४।२८-२९, पृ० ४२१

किया था, अतः तू मेरे लिए त्याज्य है। प्रत्युत्तर में उसने कहा—मुझे गतियुद्ध में तुमने ही जीता है, मैं दूसरे के गले में वरमाला कैसे डाल सकती हूँ?[९९] यह कहकर उसने दीक्षा ली और उसके असाधारण त्याग को देखकर तीनों भाइयों को भी विरक्ति हुई।[१००]

जिनसेन के अभिमतानुसार चिन्तागति, मनोगति और चपलगति ये तीनों ही भाई प्रीतिमती से पराजित होने पर अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने दमधर मुनिराज के समीप दीक्षा ग्रहण की।[१] उत्कृष्ट तप की आराधना कर अन्त में समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया और तीनों भाई माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटल में सात सागर की आयु वाले देव बने।[२] वे दो भाई वहाँ से च्युत होकर पुष्कलावती में गगनचन्द्र राजा के अमितवेग और अमिततेज पुत्र हुए।[३] स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के पास दीक्षा ग्रहण की। भगवान् के मुखारविन्द से पूर्वभव सुने। मुनि ने राजा को पुनः सम्बोधित कर कहा—'राजन्! तुम हमारे पूर्वभव में ज्येष्ठभ्राता चिन्तागति थे। माहेन्द्र स्वर्ग से आयु पूर्ण कर तुम यहाँ पर अपराजित राजा बने हो। सर्वज्ञ प्रभु से यह बात जानकर हम तुमसे मिलने के लिए यहाँ आये हैं।[४] जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि तुम पाँचवें भव में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि नामक बावीसवें तीर्थंकर बनोगे।[५] इस समय

---

९९. श्रुतत्तद्वचना साह नाहं जितवतोऽपरैः।
मालामिमां क्षिपामीति स तामित्यब्रवीत् पुनः॥
—उत्तरपुराण ७०।३३, पृ० ३४१

१००. उत्तरपुराण ७०।३६

१. गतियुद्धे जितास्तेऽपि चिन्तागत्यादयस्तया।
दीक्षां दमवरस्यान्ते त्रयोऽपि भ्रातरो दधुः॥
—हरिवंशपुराण ३४।३२, पृ० ४२१

२. हरिवंश० ३४।३३, पृ० ४२१

३. हरिवंशपुराण ३४।३४-३५, पृ० ४२१

४. हरिवंशपुराण ३४।३६-३७, पृ० ४२२

५. अरिष्टनेमिनामार्हन् भविता भरतावनौ।
हरिवंशमहावंशे त्वमितः पञ्चमे भवे॥
—हरिवंश० ३४।३८, पृ० ४२२

तुम्हारी उम्र केवल एक मास शेष रह गई है, एतदर्थ धार्मिक साधना आराधना कर जीवन को सुधारो।' इस प्रकार उद्बोधन देकर मुनि वहाँ से प्रस्थित हो गये।[६]

राजा अपराजित ने प्रीतिंकर नामक पुत्र को राज्य देकर बावीस दिन का प्रायोपगमन (पादोपगमन) संथारा कर आयु पूर्ण किया।[७]

(६) आरण्य :

सभी वहाँ से आयु पूर्ण कर ग्यारहवें आरण देवलोक में इन्द्र के सामान्य देव बने।[८]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन व शुभचन्द्र के अनुसार अच्युत स्वर्ग में बावीससागर की स्थिति वाले देव बने।[९]

(७) शंख :

वहाँ से अपराजित का जीव आयुपूर्ण कर हस्तिनापुर में श्रीषेण राजा की महारानी श्रीमती की कुक्षि में उत्पन्न होता है। जन्म लेने पर उसका नाम शंख रखा गया।[१०] विमलबोध मंत्री का जीव भी आरण देवलोक से च्युत होकर गुणनिधि मंत्री का पुत्र मतिप्रभ हुआ। दोनों का परस्पर पूर्ववत् ही प्रेम हुआ।[११]

---

६. आयुर्मासावशेषं ते साम्प्रतं पथ्यमात्मनः।
क्रियतामिति तावुक्त्वा तमापृच्छ्य गतौ यती॥
—हरिवंशपुराण ३४।३९, पृ० ४२२

७. हरिवंशपुराण ३४।४१-४२, पृ० ४२२

८. ते सर्वेऽपि तपस्तप्त्वा मृत्वा कल्पेऽयुरारणे।
इन्द्रसामानिकाः प्रीतिभाजोऽभूवन् परस्परम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४५१

९. (क) स द्वाविंशत्यहोरात्रो प्रायोपगमनाञ्चितौ।
आराध्यापाच्युतेन्द्रत्वं द्वाविंशत्यब्धिजीवितः॥
—हरिवंश० ३४।४२

(ख) पाण्डवपुराण पर्व २५, श्लोक १५२, पृ० ५१०

१०. (क) त्रिषष्टि० ८।१।४५२-४५७

(ख) भव-भावना

एक दिन सीमा-प्रान्त पर रहने वाले व्यक्तियों ने राजा श्रीषेण से प्रार्थना की—राजन् ! चन्द्र नामक पर्वत की गुफा में रहने वाला समरकेतु पल्लीपति हमें त्रास देता है। हमारे धन-माल को लूटता है। हमारी रक्षा करो।[१२]

सेना से सुसज्जित होकर राजा उसे पकड़ने के लिए जाने लगा। तब शंख कुमार ने कहा— पिता जी ! मैं जाऊंगा और उसे पकड़कर आपके श्री चरणों में लाऊंगा। राजा ने शंख की बात स्वीकार की।

'शंख कुमार मुझे पकड़ने के लिए आ रहा है', जब यह समाचार पल्लीपति ने जाना तब वह दुर्ग से बाहर निकल गया। शंख ने भी अपनी कुछ सेना दुर्ग में भेज दी और स्वयं बाहर झाड़ियों में छिप गया। पल्लीपति ने बाहर के दुर्ग को ज्यों ही घेरा त्यों ही शंख ने झाड़ियों में से निकल कर उसे पकड़ लिया। पल्लीपति ने सारा धन शंख के चरणों में रखा।[13] पल्लीपति को पकड़कर शंख राजधानी की ओर प्रस्तिथ हुआ। रास्ते में विश्राम के लिए एक स्थान पर डेरा डाला।

अर्धरात्रि का समय था। शखकुमार को नींद नहीं आ रही थी। वह इधर-से उधर करवट बदल रहा था। उसी समय जंगल में से एक नारी का करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। शंख जिस दिशा से रुदन की आवाज आ रही थी उधर तलवार लेकर चल पड़ा। शंख ने देखा— एक अधेड़ वय की स्त्री की आँखों से अश्रु की धारा बरस रही है, उसने उसे आश्वस्त कर पूछा—बताओ तुम्हारे रोने का कारण क्या है ?[१४]

---

११. मतिप्रभो नाम गुणनिधिः श्रीषेणमंत्रिणः ।
सुतोऽभूद्विमलबोधजीवः प्रच्युत आरणात् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४५६

१२. त्रिषष्टि० ८।१।४६२-४६४

१३. त्रिषष्टि० ८।१।४७५

१४. ददर्श चाग्रे रुदतीं महिलामर्धवार्द्धकाम् ।
ऊचे च मृदु मा रोदी ब्रूहि दुःखस्य कारणम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४७८, ४८०

शंख की मधुर वाणी और शारीरिक दिव्य तेज से वह नारी आश्वस्त हुई। उसने अपनी कहानी इस प्रकार कही :—

अंगदेश की चम्पानगरी में जितारि राजा है। उसकी रानी का नाम कीर्तिमती है। उसके अनेक पुत्रों के पश्चात् एक पुत्री हुई, जिसका नाम यशोमती रखा गया। यशोमती रूप और गुण से सम्पन्न है। मैं उसकी धाय माता हूँ। उसने जब से शंखकुमार की वीरता, धीरता व रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी है तब से वह उसमें अनुरक्त है। उसने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की है कि शंखकुमार के अतिरिक्त मैं किसी भी व्यक्ति के साथ विवाह न करूंगी।[१५] उसके पिता राजा जितारि ने भी शंखकुमार के लिए श्रीषेण राजा के पास सम्बन्ध निश्चित करने के लिए अपने व्यक्ति भेजे। उधर विद्याधर मणिशेखर ने जितारि राजा से यशोमती की याचना की। राजा ने मणिशेखर को स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—मेरी पुत्री शंखकुमार के अतिरिक्त किसी को भी नहीं चाहती है। यह सुनते ही मणिशेखर विद्याधर कुपित हुआ। उसने यशोमती का अपहरण किया। मैं यशोमती की धायमाता हूँ। आज तक मैं उसके साथ रही हूँ। मैं यशोमती से ऐसी चिपट गई कि वह मुझे भी यहाँ तक घसीट कर ले आया। मुझे यहाँ बलात् छोड़कर वह जंगल में भग गया है। अब मेरी प्यारी पुत्री यशोमती का क्या होगा, यह चिन्ता मुझे सता रही है, इसीलिए मैं रो रही हूं।[१६]

शंखकुमार ने कहा—माता, घबरा मत। मैं उसकी खोज में जाता हूँ। जहाँ कहीं पर भी वह होगा, उसे पकड़कर ले आता हूँ। ऐसा आश्वासन देकर शंख आगे बढ़ा।[१७]

सूर्य उदय हो चुका था। पहाड़ की एक गुफा में यशोमती के साथ किसी युवक को उसने देखा। युवक उससे प्रार्थना कर रहा था किन्तु वह स्पष्ट इन्कार कर रही थी। कह रही थी कि मैं शंखकुमार के अतिरिक्त किसी का भी वरण नहीं करूंगी।[१८] इसी समय शंखकुमार दिखलाई दिया।

---

१५. त्रिषष्टि० ८।१।४८४

१६. त्रिषष्टि० ८।१।४८५ से ४८८

१७. त्रिषष्टि० ८।१।४८९

विद्याधर ने यशोमती से कहा—बहुत अच्छा हुआ, देखो यह शंखकुमार भी यहाँ आगया है। अब मैं तुम्हारे सामने ही इसे मार कर विवाह करूंगा।[१९] शंखकुमार भी तैयार था। दोनों का परस्पर युद्ध हुआ किन्तु अन्त में शंखकुमार ने विद्याधर को परास्त कर दिया। छाती में बाण लगने से विद्याधर भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। शंखकुमार ने उसे उपचार कर पुनः सचेत किया और पुनः युद्ध करने को आमंत्रण दिया,[२०] पर वह बोला—तुमने मुझे ही नहीं, मेरे हृदय को भी जीत लिया है।

शंखकुमार, धायमाता यशोमती और विद्याधर को लेकर जितारि राजा के पास गया। जितारि राजा के आग्रह से यशोमती व अन्य अनेक विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह कर शंख हस्तिनापुर आया और पिता से मिला।[२१]

अपराजितकुमार के भव में सूर और सोम नाम के उनके दो भाई थे। वे भी आरण स्वर्ग की आयु पूर्ण कर शंखकुमार के यशोधर और गुणभद्र नामक लघु भ्राता बने। श्रीधर राजा ने भी शंखकुमार को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की।[२२]

एक दिन हस्तिनापुर में श्रीषेण केवलज्ञानी भगवान् पधारे। शंखकुमार ने उनसे पूछा—यशोमती पर सहज रूप में मेरा इतना अनुराग कैसे है?[२३]

---

१८. एकस्मिन् गह्वरे तस्य तां सोऽपश्यद्यशोमतीम्।
विवाहायार्थयन्तं च खेचरं ब्रुवतीमिति॥
शंखोज्ज्वलगुणः शंखो भर्ता मे नापरः पुनः;
अप्रार्थितप्रार्थक रे! संखेदयसि किं मुधा॥
—त्रिषष्टि० ८।१।४९१-४९२

१९. त्रिषष्टि० ८।१।४९३-४९४

२०. त्रिषष्टि० ८।१।४९९-५००

२१. त्रिषष्टि० ८।१।५०४-५१८

२२. श्रीषेणराजाप्यन्येद्युर्दत्वा शंखाय मेदिनीम्।
गुणधरगणधरपादान्ते व्रतमाददे॥
—त्रिषष्टि० ८।१।५२०

२३. त्रिषष्टि० ८।१।५२२-५२५

८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग।
९ निर्मल सम्यग् दर्शन।
१० विनय।
११ षड् आवश्यक का विधिवत् समाचरण।
१२ ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन।
१३ ध्यान।
१४ तपश्चर्या।
१५ पात्र-दान।
१६ वैयावृत्ति।
१७ समाधि।
१८ अपूर्व ज्ञानाभ्यास
१९ श्रुत-भक्ति।
२० प्रवचन-प्रभावना[२७]

शंखमुनि ने इनकी आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में पादपोपगमन संथारा कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया।[२८]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन के अनुसार अपराजित का जीव अच्युत स्वर्ग से च्यवन कर नागपुर में श्रीचन्द राजा और श्रीमती का पुत्र सुप्रतिष्ठित हुआ।[२९]

---

२७. इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुली-
कएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिसु तं जहा—
अरहंत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु।
वच्छल्लया य तेसिं अभिक्खणाणोवओगे य ॥
दंसण विणय आवस्सए य सीलव्वए णिरइयारं।
खणलव तव च्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥
अपुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीओ ॥
—ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अ० ८ सू० ७०

२८. त्रिषष्टि० ८।१।५३४

२९. च्युत्वा गजपुरे जज्ञे जिनेन्द्रमतभावितः।
श्रीचन्द्रश्रीमतीसूनुः सुप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ॥
—हरिवंशपुराण ३४।४३, पृ० ४२२

एकदिन श्रीचन्द्र राजा ने सुप्रतिष्ठित को राज्य देकर सुमन्दिर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की।

एक समय कार्तिकपूर्णिमा की रात में राजा सुप्रतिष्ठित अपनी पत्नियों के साथ राजमहल की छत पर बैठा हुआ आनन्द क्रीडा कर रहा था। आकाश में उमड़-घुमड़कर घटाएं छा रही थीं, बिजलियां चमक रही थीं। इस दृश्य को देखकर राजा विचारने लगा—"कि राजलक्ष्मी भी बिजली की तरह ही चंचल है, क्षणभंगुर है। मन में विरक्ति हुई, चार सहस्र राजादि के साथ सुमन्दिर गुरु के पास उसने प्रव्रज्या ग्रहण की।[३०] अंग और पूर्वों का अध्ययन किया। सर्वतोभद्र से लेकर सिंहनिष्क्रीडित आदि उत्कृष्ट तप की आराधना की।[३१] सोलह कारण भावनाओं से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।[३२] एक मास का अनशन कर आयु पूर्ण किया।[३३]

(८) अपराजित :

त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र के अनुसार शंख राजा का जीव अपराजित नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ।[३४] यशोमती आदि चारों जीव भी वहीं पर पैदा हुए।[३५]

आचार्य जिनसेन के अनुसार सुप्रतिष्ठित का जीव जयन्त नामक अनुत्तर विमान में बावीस सागर की स्थिति वाला अहमिन्द्र-देव बना।[३६]

---

३०. चतुःसहस्रसंख्याता: सहस्रकिरणौजस:।
प्रातिष्ठन्त तपस्युग्रे सुप्रतिष्ठेन पार्थिवा:॥
—हरिवंशपुराण ३४।४६ से ४८

३१. हरिवंशपुराण ३४।४९-५०

३२. हरिवंशपुराण ३४, श्लो० १३१ से १४९ पृ० ४४५-४६

३३. हरिवंशपुराण ३४।१५०, पृ० ४४७

३४. त्रिषष्टि० ८।१।५३४, पृ० १९

३५. त्रिषष्टि० ८।१।५३५,

३६. शैलोनयासनकम्पाशक्तसुवृहत्पुण्यप्रकृत्यात्मका:।
प्रत्याख्याय स सुप्रतिष्ठमुनिर्भक्तं ततो मासिकम्॥
आराध्याथ चतुर्विधां बुधनुतामाराधनां शुद्धधी:।
त्रिंशज्जलधिस्थिति: सुरसुखं स्वर्गं जयन्तं श्रित:॥
—हरिवंशपुराण ३४।१५०, पृ० ४४७

८ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ।
९ निर्मल सम्यग् दर्शन ।
१० विनय ।
११ षड् आवश्यक का विधिवत् समाचरण ।
१२ ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन ।
१३ ध्यान ।
१४ तपश्चर्या ।
१५ पात्र-दान ।
१६ वैयावृत्ति ।
१७ समाधि ।
१८ अपूर्व ज्ञानाभ्यास
१९ श्रुत-भक्ति ।
२० प्रवचन-प्रभावना[२७]

शंखमुनि ने इनकी आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया । अन्त में पादपोपगमन संथारा कर समाधिपूर्वक आयु पूर्ण किया ।[२८]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन के अनुसार अपराजित का जीव अच्युत स्वर्ग से च्यवन कर नागपुर में श्रीचन्द राजा और श्रीमती का पुत्र सुप्रतिष्ठित हुआ ।[२९]

---

२७. इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेवियबहुली-
कएहिं तित्थयरनामगोयं कम्मं निव्वत्तिसु तं जहा—
अरहंत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसिं अभिक्खणाणोवओगे य ॥
दंसण विणय आवस्सए य सीलव्वए णिरइयारं ।
खणलव तव च्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥
अपुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीओ ॥
—ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अ० ८ सू० ७०

२८. त्रिषष्टि० ८।१।५३४

२९. च्युत्वा गजपुरे जज्ञे जिनेन्द्रमतभावितः ।
श्रीचन्द्रश्रीमतीसूनुः सुप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ॥
—हरिवंशपुराण ३४।४३, पृ० ४२२

भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

- वैदिक साहित्य के आलोक में
  - वेद
  - उपनिषद्
  - महाभारत
  - पुराण
- इतिहासकारों की दृष्टि में
  - डा० राधाकृष्णन्
  - डा० राय चौधरी
  - पी० सी० दीवान
  - कर्नल टॉड
  - डा० नगेन्द्रनाथ वसु

(९) **अरिष्टनेमि :**

वहां से आयु पूर्ण होने पर शंख राजा का जीव च्यवकर महाराजा समुद्रविजय की पत्नी शिवादेवी की कुक्षि में अरिष्टनेमि के रूप में उत्पन्न हुआ।[३७] यशोमती का जीव, राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती हुआ।[३८]

तीर्थंकरत्व यह एक गरिमामय महत्वपूर्ण पद है। वह सहज सुकृतसंचय से प्राप्त होता है। किसी भौतिक कामना विशेष से तप करना जैन दृष्टि में निषिद्ध माना है। उसे जैन परिभाषा में निदान कहा है, और वह विराधना का प्रतीक है।[३९] जैन दृष्टि से वीतरागता के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।[४०] प्रसुप्त अमृत तत्त्व को जागृत करने के लिए विचार को आचार के रूप में परिणत करना चाहिए। बीजअंकुर में बदलकर ही विराट् वृक्ष बनता है, तभी उसमें फल-फूल पदा होते हैं। जब विचार-आचार में परिणत होता है तभी अपूर्व ज्योति प्रकट होती है।

जैन दर्शन आत्मा की अनन्त आत्म-शक्ति को जागृत करने का सन्देश देता है कहा गया है—तुम्हारे अन्दर विराट् शक्तियां छिपी हैं, उन शक्तियों को प्रकट करो। आत्मा और परमात्मा में कोई मौलिक भेद नहीं है। जो आत्मा है वही परमात्मा है। यदि कुछ अन्तर है तो वह इतना ही कि आत्मा कर्मों के बंधन में बंधी है। माया और अविद्या में बंधी है। जब आत्मा कर्म, माया, और वासना के बंधनों को तोड़ देती है तब परमात्मा बन जाती है। भगवान् अरिष्टनेमि किस प्रकार साधना कर सिद्ध बनते हैं, इसका वर्णन अगले अध्याय में प्रस्तुत है।

---

३७. (क) त्रिषष्टि० ८।५ (ख) कल्पसूत्र १६२

३८. त्रिषष्टि० ८।६

३९. दशाश्रुतस्कंध, निदान प्रकरण

४०. दशवैकालिक अ० ६, उ० ४

भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता

भगवान् अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने जो कि साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त एवं शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, उनको ऐतिहासिक पुरुषों की पंक्ति में स्थान दिया है। किन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से इतिहास को भी अन्यथा रूप देने वाले लोग इस तथ्य को स्वीकार नहीं करना चाहते। मगर जब वे कर्मयोगी श्रीकृष्ण को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं तो अरिष्टनेमि भी उसी युग में हुए हैं और दोनों में अत्यन्त निकट के पारिवारिक सम्बन्ध थे, अर्थात् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव और अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय दोनों सहोदर भाई थे, अतः उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

वैदिक साहित्य के आलोक में :

ऋग्वेद में 'अरिष्टनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है।[1] 'स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः' (ऋग्वेद १।१४।८९।६) यहाँ पर अरिष्टनेमि शब्द भगवान् अरिष्टनेमि के लिए आया है। कितने ही विद्वानों

---

१. (क) ऋग्वेद १।१४।८९।६ (ख) ऋग्वेद १।२४।१८०।१०
(ग) ऋग्वेद ३।४।५३।१७ (घ) ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

की मान्यता है कि छान्दोग्योपनिषद् में भगवान् अरिष्टनेमि का नाम 'घोर आंगिरस ऋषि' आया है। घोर आंगिरस ऋषि ने श्री कृष्ण को आत्मयज्ञ की शिक्षा प्रदान की थी। उनकी दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋजुभाव, अहिंसा, सत्यवचन रूप थी।[२] धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि आंगिरस भगवान् नेमिनाथ का ही नाम था।[3] घोर शब्द भी जैन श्रमणों के आचार और तपस्या की उग्रता बताने के लिए आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर व्यवहृत हुआ है।[४]

छान्दोग्योपनिषद् में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण को घोर आङ्गिरस ऋषि उपदेश देते हुए कहते हैं—अरे कृष्ण ! जब मानव का अन्त समय सन्निकट आये तब उसे तीन वाक्यों का स्मरण करना चाहिए—

(१) त्वं अक्षतमसि—तू अविनश्वर है।

(२) त्वं अच्युतमसि—तू एक रस में रहने वाला है।

(३) त्वं प्राणसंशितमसि—तू प्राणियों का जीवनदाता है।[५]

श्रीकृष्ण इस उपदेश को श्रवण कर अपिपास हो गये, उन्हें अब किसी भी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं रही। वे अपने आपको धन्य अनुभव करने लगे।

प्रस्तुत कथन की तुलना हम जैन आगमों में आये हुए भगवान् अरिष्टनेमि के भविष्य कथन से कर सकते हैं। द्वारिका का विनाश और श्रीकृष्ण की जरत्कुमार के हाथ से मृत्यु होगी, यह सुनकर श्रीकृष्ण चिन्तित होते हैं। तब उन्हें भगवान् उपदेश सुनाते हैं। जिसे सुनकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट एवं खेदरहित होते हैं।+

---

२. अतः यत् तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमितिता अस्य दक्षिणा।
—छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

३. भारतीय संस्कृति और अहिंसा—पृ० ५७

४. घोरतवे, घोरे, घोरगुणे, घोर तवस्सी, घोरबंभचेरवासी।
—भगवती १।१

५. तद्धैतद् घोरं आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति। —छान्दोग्योपनिषद् प्र० ३, खण्ड १८

ऋग्वेद,[६] यजुर्वेद[७] और सामवेद[८] में भगवान् अरिष्टनेमि को ताक्ष्र्य अरिष्टनेमि भी लिखा है :—

स्वस्ति न इन्दो वृद्धश्रवा: स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा: ।
स्वस्तिनस्ताक्ष्योऽरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिदधातु ।।[९]

विज्ञों की धारणा है कि अरिष्टनेमि शब्द का प्रयोग जो वेदों में हुआ हैं वह भगवान् अरिष्टनेमि के लिए है ।[१०]

महाभारत में भी 'ताक्ष्र्य' शब्द का प्रयोग हुआ है । जो भगवान् अरिष्टनेमि का ही अपर नाम होना चाहिए ।[११] उन्होंने राजा सगर को जो मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है वह जैन धर्म के मोक्षमन्तव्यों से अत्यधिक मिलता-जुलता है । उसे पढ़ते समय सहज़ ही ज्ञात होता है कि हम मोक्ष सम्बन्धी जैनागमिक वर्णन पढ़ रहे हैं । उन्होंने कहा—

सगर ! मोक्ष का सुख ही वस्तुत: समीचीन सुख है । जो अहर्निश धन-धान्य आदि के उपार्जन में व्यस्त है, पुत्र और पशुओं में ही अनुरक्त है वह मूर्ख है, उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता । जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त है, जिसका मन अशान्त है, ऐसे मानव का उपचार कठिन है, क्योंकि जो राग के बंधन में बंधा हुआ है वह मूढ़ है तथा

+ अन्तकृद्दशा वर्ग ५, अ० १

६. (क) त्वमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमि पृतनाजमाशुं स्वस्तये ताक्ष्र्यमिहा हुवेम ।।
—ऋग्वेद १०।१२।१७८।१

(ख) ऋग्वेद १।१।१६

७. यजुर्वेद २५।१६

८. सामवेद ३।६

९. ऋग्वेद १।१।१६

१०. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ७

११. एवमुक्तस्तदा ताक्ष्र्य: सर्वशास्त्रविदांवर: ।
विबुध्य संपदं चाग्र्यां सद्वाक्यमिदमब्रवीत् ।।
—[शा]न्तिपर्व २८८।४

मोक्ष पाने के लिए अयोग्य है।[१२]

ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्पष्ट है कि सगर के समय में वैदिक लोग मोक्ष में विश्वास नहीं करते थे अतः यह उपदेश किसी वैदिक ऋषि का नहीं हो सकता। उसका सम्बन्ध श्रमणसंस्कृति से है।

यजुर्वेद में अरिष्टनेमि का उल्लेख एक स्थान पर इस प्रकार आया है—अध्यात्मयज्ञ को प्रगट करने वाले, संसार के भव्य जीवों को सब प्रकार से यथार्थ उपदेश देने वाले और जिनके उपदेश से जीवों की आत्मा बलवान् होती है उन सर्वज्ञ नेमिनाथ के लिए आहुति समर्पित करता हूँ।[१३]

डाक्टर राधाकृष्णन् ने लिखा है यजुर्वेद में ऋषभदेव अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है।[१४]

स्कंदपुराण के प्रभास खण्ड में वर्णन है—अपने जन्म के पिछले भाग में वामन ने तप किया। उस तप के प्रभाव से शिव ने वामन को दर्शन दिये। वे शिव श्यामवर्ण, अचेल तथा पद्मासन से स्थित थे। वामन ने उनका नाम नेमिनाथ रखा। यह नेमिनाथ इस घोर कलिकाल में सब पापों का नाश करने वाले हैं। उनके दर्शन और स्पर्श से करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त होता है।[१५]

---

१२. महाभारत, शान्तिपर्व २८८।५,६

१३. वाजस्य नु प्रसव आवभूवेमात्र विश्वा भुवनावि सर्वतः।
स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजा पुष्टिं वर्द्धमानोऽस्मै स्वाहा ॥
—वाजसनेयि-माध्यंदिन शुक्लयजुर्वेद, अध्याय ९ मंत्र २५
सातवलेकर संस्करण (विक्रम १९८४

१४. Indian philosphy vol. 1. p. 287
The Yajurveda mentions the names of Three Thirthankaras—Rishabha, Ajitnath and Arishtanemi.

१५. भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम्।
तेनैवतपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥
पद्मासनः समासीनः श्याममूर्तिदिगम्बरः।
नेमिनाथः शिवोऽथैवं नाम चक्रेऽस्य वामन ॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशकः।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥
—स्कंदपुराण, प्रभास खण्ड

प्रभासपुराण में भी अरिष्टनेमि की स्तुति की गई है।[16]

महाभारत के अनुशासन पर्व, अध्याय १४९ में विष्णुसहस्र नाम में दो स्थानों पर 'शूरः शौरिर्जनेश्वरः' पद व्यवहृत हुआ है। जैसे—

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ।।५०।
कालनेमि महावीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहाहरिः ।।८२।

इन श्लोकों में 'शूरः शौरिर्जनेश्वरः' शब्दों के स्थान में 'शूरः शौरिर्जिनेश्वरः' पाठ मानकर अरिष्टनेमि अर्थ किया गया है।[17]

स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ पर श्रीकृष्ण के लिए 'शौरि' शब्द का प्रयोग हुआ है। वर्तमान में आगरा जिले के बटेश्वर के सन्निकट शौरिपुर नामक स्थान है। वही प्राचीनयुग में यादवों की राजधानी थी। जरासंध के भय से यादव वहां से भागकर द्वारिका में जा बसे। शौरिपुर में ही भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ था, एतदर्थ उन्हें 'शौरि' भी कहा गया है। वे जिनेश्वर तो थे ही अतः यहाँ 'शूरः शौरिर्जिनेश्वरः' पाठ अधिक तर्कसंगत लगता है। क्योंकि वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में कहीं पर भी शौरिपुर के साथ यादवों का सम्बन्ध नहीं बताया, अतः महाभारत में श्री कृष्ण को 'शौरि' लिखना विचारणीय अवश्य है।

भगवान् अरिष्टनेमि का नाम अहिंसा की अखण्ड ज्योति जगाने के कारण इतना अत्यधिक लोकप्रिय हुआ कि महात्मा बुद्ध के नामों की सूची में एक नाम अरिष्टनेमि का भी है। लंकावतार के तृतीय परिवर्तन में बुद्ध के अनेक नाम दिये हैं। वहाँ लिखा है—जिस प्रकार एक ही वस्तु के अनेक नाम प्रयुक्त होते हैं उसी प्रकार बुद्ध

---

१६. कैलाशे विमले रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ।।
रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिविमलाचले।
ऋषीणां याश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ।।
—प्रभासपुराण ४९-५०

१७. मोक्षमार्ग प्रकाश—पं० टोडरमल

के असंख्य नाम हैं। कोई उन्हें तथागत कहते हैं तो कोई उन्हें स्वयंभू, नायक, विनायक, परिणायक, बुद्ध, ऋषि, वृषभ, ब्राह्मण, विष्णु, ईश्वर: प्रधान, कपिल, भूतान्त, भास्कर, अरिष्टनेमि, राम, व्यास, शुक, इन्द्र, बलि, वरुण आदि नामों से पुकारते हैं।[१८]

इतिहासकारों की दृष्टि में :

नन्दी सूत्र में ऋषि-भाषित (इसिभासियं) का उल्लेख है।[१९] उसमें पैंतालीस प्रत्येक बुद्धों के द्वारा निरूपित पैंतालिस अध्ययन हैं। उसमें बीस प्रत्येक बुद्ध भगवान् अरिष्टनेमि के समय हुए।[२०] उनके नाम इस प्रकार हैं।

१ नारद।
२ वज्जियपुत्र।
३ असित दविक।
४ भारद्वाज अंगिरस,
५ पुष्पसाल पुत्र।
६ वल्कल चीरि।
७ कुर्मा पुत्र।
८ केतली पुत्र।
९ महाकश्यप।
१० तेतलिपुत्र।
११ मंखली पुत्र।
१२ याज्ञवल्क्य।
१३ मैत्रय भयाली।
१४ बाहुक।
१५ मधुरायण।
१६ सोरियायण।
१७ विदु।
१८ वर्षपकृष्ण।
१९ आरियायण।
२० उल्कलवादी।

उनके द्वारा प्ररूपित अध्ययन अरिष्टनेमि के अस्तित्व के स्वयंभूत प्रमाण हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर राय चौधरी ने अपने वैष्णव धर्म के प्राचीन इतिहास में भगवान् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को श्री कृष्ण का चचेरा भाई लिखा है।[२१]

---

१८. बौद्धधर्म दर्शन पृ० १६२

१९. नन्दीसूत्र

२०. पत्तेय बुद्धमिसिणो, वीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स।
पासस्स य पण्णरस, वीरस्स विलीणमोहस्स॥
—इसिभासियं, पढमा संगहिणी गा० १

२१. णारद-वज्जिय-पुत्ते आसिते अंगरिसि-पुप्फसाले य।
वक्कलकुम्मा केवलि कासव तह तेतलिसुते य॥

पी० सी० दीवान ने लिखा है जैन ग्रन्थों के अनुसार नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के बीच में ८४००० वर्ष का अन्तर है। हिन्दू पुराणों में इस बात का निर्देश नहीं है कि वसुदेव के समुद्रविजय बड़े भाई थे और उनके अरिष्टनेमि नामक कोई पुत्र था। प्रथम कारण के सम्बन्ध में दीवान का कहना है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारे वर्तमान ज्ञान के लिए यह संभव नहीं है कि जैन ग्रन्थकारों के द्वारा एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के बीच में सुदीर्घकाल का अन्तराल कहने में उनका क्या अभिप्राय है, इसका विश्लेषण कर सकें; किन्तु केवल इसीकारण से जैनग्रन्थों में वर्णित अरिष्टनेमि के जीवनवृत्तान्त को, जो अतिप्राचीन प्राकृत ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है, दृष्टि से ओझल कर देना युक्तियुक्त नहीं है।

दूसरे कारण का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि भागवत सम्प्रदाय के ग्रन्थकारों ने अपने परम्परागत ज्ञान का उतना ही उपयोग किया है जितना श्री कृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने के लिए आवश्यक था। जैनग्रन्थों में ऐसे अनेक ऐतिहासिक तथ्य हैं जो भागवत साहित्य में उपलब्ध नहीं हैं।[२२]

कर्नल टॉड ने अरिष्टनेमि के सम्बन्ध में लिखा है 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चार बुद्ध या मेधावी महापुरुष हुए हैं। उनमें पहले आदिनाथ और दूसरे नेमिनाथ थे। नेमिनाथ ही स्केन्डीनेविया निवासियों के प्रथम ओडिन तथा चीनियों के प्रथम 'फो' देवता थे।[२३]

प्रसिद्ध कोषकार डाक्टर नगेन्द्रनाथ वसु, पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर फुहर्र, प्रोफेसर बारनेट, मिस्टर करवा, डाक्टर हरिदत्त, डाक्टर

मंखली जण्णभयालि वाहुय महु सोरियाण विदूविपू।
वरिसकण्हे आरिय उक्कलवादी य तरुणे य॥

— इसिभासियाइं पढमा संगहणी गा० २-३

२२. जैन साहित्य का इतिहास

—पूर्व पीठिका—ले० पं० कैलाशचन्द्रजी पृ० १७०-१७१

२३. अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पत्रिका, जिल्द २३ पृ० १२२

प्राणनाथ विद्यालंकार प्रभृति अन्य अनेक विद्वानों का स्पष्ट मन्तव्य है कि भगवान् अरिष्टनेमि एक प्रभावशाली पुरुष हुए थे, उन्हें ऐतिहासिक पुरुष मानने में कोई बाधा नहीं है।

साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण वैदिक ग्रन्थों में स्पष्ट नाम का निर्देश होने पर भी टीकाकारों ने अर्थ में परिवर्तन किया है, अतः आज आवश्यकता है तटस्थ दृष्टि से उस पर चिन्तन करने की। जब हम तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करेंगे तो सूर्य के उजाले की भाँति स्पष्ट ज्ञात होगा कि भगवान् अरिष्टनेमि एक ऐतिहासिक पुरुष थे।

जन्म एवं विवाह प्रसंग

- जन्मस्थली
- जन्म
- वंश, गोत्र, कुल
- नामकरण
- बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व
- पराक्रम दर्शन
- हरिवंशपुराण में
- राजुल की मंगनी
- तोरण से लौट गये
- दिगम्बर ग्रन्थों में

जन्म एवं विवाह प्रसंग

जन्मस्थली :

श्वेताम्बर, दिगम्बर सभी ग्रंथों के अनुसार भगवान अरिष्टनेमि का जन्म सोरियपुर में हुआ।[1] सोरियपुर कुशार्वत जनपद की राजधानी थी।[2] जैनग्रन्थों के उल्लेखानुसार राजा शौरि ने अपने लघु भ्राता सुवीर को मथुरा का राज्य देकर कुशावर्त में जा शौरिपुर नगर वसाया था।[3] पर यह स्मरण रखना चाहिए कि

---

१. (क) सोरियपुरंमि नयरे, आसी राया महिड्ढिए।
समुद्दविजए नामं रायलक्खणसंजुए ॥
तस्स भज्जा सिवा नाम तीसे पुत्तो महायसो।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति लोगनाहे दमीसरे ॥

—उत्तराध्ययन, २२।३-४

(ख) कल्पसूत्र सूत्र १६२

(ग) भव-भावना

२. (क) बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति १, ३२६३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र १।६६। पृ० १७३

(ग) प्रवचन सारोद्धार

३. कल्पसूत्र टीका ८, पृ० १७१

प्रस्तुत जनपद पश्चिमी तट के कुशार्त से भिन्न है। यह नगर यमुना के तट पर अवस्थित था।[४] सोरिक (सोरियपुर) नारद की जन्म भूमि थी।[५] सूत्रकृताङ्ग में एक 'लोरी' में अनेक नगरों के साथ 'सोरियपुर' का भी उल्लेख हुआ है।[६] वर्तमान में इसकी पहचान आगरा जिले में यमुना नदी के किनारे बटेश्वर के पास आये हुए 'सूर्यपुर' या 'सूरजपुर' की जाती है।[७] प्राचीन तीर्थमाला के अनुसार आगरा जिले के शिकुराबाद स्टेशन से यहाँ पहुँचा जाता है।[८]

भगवान् अरिष्टनेमि ने जिस समय सोरियपुर में जन्म लिया उस समय वहाँ द्वैध राज्य था।[A] एक ओर वृष्णिकुल के नेता वसुदेव राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थीं—एक का नाम रोहिणी और दूसरी का नाम देवकी था। रोहिणी के पुत्र बलराम थे, देवकी के पुत्र 'केशव' थे।[९]

दूसरी ओर अन्धककुल के नेता समुद्रविजय राज्य करते थे, उनकी पटरानी का नाम शिवा था। उनके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि सत्यनेमि, और दृढ़नेमि। अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर हुए और रथनेमि सत्यनेमि प्रत्येक बुद्ध हुए।[१०]

---

४. विपाकसूत्र ८, पृ० ४५

५. आवश्यक चूर्णि, उत्तरभाग, पृ० १९४

६. (क) सूत्रकृताङ्ग वृत्ति, पत्र ११९
   (ख) उत्तराध्ययन—एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ३७२

७. कालक कथा संग्रह, उपोद्घात पृ० ५२

८. (क) प्राचीन तीर्थमाला भाग १, भूमिका पृ० ३८
   (ख) गजेटियर ऑव आगरा पृ० १३७, २३६

A उत्तराध्ययन (मूल-अर्थ) तेरापंथी महा सभा, कलकत्ता

९. सोरियपुरंमि नयरे आसि राया महिड्ढिए।
   वसुदेवे त्ति नामेणं रायलक्खणसंजुए॥
   तस्स भज्जा दुवे आसी रोहिणी देवई तहा।
   तासिं दोण्हं पि दो पुत्ता इट्ठा राम केसवा॥
   —उत्तराध्ययन २२, गा० १-२

इस प्रकार सोरियपुर में द्वैध-राज्य प्रणाली प्रचलित थी। जिसे 'विरुद्ध राज्य' भी कहा जाता था।[11] अंधक-वृष्णियों के संघ-राज्य का उल्लेख पाणिनि ने भी किया है।[12]

जन्म :

अर्हत् अरिष्टनेमि का जीव अपराजित महाविमान में बत्तीस सागरोपम का आयुष्य भोगकर वर्षाऋतु के चतुर्थमास अर्थात् कार्तिक मास की कृष्णा त्रयोदशी के दिन च्यवकर माता शिवादेवी की कुक्षि में आया। उस समय रात्रि के पूर्व और अपर भाग की सन्धि वेला थी। चित्रा नक्षत्र का योग था।[13]

आचार्य जिनसेन[14] और गुणभद्र[15] का मन्तव्य है कि कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन भगवान् स्वर्ग से च्युत होकर गर्भ में आये थे।

---

१०. सोरियपुरंमि नयरे, आसी राया समुद्दविजओत्ति।
तस्सासि अग्गमहिसी, सिवत्ति देवी अणुज्जंगी॥
तेसिं पुत्ता चउरो अरिट्ठनेमि तहेव रहनेमी।
तइओ अ सच्चनेमी, चउत्थओ होइ दढनेमि॥
जो सो अरिट्ठनेमी, बावीसइमो अहेसि सो अरिहा।
रहनेमि सच्चनेमी, एए पत्तेयबुद्धा. उ॥

—उत्तराध्ययन निर्युक्ति गा० ४४३-४४५

११. आचारांग २।३।१।१९९; २।११।१।४४१

१२. अष्टाध्यायी (पाणिनी) ६।२।३४

१३. (क) कल्पसूत्र, सूत्र १६२, देवेन्द्रमुनि सम्पादित पृ० २२७
(ख) भव-भावना

१४. अनन्तरं स्वप्नगणस्य कम्पयन्।
सुरासनान्याविशदम्बिकाननम्॥
सितेभरूपो भगवान् दिवश्च्युतः।
प्रकाशयन् कार्तिकशुक्लषष्ठिकाम्॥

—हरिवंशपुराण ३७, श्लोक २२, पृ० ४७३

गर्भ में आते ही गर्भ के प्रभाव से माता शिवा देवी ने हस्ती, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीदेवी पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कुंभ, पद्मसरोवर, क्षीरसागर, विमान, रत्नपुञ्ज, और निर्धूम अग्नि, ये चौदह महास्वप्न देखे।[१६] दिगम्बर परम्परा के अनुसार सोलह स्वप्न देखे थे। उपरोक्त चौदह स्वप्नों के अतिरिक्त मत्स्ययुगल और नागेन्द्र भवन ये दो स्वप्न अधिक थे।[१७]

वर्षाऋतु के प्रथम मास श्रावण शुक्ला पञ्चमी के दिन नौ माह पूर्ण होने के पश्चात् चित्रा नक्षत्र के योग में भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ।[१८] गुणभद्राचार्य ने श्रावण शुक्ला षष्ठी लिखा है[१९] परन्तु दिगम्बर परम्परा के समर्थ आचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण में वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म माना है।[२०] हमारी दृष्टि से यह जन्मतिथि मानना संगत नहीं है, क्योंकि कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उनके मन्तव्यानुसार वे गर्भ में आये, और वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को उनका जन्म हुआ तो उनका गर्भ काल छह माह और सात दिन का ही होता है, जबकि

---

१५. मासे कार्तिके शुक्लपक्षे ॥
पष्ठ्यामथोत्तराषाढे निशान्ते स्वप्नमालिकाम् ।
आलोकतानुवक्त्राब्जं प्रविष्ठञ्च गजाधिपम् ॥
—उत्तरपुराण ७१।३१-३२ पृ० ३७७

१६. कल्पसूत्र, १६२

१७. (क) हरिवंशपुराण सर्ग ३७, श्लोक ६-२१, पृ० ४७१-४७३
(ख) उत्तरपुराण ७१, श्लोक ३२

१८. अरिहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावण-सुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अरोगा अरोगं पयाया ।
—कल्पसूत्र १६३

१९ स पुनः श्रावणे शुक्लपक्षे पष्ठीदिने जिनः ।
ज्ञानत्रितयभृत्त्वष्ट्रयोगे तुष्ट्यामजायत ॥
—उत्तरपुराण ७१।३८, पृ० ३७७

स्वयं जिनसेन ने प्रस्तुत प्रकरण में ही गर्भ में नौ माह रहने का उल्लेख किया है।[21]

वंश, गोत्र, कुल :

भगवान अरिष्टनेमि का वंश हरिवंश माना गया है।[22] हरिवंश उत्तम वंशों में परिगणित है क्योंकि अनेक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव आदि हरिवंश में उत्पन्न हुआ करते हैं।[23]

अरिष्टनेमि का गोत्र गौतम[24] और कुल वृष्णि था।[25] अंधक और वृष्णि दो भाई थे। वृष्णि अरिष्टनेमि के दादा थे। उनसे वृष्णि कुल का प्रवर्तन हुआ। अरिष्टनेमि वृष्णि कुल में प्रधान पुरुष थे, अतः उन्हें 'वृष्णि पुङ्गव' कहा गया है।[26]

---

२०. ततः कृतसुसङ्गमे निशि निशाकरे चित्रया।
प्रशस्तसमवस्थिते ग्रहगणे समस्ते शुभे॥
असूत तनयं शिवा शिवदशुद्धवैशाखज—
त्रयोदशतिथौ जगज्जयनकारिणं हारिणम्॥
—हरिवंशपुराण ३८।९। पृ० ४७९ भारतीय ज्ञानपीठ काशी

२१. ····गमयतः स्म मासान्नव।
—वहीं ३८।८। पृ० ४७९

२२. (क) तत्थ य पंचसु लक्खेसु समइक्कंतेसु णमिजिणाओ।
अरिट्ठणेमिकुमारो समुप्पण्णो। सो य हरिवंसे॥
—चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, पृ० १८०

(ख) नेमीशो हरिवंशशैलतिलको द्वाविंशसंख्यो जिनः।
—हरिवंशपुराण ३४।१५१

२३. एवं खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु आयाइंसुवा, आयाइंति वा आयाइस्संति वा।
—कल्पसूत्र सूत्र १७, पृ० ५६

२४. (क) उत्तराध्ययन २२।५
(ख) सप्ततिशतस्थान प्रकरण ३७-३८, द्वार, गा० १०५

उत्तराध्ययन[२७] और दशवैकालिक[२८] में उनका कुल अंधक-वृष्णि भी लिखा है। अंधक-वृष्णि कुल उन दोनों भाइयों के संयुक्त नाम से चलता था।

उत्तरपुराण में 'अंधकवृष्टि' शब्द प्रयुक्त हुआ है जो एक ही व्यक्ति का नाम है। कुशार्थ (कुशार्त) देश के सौर्यपुर के स्वामी शूरसेन के शूरवीर नामक पुत्र हुआ। उसके दो पुत्र हुए अंधकवृष्टि और नरवृष्टि। समुद्रविजय प्रभृति अंधकवृष्टि के दस पुत्र थे।[२९] संक्षेप में उत्तरपुराण के अनुसार उनका वंश इस प्रकार है।[30]

—(देखिए सारणी)

---

२५. (क) नियगाओ भवणाओ निज्जाओ वण्हिपुंगवो।

—उत्तराध्ययन अ० २२, गा० १३

(ख) अहं च भोगरायस्स तं चऽसि अंधगवण्हिणो।

—उत्तराध्ययन २२।४४

२६. 'वृष्णिपुंगव' : यादवप्रधानो भगवानरिष्टनेमिरितियावत्।

—उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति। पत्र० ४९०

२७. उत्तराध्ययन अ० २२, गा० ४३

२८. दशवैकालिक २।८

२९. तदा कुशार्थविषये, तद्वंशाम्बरभास्वतः।
अवार्यनिजशौर्येण, निर्जिताशेषविद्विषः॥
ख्यातशौर्यपुराधीश - सूरसेनमहीपतेः।
सुतस्य शूरवीरस्य, धारिण्याश्च तनूद्भवौ॥
विख्यातोऽन्धकवृष्णिश्च पतिर्वृष्टिर्नरादिवाक्॥

—उत्तरपुराण ७०।९२-९४

३०. उत्तरपुराण ७०।९३-१००

शूरसेन
शूरवीर
अंधकवृष्टि
नरवृष्टि
(१) समुद्रविजय
(२) स्तिमितसागर
(३) हिमवान्
(४) विजय
(५) विद्वान्
(६) अचलधारण
(७) पूरण
(८) पूरितार्थीच्छ
(९) अभिनन्द
(१०) वसुदेव
(१) कुन्ती
(२) माद्री
(१) उग्रसेन
(२) देवसेन
(३) महासेन
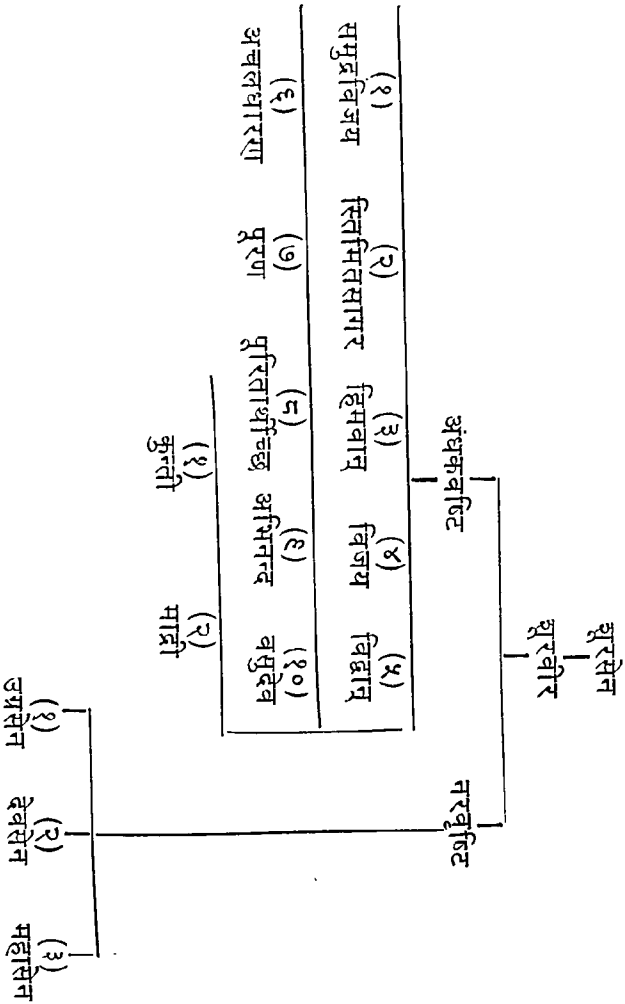
अन्तकृद्दशांग की वृत्ति के अनुसार समुद्रविजय आदि दस भाइयों के नाम इस प्रकार है[31] :—(१) समुद्रविजय, (२) अक्षोभ्य, (३) स्तिमित, (४) सागर (५) हिमवान् (६) अचल (७) धरण, (८) पूरण, (९) अभिचन्द्र, (१०) वसुदेव।

नामकरण :

भगवान् अरिष्टनेमि के नामकरण के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत हैं।

आचार्य हेमचन्द्र के अभिमतानुसार जब भगवान् गर्भ में थे तब माता शिवा ने रिष्टरत्नमयीनेमि (चक्रधारा) स्वप्न में देखी थी अतः पुत्र का नाम अरिष्टनेमि रखा गया।[32]

आचार्य जिनसेन ने उपरोक्त कथन का उल्लेख न करके, लिखा है कि जब इन्द्र भगवान् को मेरु पर्वत पर अभिषेक के लिए ले गये, तब अभिषेक के पश्चात् सुन्दर वस्त्राभूषणों से वेष्टित कर उनका अरिष्टनेमि नाम रखा और उनकी संस्तवना की।[33]

गुणभद्र ने लिखा है कि इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक कर वस्त्राभूषण पहनाये और 'ये समीचीन धर्मरूपी चक्र की नेमि है— चक्रधारा है' एतदर्थ उन्हें नेमि नाम से सम्बोधित किया।[34]

---

३१. दसण्हं दसाराणं ति तत्रैते दश—
समुद्रविजयोऽक्षोभ्यः स्तिमितः सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव, धरणः पूरणस्तथा॥
अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती माद्री च विश्रुते॥
—अन्तकृद्दशांग, वृत्ति १।१,

३२. स्वप्नेऽरिष्टमयी दृष्टा चक्रधारात्र गर्भगे।
मात्रा तस्यारिष्टनेमिरित्याख्यां तत्पिता व्यधात्॥
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक १९८

३३. दुकूलमणिभूषणस्रगनुलेपनोद्भासितं प्रयोज्य।
शुभपर्वतं विभुमरिष्टनेम्याख्यया॥
सुरासुरगणास्ततः स्तुतिभिरित्यरत्थमिन्द्रादयः।
परीत्य परितुष्टुवुर्जिनमिनं सुपृथ्वीश्रियाम्॥
—हरिवंशपुराण ३८।५५, पृ० ४८६

मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान् के नामकरण के सम्बन्ध में निम्न कल्पनाएं की हैं—

स्वप्न में माता ने रत्नमयी श्रेष्ठ रिष्टनेमि देखी थी अतः उनका नाम रिष्टनेमि रखा।

भगवान् के जन्म लेने से जो अरि थे वे सभी नष्ट हो गये, या भगवान् अरियों (शत्रुओं) के लिए भी इष्ट हैं, उन्हें श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाले हैं अतः उनका नाम अरिष्टनेमि रखा।[३५]

उत्तराध्ययन की सुखबोधावृत्ति में भी ऐसा ही उल्लेख किया है।[३६]

बाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व :

भगवान् अरिष्टनेमि का शरीर सुगठित वलिष्ठ एवं कान्तिमान् था। शारीरिक वर्ण श्याम[३७] होने पर भी उनकी मुखाकृति अत्यन्त मनमोहक, चित्ताकर्षक, व तेजपूर्ण थी। जो भी उन्हें देखता, देखता ही रह जाता था। वे एक हजार आठ शुभ लक्षणों के धारक थे।[३८] वज्र ऋषभनाराच संहनन, और समचतुरस्र संस्थान के धारक थे।[३९]

---

३४. अभिषिच्य यथाकाममलङ्कृत्य यथोचितम्।
नेमिं सद्धर्मचक्रस्य नेमिनाम्ना तमभ्यधात्॥

—उत्तरपुराण ७१।४६, पृ० ३७८

३५. वररिट्ठरयणमइअं जं नेमिं सुमिणए निअइ जणणी।
पिअराइं रिट्ठनेमि त्ति तेण नामं निवेसंति॥
अहवा वि अरिट्ठाइं नट्ठाइं जं इमेण जाएणं।
इट्ठो अ अरीणं पि हु अरिट्ठफलसामलो वा वि॥
ठावंति तेण नामं अरिट्ठनेमि त्ति जिणवरिंदस्स।
रूवेण य चरिएहिं आणंदिअसयलभुवणस्स॥

—भव-भावना गा० २३४३ से २३४५ पृ० १५७

३६. दिट्ठो रिट्ठरयणमतो नेमी सुमिणे गब्भगए इमम्मि।
सिवाए त्ति 'अरिट्ठनेमि' त्ति कयं पिउणा नामं॥

—उत्तराध्ययन सुखबोध पृ० २७८

३७. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० ५।५८, पृ० ६९
(ख) उत्तराध्ययन अ० २२।५

मत्स्य की आकृति का उनका उदर था।[४०] वे दस धनुष्य लम्बे थे।[४१] उनका स्वर बहुत ही मधुर था।

शारीरिक सौन्दर्य की तरह ही उनका आन्तरिक सौन्दर्य भी कम आकर्षक नहीं था। उनका हृदय अत्यन्त उदार था। राजकुमार होने पर भी राजकीय वैभव का तनिक मात्र भी अभिमान उन्हें स्पर्श न कर सका था। उनकी वीरता-धीरता योग्यता एवं ज्ञान-गरिमा को निहार कर सभी लोग चकित थे। वे अपने अनुपम विवेक, विचार, शिष्टता एवं गाम्भीर्य प्रभृति हजारों गुणों के कारण जन-जन के अत्यधिक प्रिय हो चुके थे।

पराक्रम दर्शन :

जब अरिष्टनेमि आठ वर्ष के हुए तब मथुरा में श्रीकृष्ण ने कंस का वध कर डाला।[४२] राजा जरासंध यादवों पर कुपित हो गये। मरने के भय से सभी यादव पश्चिमी समुद्र तट पर चले गये। वहाँ उन्होंने नव्य-भव्य द्वारिका नगरी का निर्माण किया। सभी यादव सुखपूर्वक वहां रहने लगे। कुछ समय के पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण ने जरासंध को मार दिया और वे तीन खण्ड के अधिपति राजा बन गये।[४३]

---

३८. सोऽरिट्ठनेमिनामो उ, लक्खणस्सरसंजुओ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी॥

—उत्तराध्ययन अ० २२।५

३९. वज्जरिसहसंघयणो, समचउरंसो झसोयरो।

—उत्तराध्ययन २२।६

४०. उत्तराध्ययन २२।६

४१. (क) समवायाङ्ग सूत्र १०।४
(ख) ज्ञाताधर्म अ० ५।५८, पृ० ६९
(ग) निरयावलिका व० ५।१

४२. जातो अट्ठवरिसो, एत्थंतरे य हरिणा कंसे विणिवाइए।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २७८

४३. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, पर्व ८, सर्ग ५ से आठ तक
(ख) चउप्पन्नमहापुरिसचरियं
(ग) सुखबोधा पृ० २७८

अरिष्टनेमि अब युवा हो चुके थे। एकदिन वे अपने हमजोली संगी-साथियों के साथ घूमते-घामते श्रीकृष्ण की आयुधशाला में गये। आयुधशाला के रक्षकों ने शस्त्रों का महत्त्व बताते हुए कहा—इन्हें श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई काम में नहीं ले सकता। किसी की शक्ति नहीं है जो इन्हें उठा सके। यह सुनते ही अरिष्टनेमि ने सूर्य के समान चमचमाते हुए सुदर्शनचक्र को अंगुली पर रखकर कुंभकार के चक्र के समान फिरा दिया। सर्पराज की तरह भयंकर शार्ङ्ग धनुष्य को कमल नाल की तरह मोड़ दिया। कौमुदीगदा सहज रूप से उठाकर स्कंध पर रखली और पाञ्चजन्य शंख को इस प्रकार फूंका कि सारी द्वारिका भय से कांप उठी। उस प्रचंड ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण सोचने लगे—कौन नया चक्रवर्ती पैदा हो गया है?[४४] शत्रु के भय से भयभीत श्रीकृष्ण सीधे आयुधशाला में पहुँचे। अरिष्टनेमि द्वारा शंख बजाने की बात जानकर वे बहुत ही चकित हुए। फिर भी शक्तिपरीक्षण के लिए श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा—व्यायामशाला में चलकर अपने बाहुबल की परीक्षा करें, क्योंकि पाञ्चजन्य शंख को फूंकने की शक्ति मेरे अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है। तुमने यह शंख फूंका, यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है। मुझे अधिक प्रसन्न करने के लिए तुम अपना भुजबल बताओ। मेरे साथ बाहुयुद्ध करो। अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की बात स्वीकार की।[४५]

---

४४. तो चिंतइ कण्हो नूणं कोइ चक्की इह समुप्पन्नो।
संखाऊरणसत्तो जमिमस्सऽहिआ ममाहितो॥

—भव-भावना २९८८ पृ० १९७

४५. (क) पाञ्चजन्यं पूरयितुं महते नापरः क्षमः।
भवता पूरिते त्वस्मिन् भ्रातः प्रीतोऽस्मि संप्रति॥
मां विशेषात् प्रीणयितुं स्वदोः स्थामापि दर्शय।
युध्यस्व बाहुयुद्धेन मयैव सह मानद!

—त्रिषष्टि० ८।९।१९-२०

(ख) भव-भावना

(ग) उत्तराध्ययन सुखबोधा २७८

सदय हृदय अरिष्टनेमि ने सोचा—यदि मैं छाती से, भुजा से, और पैरों से श्रीकृष्ण को दबाऊंगा तो इनका न जाने क्या हाल होगा। एतदर्थ ऐसा करूं कि इनको कष्ट भी न हो और ये मेरी भुजा के बल को जान भी जाएं। अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण से कहा—पृथ्वी पर इधर से उधर लोटना यह तो साधारण मानवों का कार्य है, अतः परस्पर भुजा को झुकाने के लिए ही अपना युद्ध होना चाहिए।[४६] श्रीकृष्ण को भी यह बात पसन्द आयी और उन्होंने अपनी भुजा लम्बी की। किन्तु वृक्ष की विराट शाखा के समान भुजा कमलनाल की तरह सहज रूप में अरिष्टनेमि ने झुका दी। उसके पश्चात् नेमिनाथ ने अपनी वाम भुजा लम्बी की। तब श्रीकृष्ण जैसे वृक्ष पर बंदर झूमता है, वैसे उस भुजा पर झूमने लगे। नेमिकुमार के भुजा-स्तंभ को, जैसे जंगल का हाथी बड़े पहाड़ को नहीं झुका सकता, वैसे ही वे किञ्चित् मात्र भी नहीं झुका सके। तब श्रीकृष्ण नेमिकुमार का आलिंगन करते हुए बोले—प्रिय बंधु! जैसे बलराम मेरे बल से संसार को तृण समान समझता है, वैसे मैं भी तुम्हारे बल से विश्व को तृण समान समझता हूँ।[४७]

प्रस्तुत घटनाचित्र उनके महान् धैर्य, शौर्य और प्रबल-पराक्रम को उजागार कर रहा है।

श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के अतुल बल को देखकर आश्चर्यचकित हुए साथ ही चिन्ताग्रस्त भी कि "कहीं यह मेरा राज्य हड़प

---

४६. प्रकृत्या सदयो नेमिर्दध्याविति ममोरसा।
दोष्णा पादेन चाक्रान्तः कथं कृष्णो भविष्यति॥
यथासौ याति नानर्थं मद्भुजस्थाम वेत्ति च।
तथा कार्यमिति ध्यात्वा जनार्दनमभाषत॥
प्राकृतामिदं युद्धं मुहुर्भूलुठनाकुलम्।
मिथो दोर्नामनेनैव तद्भूयाद्युद्धमावयोः॥

—त्रिषष्टि० ८।९।२२ से २४

४७. (क) त्रिषष्टि० ८।९, २५ से २९ पृ० १३०-१३१
(ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा २७८
(ग) भव-भावना ३०२६
(घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका

न लें।" उसी समय आकाशवाणी हुई कि अरिष्टनेमिकुमार अवस्था में ही प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे। आकाशवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण चिन्तामुक्त हुए।[४८] वे पूर्वापेक्षया अरिष्टनेमि का अधिक सत्कार और सन्मान करने लगे, क्योंकि वे समझते थे कि अरिष्टनेमि मुझ से अधिक शक्तिसम्पन्न हैं।

हरिवंशपुराण में :

आचार्य जिनसेन ने भगवान् अरिष्टनेमि के पराक्रम का वर्णन कुछ अन्य प्रकार से किया है। वे लिखते हैं एक बार भगवान् अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण की राजसभा में गये। श्रीकृष्ण ने उनका सत्कार किया और वे सिंहासन पर आसीन हुए।[४९]

उस समय सभा में वीरता का प्रसंग चल रहा था। वीरों की परिगणना की जा रही थी। किसी सभासद् ने वीर अर्जुन की प्रशंसा की तो किसी ने भीम की, और किसी ने युधिष्ठिर की। किसी ने आगे बढ़कर बलदेव के बल का बखान किया तो किसी ने श्रीकृष्ण के अपूर्व तेज का उल्लेख किया। तब बलदेव ने कहा—प्रस्तुत सभा में अरिष्टनेमि के समान कोई भी बली नहीं है। श्रीकृष्ण ने यह सुनकर अरिष्टनेमि की ओर देखा तथा मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कहा—आपके शरीर में ऐसा अपूर्व बल है तो आज बाहु युद्ध कर उसकी परीक्षा क्यों न कर लें।[५०]

---

४८. (क) त्रिषष्टि० ८।९।३४-३६
(ख) उत्तराध्ययन सुखबोधा

४९. अथ स नेमिकुमारयुवान्यदा धनदसंभृतवस्त्रविभूषणैः ।
स्रगनुलेपनकैरतिराजितो नृपसुतैः प्रथितैः परिवारितः ॥
समविशत्सभदेभगतिर्नृपैरभिगतः प्रणतश्चलितासनैः ।
कुसुमचित्रसमां बलकेशवप्रभृतियादवकोटिभिराचिताम् ॥
हरिकृताभिगतिर्हरिविष्टरं स तदलङ्कुरुते हरिणा सह ।
श्रियमुवाह परां तदलं तदा धृतहरिद्वयहारि यथासमम् ॥
—हरिवंशपुराण, ५५।१-२-३, पृ० ६१६

५०. इति निशम्य वचोऽथ निशाम्य तं स्मितमुखो हरिरीशमुवाच सः ।
किमिति युष्मदुदारवपुर्बलं भुजरणे भगवान् न परीक्ष्यते ॥६॥

अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण से कहा—मुझे मल्लयुद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, यदि आपको मेरी भुजा का बल जानना ही है तो इस आसन से मेरे पैर को विचलित कर दीजिए।[५१]

यह सुनते ही श्रीकृष्ण अपने आसन से उठे। अरिष्टनेमि को जीतने की इच्छा मन में उद्‌बुद्ध हुई। श्रीकृष्ण ने अपने शरीर का सम्पूर्ण सामर्थ्य लगाया, पर अरिष्टनेमि का पैर तो क्या, उंगली भी न हिला सके।[५२] श्रीकृष्ण का शरीर पसीने में तरबतर हो गया। उनका अभिमान बर्फ को तरह गल गया। उनके अन्तर्मानस में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अरिष्टनेमि बली ही नहीं, महाबली हैं।[५३] इस घटना के पश्चात् वे उनका सदा सत्कार करने लगे।[५४]

उपरोक्त प्रसंग उत्तरपुराण आदि ग्रन्थों में नहीं आया है। किन्तु निम्नलिखित प्रसंग हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण दोनों में मिलता है—

एकबार बसन्त ऋतु के सुनहरे अवसर पर श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों के साथ, अरिष्टनेमि को लेकर क्रीडा करने हेतु गिरनार पर्वत पर पहुँचे।[५५] श्री कृष्ण चाहते थे कि अरिष्टनेमि किसी प्रकार संसार के आसक्त हों। एतदर्थ उन्होंने अपनी पत्नियों को आदेश दिया कि वे अरिष्टनेमि के साथ स्वच्छन्द होकर क्रीड़ा करें।[५६] श्री कृष्ण के आदेश से वे विविध हाव-भाव कटाक्ष करती

---

५१. सह ममाभिनयोर्ध्वमुखोजिनः किमिहमल्लयुधेति तमब्रवीत्।
भुजबलं भवतोऽग्रजबुध्यते चलय मे चरणं सहसासनम् ॥१०॥

५२. हरिवंशपुराण ५५।११

५३. श्रमजवारिलवाञ्चितविग्रहः प्रबलनिश्वसितोच्छ्वसितासनः।
बलमहो तव देव ! जनातिगं स्फुटमिति स्मयमुक्तमुवाच सः ॥१२॥

५४. उपचरन्ननुवासरमादरात् प्रियशतैर्जिनचन्द्रमसं हरिः।
प्रणयदर्शनपूर्वकमर्च्चयन् स्वयमनर्घगुणं जिनमुन्नतम् ॥१३॥
—हरिवंशपुराण ५५।६ से १३ पृ० ६१६-६१८

५५. निजवधूजनलालितनेमिना हरिरमा नृपपौरपयोधिना।
कुसुमितोपवनं स मधौ ययौ विदितरैवतकं रमणेच्छया ॥
—हरिवंशपुराण ५५।२६। पृ० ६१६

हुई, आनन्द क्रीडा करने लगी।[५७] स्नानादि के पश्चात् गीले वस्त्र को निचोड़ने के लिए श्री कृष्ण की कृपापात्री जाम्बवती[५८] (उत्तर पुराण में सत्यभामा) की ओर देखा।[५९] जाम्बवती अत्यन्त चतुर थी। उसने कटाक्ष करते हुए कहा—अरिष्टनेमि! तुम जानते हो, मैं उस श्री कृष्ण की पत्नी हूं, जिसका पराक्रम विश्व-विश्रुत है। उन्होंने भी मुझे ऐसा आदेश कभी नहीं दिया जैसा आप दे रहे हैं। क्या आपमें उतना पराक्रम है? यह सुनते ही अरिष्टनेमि मुस्कराने लगे और श्रीकृष्ण के पराक्रम को मानो चुनौती देने के लिए वे श्रीकृष्ण की आयुधशाला में गये। उन्होंने शार्ङ्ग धनुष्य को दूना कर प्रत्यंचा से युक्त कर दिया। उनके पाञ्चजन्य शंख को जोर से फूंक दिया।[६०] शंख का वह भयंकर शब्द चारों दिशाओं में व्याप्त हो गया। ऐसा मालूम होने लगा कि शंख के शब्द से पृथ्वी फटने जा रही है।[६१] हाथी और घोड़े सभी अपने स्थानों को छोड़कर भय से भागने लगे। महलों के उच्च शिखर और किनारे दनादन टूटने लग गये। श्रीकृष्ण ने जब यह शब्द सुना तो शत्रु के भय से तलवार खींचकर खड़े हो गये। सारी राजसभा स्तब्ध रह गई।[६२]

जब श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि यह शब्द तो हमारे ही शंख का है तो वे सीधे आयुधशाला में आये। वहां अरिष्टनेमि को देखा।[६३]

---

५६. वहीं० ५५।४४। पृ० ६२१

५७. सपदिमुक्तजलाम्बरपीलने स्फुटकटाक्षगुणेन विलासिना।
मधुरिपुस्थिरगौरवभूमिकामतुलजाम्बवतीं समनोदयत्॥
—वहीं० ५५।५८। पृ० ६२३

५८. पुनः स्नानविनोदावसाने तामेवमब्रवीत्।
स्नानवस्त्रं त्वया ग्राह्यं नीलोत्पलविलोचने॥
—उत्तरपुराण ७१।१३४। पृ० ३८४

५९. (क) हरिवंशपुराण ५५।५६ से ६२, पृ० ६२३
(ख) उत्तरपुराण ७१।१३५-१३६, पृ० ३८४

६०. (क) हरिवंशपुराण ५५।६५, पृ० ६२३
(ख) उत्तरपुराण ७१।१३७ से १३९

६१. हरिवंशपुराण ५५।६६

६२. हरिवंशपुराण ५५।६७-६८

उनके कोप का कारण जाम्बवती के द्वारा किया गया अपमान ही है, यह जानकर श्रीकृष्ण को सन्तोष हुआ। उन्होंने प्रेमपूर्वक अरिष्टनेमि का सन्मान किया और वहां से विदा किया।[६४]

राजुल की मंगनी :

अरिष्टनेमि राजकुमार थे। सुख, वैभव, और भोग विलास की सामग्री उनके चारों ओर बिखरी पड़ी थी। एक ओर माता पिता का ममतामय वात्सल्य उन पर स्नेह की सरस वृष्टि कर रहा था। दूसरी ओर तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण का अपार प्रेम भी उन्हें प्राप्त था। अन्तःपुर आदि किसी भी स्थल में वे बिना रोक-टोक प्रवेश कर सकते थे,[६५] किन्तु उनका मन उन रमणीय राजमहलों में नहीं लग रहा था। उनके जीवन का लक्ष्य अन्य था। वे सांसारिक माया के नाग पाशों को तोड़कर मुक्त होना चाहते थे।

महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवा देवी अपने प्यारे पुत्र की चिन्तनशील मुद्रा देखकर सोचने लगते कि कहीं यह अन्य दिशा में न वह जाय। वे उन्हें परिणय-बंधन में बांधना चाहते थे। श्रीकृष्ण की भी यही अन्तरेच्छा थी। उन्होंने अरिष्टनेमि को विवाह के लिए प्रेमपूर्वक आग्रह किया, किन्तु वे सहमत नहीं हुए। श्रीकृष्ण के मन में एक विचार यह भी था कि इनका विवाह होने पर इनका जो अतुल पराक्रम है वह मन्द हो जायेगा, फिर मुझे इनसे भय व शंका नहीं रहेगी। इसके लिए सत्यभामा आदि को श्रीकृष्ण ने संकेत किया। श्रीकृष्ण के संकेतानुसार सत्यभामा आदि रानियों ने वसन्त ऋतु में रेवताचल पर वसन्त-क्रीड़ा करते हुए हाव-भाव-कटाक्षादि के द्वारा अरिष्टनेमि कुमार के अन्तर्हृदय में वासना जागृत करने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सकीं। अरिष्टनेमि मन ही मन विचार रहे थे कि मोहाविष्ट प्राणी आत्म उपासना को छोड़कर वासना

---

६३. हरिरवेत्य निजाम्बुजनिस्वनं त्वरितमेत्य कुमारमवज्ञया ॥
स्फुरदहीशमहाशयने स्थितं परिनिरीक्ष्य नृपैः सुविसिस्मिते ॥
—हरिवंशपुराण ५५।६१

६४. हरिवंशपुराण ५५।७१

६५. त्रिषष्टि० पर्व ८। सर्ग ९ श्लोक ३७

को ही श्रेष्ठ समझने की भयंकर भूल करता है। उस समय रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, पद्मावती, गांधारी, लक्ष्मणा प्रभृति श्रीकृष्ण की पटरानियों ने स्त्री के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा—स्त्री के विना मानव जीवन अपूर्ण है, स्त्री अमृत है, नारी ही नारायणी है आदि। अपनी भाभियों के मोह से भरे हुए वचनों को सुनकर अरिष्टनेमि मौन रहे और उनकी अज्ञता पर मन ही मन मुस्कराने लगे। कुमार को मौन देखकर 'अनिषिद्धम् अनुमतम्' के अनुसार सभी रानियां आनन्द से नाच उठीं और सर्वत्र यह समाचार प्रसारित कर दिया कि अरिष्टनेमि विवाह के लिए प्रस्तुत हैं।[६६] पर अरिष्टनेमि अपने लक्ष्य पर ही स्थिर रहे। एकबार श्रीकृष्ण ने कहा—कुमार! ऋषभ आदि अनेक तीर्थंकर भी गृहस्थाश्रम के भोगों को भोग कर, परिणत वय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह परमार्थ है।' अरिष्टनेमि ने नियति की प्रबलता जानकर श्रीकृष्ण की बात स्वीकार कर ली। श्रीकृष्ण ने समुद्रविजय को सारी बात कही। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण ने भोजकुल के राजन्य उग्रसेन से राजीमती की याचना की। राजीमती सर्व लक्षणों से संपन्न, विद्युत् और सौदामिनी के समान दीप्तिमती राजकन्या थी।[६७] राजीमती के पिता उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से कहा—कुमार यहाँ आएँ तो मैं उन्हें अपनी राजकन्या दूँ।"[६८] श्रीकृष्ण ने स्वीकृति प्रदान की।

दोनों ओर वर्द्धापन हुआ। विवाह के पूर्व के समस्त कार्य सम्पन्न हुए। विवाह का दिन आया। बाजे बजने लगे। मंगलदीप जलाए गए। खुशी के गीत गाये जाने लगे। राजीमती अलंकृत हुई। अरिष्टनेमि को सर्व औषधियों के जल से स्नान कराया गया। कौतुक मंगल किये गये, दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये गए।[६९] वासुदेव श्रीकृष्ण के मदोन्मत्त गंधहस्ती पर वे आरूढ़ हुए। उस समय वे इस

---

६६. त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ९,

६७. अह सा रायवरकन्ना सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसंपुन्ना, विज्जुसोयामणिप्पभा ॥ ७ ॥

६८. अहाह जणओ तीसे वासुदेवं महिड्ढियं।
इहागच्छऊ कुमारो जा से कन्नं दलामहं ॥ ८ ॥

प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानो मस्तक पर चूड़ामणि हो।[७०] सिर पर छत्र सुशोभित हो रहा था। दोनों ओर चमर वींजे जा रहे थे। दशार्ह चक्र से वे चारों ओर से घिरे हुए थे।[७१] वाद्यों से नभ मंडल गूंज रहा था। चतुरंगिनी सेना के साथ उनकी बरात आगे बढ़ी जा रही थी। वह विवाह मण्डप के पास आयी। राजीमती ने दूर से अपने भावी पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई।[७२]

तोरण से लौट गये :

उस युग में भी क्षत्रियों में मांसाहार का प्रचार था। राजा उग्रसेन ने बरातियों के भोजन के लिए सैकड़ों पशु और पक्षी एकत्रित किये।[७३] वर के रूप में जब अरिष्टनेमि वहाँ पहुँचे तो उन्हें बाड़े में बन्द किए हुए पशुओं का करुण क्रन्दन सुनाई दिया।[७४] उनका हृदय दया से द्रवित हो गया।

भगवान् ने सारथी से पूछा हे महाभाग! ये सब सुखार्थी जीव बाड़ों और पिंजरों में क्यों डाले गये हैं?[७५] सारथी ने कहा—'ये समस्त मूक प्राणी आपके विवाह-कार्य में आये हुए व्यक्तियों के भोजन के लिए हैं।[७६]

---

६९. सव्वोसहीहि ण्हविओ, कयकोउयमंगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ॥ ९ ॥

७०. मत्तं च गन्धहत्थि, वासुदेवस्स जेट्ठगं।
आरूढो सोहए अहियं सिरे चूडामणी जहा। १०।

७१. (क) अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए।
दसारचक्केण य सो सव्वओ परिवारिओ। ११।
—उत्तराध्ययन २२।

(ख) त्रिषष्टि० २ ८।९। पृ० १८६-१८७

७२. त्रिषष्टि० ८।९। पृ० १८७

७३. उत्तराध्ययन सुखबोधा टीका पत्र २७९

७४. अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥
—उत्तराध्ययन २२।१४

७५. कस्स अट्ठा इमे पाणा एए सव्वे सुहेसिणो।
वाडेहिं पंजरेहिं च सन्निरुद्धा य अच्छहिं। १६।

करुणामूर्ति अरिष्टनेमि ने सोचा—मेरे कारण से इन बहुत से जीवों का मारा जाना मेरे लिए कल्याणप्रद नहीं होगा।[७७] यह विचारकर उन्होंने अपने कुंडल, कटिसूत्र, आदि सभी आभूषण उतार कर सारथी को दे दिये,[७८] और हाथी को मोड़ने के लिए कहा—सारथी! वापस चलो! मुझे इस प्रकार का हिंसाकारी विवाह नहीं करना है। श्रीकृष्ण आदि बहुतों के समझाने पर भी वे नहीं माने और बिना व्याहे ही लौट चले।[७९]

राजीमती के चेहरे पर जो गुलाबी खुशियां छायी हुई थीं, प्रभु के लौट जाने पर गायब हो गईं। वह अपने भाग्य को कोसने लगी। उसे बहुत ही दुःख हुआ। अरिष्टनेमि उसके हृदय में बसे हुए थे। माता, पिता, और सखियों ने समझाया 'अरिष्टनेमि चले गए तो क्या हुआ! बहुत से अच्छे वर प्राप्त हो जायेंगे। उसने दृढ़ता के साथ कहा—विवाह का बाह्य रीतिरस्म (वरण) भले ही न हुआ हो, किन्तु अन्तरंग हृदय से मैंने उन्हें वर लिया है, अब मैं आजन्म उन्हीं स्वामी की उपासना करूंगी[८०]

दिगम्बर ग्रन्थों में :

उत्तरपुराण और हरिवंशपुराण में इससे भिन्न वर्णन है। उनके अनुसार श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि को विरक्त करने के लिए वाड़ों में हिरनों को एकत्रित करवाया था।[८१] श्रीकृष्ण ने सोचा—

---

७६. अह सारही तओ भणइ एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झं विवाहकज्जंमि भोयावेउं बहु जणं। १७।
—उत्तराध्ययन २२।

७७. जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई। १९।

७८. सो कुंडलाणजुयलं सुत्तंग च महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि सारहिस्स पणामए॥ २०।
—उत्तराध्ययन २२।

७९. त्रिषष्टि० ८।९

८०. त्रिषष्टि० ८।९, पृ० १९०-१९१

८१. उत्तरपुराण ७१।१५२

नेमिकुमार वैराग्य का कुछ कारण पाकर भोगों से विरक्त हो जायेंगे। ऐसा सोचकर वे वैराग्य का कारण जुटाने का प्रयास करने लगे। उनकी समझ में एक उपाय आया। उन्होंने शिकारियों द्वारा अनेक मृगों को पकड़वाया और उन्हें एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया। चारों ओर वाड़ा बनवा दिया। वहाँ रक्षक नियुक्त कर दिये। उन रक्षकों से कह दिया कि अरिष्टनेमि कुमार दिशाओं का अवलोकन करने के लिए आएं और इन मृगों के समूह के सम्बन्ध में पूछें तो उनसे स्पष्ट कह देना कि आपके विवाह में मारने के लिए चक्री ने यह मृगों का समूह एकत्र किया है।[८२]

एक दिन अरिष्टनेमि चित्रा नाम की पालकी में बैठकर दिशाओं का अवलोकन करने के लिए निकले। उन्होंने घोर करुण-स्वर में आक्रोश करते और इधर उधर भगाते हुए, प्यासे, दीन दृष्टि से युक्त, तथा भय से व्याकुल मृगों को देखा। दयावश वहाँ के रक्षकों से पूछा—पशुओं का यह इतना बड़ा समूह एक स्थान पर क्यों, किसलिए रोका गया है?[८३]

रक्षकों ने उत्तर में कहा—देव। आपके विवाहोत्सव में जो

---

८२. निर्वेदकारणं किञ्चिन्निरीक्ष्यैष विरंस्यति।
भोगेभ्य इति सञ्चित्य तदुपायविधित्सया॥
व्याधाधिपैर्धृतानीतं नानामृगकदम्बकम्।
विधायैकत्र सङ्कीर्णां वृतिं तत्परितो व्यधात्॥
अशिक्षयच्च तद्रक्षाध्यक्षान्यदि समीक्षितुम्।
दिशो नेमीश्वरोऽभ्येति भवद्भिः सोऽभिधीयताम्॥
त्वद्विवाहे व्ययीकर्तुं चक्रिणैष मृगोत्करः।
समानीत इति व्यक्तं महापापोपलेपकः॥

—उत्तरपुराण ७१।१५४-१५७, पृ० ३८५

८३. (क) किमर्थमिदमेकत्र निरुद्धं तृणभुक्कुलम्।
इत्यन्वयुङ्क्त तद्रक्षानियुक्ताननुकम्पया॥

—उत्तरपुराण ७१।१६० से १६१

(ख) लघु निरुध्य रथं सहि सारथिं निजनिनादजिताम्बुदनिस्वनः।
अपि विदन्नवदन्मृगजातयः किमिह रोधमिमाः प्रतिलम्भिताः॥

—हरिवंशपुराण ५५।८६, पृ० ६२३

लौटकर उन्होंने कर दिखाया। मांसाहार मानवीय प्रकृति नहीं, अपितु दानवीय व्यवहार है। हृदय की क्रूरता का प्रतीक है। भयंकर पाप है। जब आप किसी मरते जीव को जीवन नहीं दे सकते तो उसे मारने का आपको क्या अधिकार है? पैर में लगा जरा-सा कांटा जब हमें बेचैन कर देता है तो जिनके गले पर छुरियां चलती हैं उन्हें कितना कष्ट होता होगा! एतदर्थ किसी जीव की हिंसा न करना ही श्रेयस्कर है।

विचारशील व्यक्तियों को भूल महसूस हुई कि वस्तुतः हम सही मार्ग पर नहीं है, हमें अपनी स्वादलोलुपता के लिए दूसरे प्राणियों के साथ खिलवाड नहीं करनी चाहिए।

श्रीकृष्ण आदि ने अरिष्टनेमि को समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वे सफल न हो सके। यदुवंशी और भोगवंशी कोई भी उन्हें अपने लक्ष्य से च्युत न कर सके।[८७]

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि विवाह से लौटकर वे सीधे ही शिविका में बैठकर प्रव्रज्या के लिए प्रस्थित नहीं होते हैं, अपितु एकवर्ष तक गृहवास में रहकर वर्षीदान देते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में अत्यन्त संक्षिप्तशैली अपनाने के कारण सारथी को आभूषण देने के पश्चात् तुरन्त ही अगली गाथा में दीक्षा का वर्णन कर दिया गया है किन्तु वस्तुतः भावार्थ वैसा नहीं है, क्योंकि उत्तराध्ययन की सुखबोधा वृत्ति में, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, और भव-भावना आदि ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि बाद में उन्होंने वर्षीदान दिया। दूल्हा बनने के पूर्व उन्होंने वर्षीदान नहीं दिया था।[८८] किन्तु आश्चर्य

---

८७. हरिवंशपुराण ५५।१०७, पृ० २२६

८८. (क) एत्थंतरे दसारचक्केण विरइयकरंजलिणा भणितो-नेमीकुमार! तए संपइं चेव परिचत्तस्स जायववग्गस्स अत्थमइ व्व जियलोओ, ता पडिच्छाहि ताव कंचि कालं। ततो उवरोह सीलयाए संवच्छरियमहादाणनिमित्तं च पडिवन्नं संवच्छरमेत्तमवत्थाणं। भयवया तप्पभिति च आढत्तं किमिच्छियं महादाणं।………पडिपुण्णे य संवच्छरे आपुच्छिऊण अम्मापियरो………

—उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पृ० २८०

है कि आचार्य शीलाङ्क ने चउप्पन्नमहापुरिसचरियं में तोरण से लौटने के पूर्व ही वर्षीदान का उल्लेख किया है जो अन्य आचार्यों के वर्णन से मेल नहीं खाता है।[८९] तर्क संगत भी कम है। हमारी अपनी दृष्टि से भी वर्षीदान विवाह से लौटने के बाद ही दिया होगा।

उधर राजीमती की सखियों ने राजीमती के आंसू पोंछते हुए कहा—'राजुल ! वस्तुतः तुम बहुत भोली हो, जो तुम्हें चाहता नहीं उसके लिए तुम आंसू बहा रही हो। जिसके पास नारी के कोमल हृदय को परखने का दिल नहीं, उसकी दारुण वेदना को समझने का हृदय नहीं, तुम उसके लिए अपना दिल लुटा रही हो। अरिष्ट नेमी कायर थे, वे गृहस्थाश्रम की जिम्मेदारियां निभाने से कतराते थे, इस कारण जीवदया का बहाना बनाकर विना विवाह किये ही भाग गये।'

"हट जा यहाँ से, मुंह से थूंक दे। अरिष्टनेमि जैसे दयालु और वीर पुरुष को तूं कायर कह रही है ! वह कैसे करुणावतार थे, जिन्हें मूक पशुओं की करुण पुकार सुनकर अपने जीवन का समस्त सुख निछावर कर दिया ! उनकी महान् करुणा को तू वहाना कह रही है, तुझे लज्जा नहीं आती ?' अरिष्टनेमि की स्मृति में खोई राजमती ने सखी को डांट कर दूर कर दिया।

'जिसने मूक पशुओं की पुकार सुनी, किन्तु एक अवला नारी की पुकार नहीं सुनी, क्या वह करुणाशील कहा जा सकता है ? उसने

(ख) ददौ च वार्षिकं दानं, निर्निदानं जगद्गुरुः।
दीक्षाभिषेकं चक्रुश्च शक्राद्या नाकिनायकाः ॥
—त्रिषष्टि० ८।९।२३८

(ग) एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
वियरिज्जइ कणयं पइदिणंपि लोयाण य जहिच्छं ॥
तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीइं च होंति कोडीओ।
असियं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिन्नं ॥
तत्तो दिक्खासमयं आसणकंपेण सयलदेविन्दा।
नाउं नेमिजिणिदस्स आगया सयलरिद्धीए ॥
—भत्र-भावना, ३५४०-४१-४२, पृ० २४२

८९. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, पृ०

नारी के साथ न्याय नहीं किया। तू उसकी चिन्ता छोड़ दे। हम तेरे लिए उससे भी अधिक सुन्दर, सुकुमार तेजस्वी राजकुमार की अन्वेषणा करें।" सखी फिर कहने लगी।

राजीमती ने फिर से डांटते हुए कहा—'चुप भी रहो, मुंह से ऐसी बातें न निकालो। अरिष्टनेमि मेरे प्रियतम हैं, मेरे जीवन-साथी हैं। मैं हृदय से उनका वरण कर चुकी हूँ।'

'अरी राजुल ! इस प्रकार बचपन नहीं किया करते। तू पगली है। जब वे तेरे नहीं हुए तो तू उनकी कैसी हो गई ? पराये के लिए इस प्रकार आंसू नहीं बहाया करते। उठ, हाथ मुंह धो, कपड़ा बदल, माता जी तुम्हारी कब से राह देख रही हैं।"

'पागल मैं नहीं, तुम हो। मैं क्षत्रिय बाला हूँ ! वह एक ही बार जीवन-साथी को चुनती है। मैंने अरिष्टनेमि को अपना बना लिया है, अब उनकी जो राह है वही राह मेरी भी होगी।"

प्रेममूर्ति राजीमती अरिष्टनेमि की अपलक प्रतीक्षा करती रही। सोचती रहती—भगवान् एक दिन मेरी अवश्य सुध लेंगे। परन्तु उसकी भावना पूर्ण न हो सकी। बारह महीने तक उसके अन्तर्मानस में विविध संकल्प-विकल्प उद्‌बुद्ध होते रहे, जिन्हें अनेक जैन कवियों ने बारहमासा के रूप में चित्रित किया है। उनमें राजीमती के माध्यम से वियोग शृंगार का हृदयग्राही सुन्दर निरूपण हुआ है। वह अनूठा और अपूर्व है। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "जो न होते नेम राजीमती, तो क्या करते जैन के यति।"

वैदिक साहित्य में जैसा स्थान राधा और श्रीकृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य में राजीमती और अरिष्टनेमि का है। हां, राजीमती के समक्ष किसी भी प्रकार की भौतिकवासना को स्थान नहीं है। वह देह की नहीं, देही की उपासना करना चाहती है। यही कारण है कि जब अरिष्टनेमि साधना के मार्ग पर बढ़ते हैं तब वह भी उसी मार्ग को ग्रहण करती है और कठोर साधना कर अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त होती है। यदि वासना युक्त प्रेम होता तो वह साधना को न अपना सकती।

●●

साधक जीवन

महाभिनिष्क्रमण :

आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार चौबीस तीर्थंकरों में से भगवान् महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, मल्ली भगवती और वासुपूज्य ने प्रथमवय में प्रव्रज्या ग्रहण की तथा शेष तीर्थंकरों ने पश्चिमवय में। इन पाँचों तीर्थंकरों ने राज्य नहीं किया था, शेष तीर्थंकरों ने राज्य किया था।[1]

भगवान् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर श्रावण शुक्ला छट्ठ के दिन पूर्वाह्ण के समय उत्तराकुरु शिविका में बैठकर द्वारिका नगरी के मध्य में होकर रैवत नामक[2] उद्यान में

---

१. वीरो अरिट्ठनेमी, पासो मल्ली अ वासुपुज्जो अ।
पढमवए पव्वइआ, सेसा पण पच्छिमवयंमि ॥२२६।
वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मुत्तूण जिणे, अवसेसा आसि रायाणो ॥२२१।
—आवश्यक निर्युक्ति

२. (क) समवायाङ्ग सू० १५७-१७
(ख) कल्पसूत्र १६४ पृ० २३१

पहुँचते हैं, अशोकवृक्ष के नीचे अपने हाथ से आभूषण आदि उतारते हैं और पंचमुष्टि लोच करते हैं,[3] निर्जल षष्ठ भक्त के साथ चित्रा नक्षत्र के योग में एक देवदूष्य वस्त्र[4] को लेकर हजार पुरुषों के साथ मुण्डित होते हैं,[5] गृहवास को त्याग कर अनगारत्व स्वीकार करते हैं। ज्योंही अरिष्टनेमि प्रभु अनगारत्व स्वीकार करते हैं त्योंही उन्हें मन:पर्यव ज्ञान उत्पन्न होता है।[6]

श्रीकृष्ण वासुदेव ने लुप्त-केश और जितेन्द्रिय भगवान् से कहा—"दमीश्वर! तुम अपने इच्छित-मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो।

तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षान्ति और मुक्ति की ओर बढ़ो।"[7]

प्रव्रज्या के पश्चात् बलराम श्रीकृष्ण दशार्ह तथा अन्य बहुत से व्यक्ति अरिष्टनेमि को वन्दन कर द्वारिकापुरी में लौटे।

नोट—यहां यह स्मरण रखना चाहिए द्वारिका अरिष्टनेमि की जन्मभूमि नहीं थी, ऋषभ और अरिष्टनेमि के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थंकरों ने अपनी जन्मभूमि से ही अभिनिष्क्रमण किया था।

उसभो अ विणीआए, बारवईए अरिट्ठवंनेमी।
अवसेसा तित्थयरा, निक्खंता जम्मभूमीसु॥

—आवश्यकनिर्युक्ति २२९

३. (क) अह से सुगंधगंधिए, तुरियं मउयकुंचिए।
सयमेव लुंचई केसे पंचमुट्ठीहिं समाहिओ॥

—उत्तराध्ययन २२।२४

(ख) कल्पसूत्र १६४, पृ० २३१

४. (क) समवायाङ्ग सूत्र १५७।२३

(ख) कल्पसूत्र सू० १८४, पृ० २३१

(ग) सव्वेऽवि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउव्वीसं।

— आवश्यक निर्युक्ति २२७

५. (क) साहस्सीए परिवुडो। —उत्तराध्ययन २२।२३

(ख) आवश्यक निर्युक्ति गा० २२५

६. (क) हरिवंशपुराण ५५।१२५, पृ० ६३२

(ख) मनः पर्ययसंज्ञं च जज्ञे ज्ञानं जगद्गुरोः।

—त्रिषष्टि० ८।९।२५३

७. उत्तराध्ययन २१ गा० २५-२६-२७

भगवान् वहाँ से दूसरे दिन 'गोष्ठ' में पधारे।[8] वरदत्त ब्राह्मण[9] ने उनको भक्ति-भाव से विभोर होकर परमान्न की भिक्षा दी।[10] उसी से उन्होंने पारणा किया।

उत्तरपुराण में लिखा है—पारणा के दिन उन सज्जनोत्तम भगवान् ने द्वारावती नगरी में प्रवेश किया। वहां सुवर्ण के समान कान्तिवाले तथा श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न राजा वरदत्त ने भक्ति पूर्वक आहारदान दिया।[11] आचार्यजिनसेन के हरिवंशपुराण के अनुसार भगवान् द्वारिकापुरो पधारे और प्रवरदत्त ने उनको खीर का आहार दान दिया।[12]

आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति में भगवान् अरिष्टनेमि के पारणे का स्थान द्वारिका लिखा है।[13]

वहाँ से प्रभु ने घनघाती कर्मों को नष्ट करने के लिए सौराष्ट्र के विविध अंचलों में परिभ्रमण प्रारंभ किया।[14] भगवान् छद्मस्थ अवस्था में किन-किन क्षेत्रों में पधारे इसका वर्णन प्राप्त नहीं है तथापि यह स्पष्ट है कि वे सौराष्ट्र में ही घूमे होंगे क्योंकि उनका छद्मस्थ काल सिर्फ पचपन दिन का ही है। मलधारी आचार्य हेमचन्द्र ने आर्य और अनार्यदेशों में परिभ्रमण का उल्लेख किया है।

---

८. अथ गोष्ठे द्वितीयेऽह्नि वरदत्ताद्विजौकसि। —त्रिषष्टि० ८।९।२५८

९. समवायाङ्ग सूत्र १५६।२८

१०. समवायाङ्ग १५७।३१

११. उत्तरपुराण ७१।१७५-१७६, पृ० ३८६

१२. हरिवंशपुराण ५५।१२९ पृ० ६३३

१३. (क) वीरपुरं बारवई, कोवकडं कोल्लयग्गामो।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३२५

(ख) अरिष्ठनेमेर्द्वारवती।
—आवश्यक मलय० वृत्ति पृ० २२७

१४. ततो य घाइकम्मं वणं व तवहुयवहेण डहमाणो।
भयवं विहरइ आरियअणारिएसु च देसेसु॥
—भव-भावना ३५८५ पृ० २३४

रथनेमि का आकर्षण :

अरिष्टनेमि का सहोदर रथनेमि राजीमती के पास आने-जाने लगा। वह राजीमती के रूप पर मुग्ध था। राजीमती को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए नित्य नवीन उपहार भेजता। सरल हृदया राजीमती उसकी वह कुटिल चाल न समझ सकी। वह अरिष्टनेमि का ही उपहार समझकर प्रेमपूर्वक ग्रहण करती रही।

एकदिन एकान्त में राजीमती को देखकर रथनेमि ने अपने हृदय की इच्छा अभिव्यक्त की। राजीमती ने जब वह बात सुनी तो सारा रहस्य समझ गई। दूसरे दिन जब रथनेमि आया तब उसे समझाने के लिए उसने सुगंधित पय-पान किया। और उसके पश्चात् वमन की दवा (मदनफल) ली। जब दवा के प्रभाव से वमन हुआ तो उसे एक स्वर्ण पात्र में ग्रहण कर लिया और रथनेमि से कहा—"लीजिए, इसका पान करिए।"

रथनेमि ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा—"क्या मैं श्वान हूँ? वमन का पान तो श्वान करता है, इन्सान नहीं।"

राजीमती ने कहा—बहुत अच्छा। तो मैं भी अरिष्टनेमि के द्वारा वमन की हुई हूँ, फिर मुझ पर मुग्ध होकर मेरी इच्छा क्यों कर रहे हो? तुम्हारा विवेक क्यों नष्ट हो गया है? क्या यह भी वमनपान नहीं है? धिक्कार है तुम्हें, जो वमी हुई वस्तु को पीने की इच्छा करते हो, इससे तो तुम्हारा मरना श्रेयस्कर है।

राजीमती की फटकार से रथनेमि लज्जित होकर नीचा शिर किये अपने घर को चला गया।[१५]

राजीमती दीक्षाभिमुख हो अनेक प्रकार के तप और उपधानों को करने लगी।[१६]

---

१५. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व, ८ सर्ग, ६ पृ० १९२-१९३
(ख) उत्तराध्ययन टीका

१६. (क) उत्तराध्ययन टीका २२ (ख) कल्पसूत्र टीका

तीर्थंकर जीवन

●

- केवलज्ञान ◆
- तीर्थ की संस्थापना ◆
- जैन परम्परा में गणधर ◆
- गणधर कितने ◆
- एक चिन्तनीय प्रश्न ◆
- राजीमती की दीक्षा ◆
- रथनेमि को प्रतिबोध ◆
- देवकी की शंका और भगवान का समाधान ◆
- गजसुकुमार की दीक्षा ◆

अन्य दीक्षाएं ◆
द्वारिका का विनाश कैसे ◆
पद्मावती की दीक्षा ◆
थावच्चापुत्र ◆
थावच्चा पुत्र की दीक्षा ◆
वर्षाऋतु में विहार क्यों नहीं ◆
स्वामिनी बनोगी या दासी ◆
केतुमंजरी को प्रतिबोध ◆
कृष्ण का वन्दन ◆
शाम्ब और पालक ◆
ढंढण मुनि ◆
निषधकुमार ◆
बलदेव को प्रतिबोध ◆
दिगम्बर ग्रन्थों में ◆
श्वेताम्बर परम्परा में ◆
दिगम्बर परम्परा में ◆
महाभारत में ◆
भगवान् का विहार ◆
परिनिर्वाण ◆
शिष्य परिवार ◆

●●

तीर्थंकर जीवन

●

केवलज्ञान :

श्वेताम्बर आगम व आगमेतर साहित्य के अनुसार दीक्षा लेने के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि चौपन रात्रि-दिवस तक छद्मस्थ पर्याय में रहे। इस बीच वे निरन्तर व्युत्सर्गकाय, और त्यक्तदेह हो ध्यानावस्थित रहे। वर्षा ऋतु का तृतीय मास आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन[1] ऊर्जमन्त (रैवत) नामक शैल-शिखर पर चित्रा नक्षत्र के योग में उन्हें अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात निरावरण प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हुआ।[2]

केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् अरिष्टनेमि अर्हत् जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए और वे सम्पूर्ण देव-मानव असुर सहित सारे लोक की द्रव्य सहित समस्त पर्यायों को जानने-देखने लगे।

समवायाङ्ग[3], आवश्यकनिर्युक्ति[4] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित[5] भव भावना[6] आदि में भगवान् को केवलज्ञान की प्राप्ति का समय

---

१. आसोयऽमावसाए नेमिजिणिदस्स चित्ताहिं।

—आवश्यक निर्युक्ति २७३

२. कल्पसूत्र १६५, पृ० २३३

सूर्योदय की वेला बतलाई गई है जब कि कल्पसूत्र में आचार्य भद्रबाहु ने अमावस्या के दिन का पश्चिम भाग लिखा है।[७] चउप्पन्न-महापुरिसचरियं,[८] उत्तराध्ययन सुखबोधा[९] में समय का निर्देश नहीं है।

आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में[१०] और आचार्य गुणभद्र ने उत्तरपुराण में[११] भगवान् अरिष्टनेमि का छद्मस्थ काल छप्पन दिन का माना है और भगवान् को केवलज्ञान आश्विन शुक्ला

---

३. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहेवासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरनाण दंसणे समुप्पण्णे।

—समवायांग २३।२, पृ० ४७ कमलमुनि

४. तेवीसाए नाणं उप्पन्नं जिणवराणपुव्वण्हे।
वीरस्स पच्छिमण्हे पमाणपत्ताए चरमाए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २७५, पृ० २०७

५. आश्विनस्यामावस्यायां पूर्वाह्णे त्वाष्ट्रगे विधौ।
केवलज्ञानमुत्पेदे स्वामिनोऽरिष्टनेमिनः॥

—त्रिषष्टि० ८।९।२७७, पृ० १३९

६. पत्तस्स घाइकम्मे सयले खीणम्मि अट्ठमतवेण।
आसोयबहुलपक्खे अमावसाए य पुव्वण्हे॥

—भव-भावना ४६२३, पृ० २३७

७. पन्नरसीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे।

—कल्पसूत्र १६५, पृ० २३३

८. देखिए अनुवाद पृ० २५७

९. उप्पन्नं तत्थ सुहज्झवसाणस्स आसोयअमावसाए अट्ठमभत्तंते केवलनाणं।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २८०

१०. षट्पञ्चाशदहोरात्रकालं सुतपसा नयत्॥
पूर्वाह्णेऽश्वयुजस्यातः शुक्लप्रतिपदि प्रभुः।
शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा चतुर्घातिमहावनम्॥
अनन्तकेवलज्ञानदर्शनादिचतुष्टयम्।
त्रैलोक्येन्द्रासनाकम्पि सम्प्रापत्परदुर्लभम्॥

—हरिवंशपुराण ५९, श्लो० १११-११३ पृ० ६४३-४४

प्रतिपदा को हुआ ऐसा लिखा है। हमारी दृष्टि से यह श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा की तिथि संबंधी मान्यताओं का ही भेद है।

अरिष्टनेमि भगवान् ने जिस स्थान पर दीक्षा ग्रहण की थी उसी स्थान पर उन्हें केवलज्ञान हुआ।[१२]

तीर्थ की संस्थापना :

भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, यह सूचना सहस्राम्रवन के रक्षपाल ने वासुदेव श्रीकृष्ण को दी। श्रीकृष्ण ने जब यह शुभ संवाद सुना तो उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने यह शुभ संवाद सुनाने के उपलक्ष में रक्षपाल को बारह कोटि सोनैये दान में दिये।[१३] श्रीकृष्ण उसी समय भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने व उनके उपदेश को सुनने के लिए अपने परिजनों व सोलह सहस्र अन्य राजाओं के साथ हस्ती पर आरूढ़ होकर भगवान् के समवसरण में पहुँचे।[१४]

भगवान् के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए विशिष्ट प्रवचन को सुनकर वरदत्त राजा ने सर्वप्रथम दीक्षा ग्रहण की। उसके पश्चात् दो हजार अन्य क्षत्रियों ने भी संयम स्वीकार किया, यक्षिणी नामक राजकुमारी ने भी अनेक राजकन्याओं के साथ दीक्षा ग्रहण की। श्रमणी यक्षिणी को प्रवर्तनी पद प्रदान किया।[१५] दश दशार्ह,

---

११. षष्ठोपवासयुक्तस्य, महावेणोरधः स्थितेः।
पूर्वेऽह्नयश्वयुजे मासिशुक्लपक्षादिमे दिने ॥
—उत्तरपुराण ७१, श्लोक १७९-८० पृ० ३८७

१२. उसभस्स पुरिमताले, वीरस्सुजुवालिआई नईतीरे।
सेसाण केवलाइं जेसुज्जाणेसु पव्वइया ॥
—आवश्यक निर्युक्ति २५४

१३. रूप्यस्स द्वादश कोटीः सार्धास्तेभ्यः प्रदाय सः।
—त्रिषष्टि० ८।९।२८४, पृ० १३९

१४. त्रिषष्टि० ८।९।२८५, ८६, पृ० १३९

१५. (क) त्रिषष्टि० ८।९।३७७, पृ० १४२
(ख) जाया पवित्तिणी वि य जक्खिणी सयलाण अज्जाणं ॥
—भव-भावना ३७१२

उग्रसेन, वसुदेव, बलराम, और प्रद्युम्न आदि सहस्रों व्यक्तियों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया। शिवा, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी आदि हजारों महिलाएँ श्राविका बनीं।[१६]

उस समय श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! राजीमती का आपके प्रति इतना अत्यधिक स्नेह क्यों है? इस स्नेह का कारण क्या है?[१७]

भगवान् ने समाधान करते हुए पूर्वभवों का सम्बन्ध बताया। पूर्वभवों के सम्बन्ध में हम पूर्व अध्याय में विस्तार से लिख चुके हैं। धनकुमार के भव में धनदत्त और धनदेव दोनों भाई थे, व अपराजित के भव में विमलबोध नामक मंत्री था—ये तीनों अरिष्टनेमि के पूर्वभवों के साथ सम्बन्धित थे। वे तीनों इस भव में राजा थे। राजीमती के पूर्वभवों को सुनकर उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ, और उन तीनों ने भी प्रथम समवसरण में दीक्षा ग्रहण की[१८] और वे गणधर हुए।[१९]

हरिवंशपुराण के अनुसार—उस समय दो हजार राजाओं ने, दो हजार राजकन्याओं ने, एवं दो हजार रानियों ने तथा हजारों अन्य लोगों ने जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए पूर्ण संयम को प्राप्त किया। शिवा देवी, रोहिणी, देवकी, रुक्मिणी तथा अन्य देवियों ने श्रावक धर्म स्वीकृत किया। यदुकुल और भोजकुल के श्रेष्ठ राजा तथा अनेक सुकुमारियाँ जिनमार्ग की ज्ञाता बनकर बारह अणुव्रतों की धारक हो गईं।[२०]

(ग) समवायाङ्ग सूत्र १५७-४४

१६. (क) त्रिषष्टि० ८।६।३७८, ३७६

(ख) भव-भावना, ३७२७, ३७२८, पृ० २४७

१७. राजीमत्या विशेषानुरागे किं नाम कारणम् ?

—त्रिषष्टि० ८।६।३५

१८. (क) त्रिषष्टि० ८।६।३७२-३७४

(ख) भव-भावना पृ० २४७

१९. नियचरियं सोऊणं जाईसरणेण सयमवि मुणे उं।
पडिबुद्धा निक्खंता तेऽवि हु गणहारिणो जाया॥

—भव-भावना ३७२

इस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि ने श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ की संस्थापना की और तीर्थंकर पद प्राप्त किया।

जैन परम्परा में गणधर :

जैन परम्परा में तीर्थंकर शब्द जितना प्राचीन व अर्थपूर्ण है उतना ही प्राचीन अर्थपूर्ण गणधर शब्द भी है। तीर्थंकर जहाँ तीर्थ के निर्माता होते हैं, तथा श्रुत रूप ज्ञान परम्परा के पुरस्कर्ता होते हैं वहाँ गणधर श्रमण, श्रमणी रूप संघ की मर्यादा, व्यवस्था व समाचारी के नियोजक, व्यवस्थापक तथा तीर्थंकरों के अर्थ रूप वाणी को सूत्र रूप में संकलन करने वाले होते हैं।[२१]

मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र ने विशेषावश्यकभाष्य की टीका में लिखा है—उत्तम ज्ञान-दर्शन आदि गुणों को धारण करने वाले गणधर होते हैं।[२२] प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ में गणधर एक अत्यावश्यक उत्तरदायित्व पूर्ण महान प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है।

गणधर कितने :

समवायाङ्ग[२३] आवश्यकनिर्युक्ति,[२४] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[२५] उत्तरपुराण[२६] आदि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर ग्रन्थों में भगवान् अरिष्टनेमि के ग्यारह गण और ग्यारह गणधर बताये गये हैं। ग्यारह

---

२०. द्वे सहस्रे नरेन्द्रास्ते कन्याश्च नृपयोषितः।
सहस्राणि वहून्यापुः संयमं जिनदेशितम्॥
शिवा च रोहिणी देवी देवकी रुक्मिणी तथा।
देव्योऽन्याश्च सुचारित्रं गृहिणां प्रतिपेदिरे॥
यदुभोजकुलश्रेष्ठा राजानः सुकुमारिकाः।
जिनमार्गविदो जाता द्वादशाणुव्रतस्थिताः॥
—हरिवंशपुराण ५८।३०८ से ३१० पृ० ६९२ भारतीय ज्ञानपीठ

२१. अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गुंफइ गणहरा निउणा।
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० १९२

२२. अनुत्तरज्ञानदर्शनादि गुणानां गणं धारयन्तीति गणधराः।
—विशेषावश्यकभाष्य टीका गा० १०६२

२३. सम—११

गणधरों में वरदत्त प्रमुख गणधर थे, अन्य गणधरों का परिचय इन ग्रन्थों में नहीं मिलता और न इनके नाम ही इनमें हैं।

किन्तु आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र में अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर लिखे हैं।[२७] वे किस अपेक्षा से लिखे गये हैं, यह विज्ञों के लिए विचारणीय है।

एक चिन्तनीय प्रश्न :

निर्युक्ति, वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार रथनेमि चार सौ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे, एक वर्ष वे छद्मस्थ रहे और पाँच सौ वर्ष केवली पर्याय में। इस प्रकार उनका नौ सौ वर्ष का आयुष्य हुआ।[२८] इसी प्रकार कौमारावस्था,

---

२४. (क) तित्तीस अट्ठावीसा, अट्ठारस चेव तहय सत्तरस।
एक्कारसदसनवगं, गणाणमाणं जिणिंदाणं॥
एक्कारस उ गणहरा, वीरजिणिंदस्स सेसयाणं तु।
जावइया जस्स गणा तावइया गणधरा तस्स॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० २९०-२९१

(ख) अरिष्टनेमेरेकादश—मलयगिरिवृत्ति० पृ० २१०

२५. तैः सह वरदत्तादीनेकादशगणाधिपान्।
स्थापयामास विधिवन्नेमिनाथो जगद्गुरुः॥
—त्रिषष्टि० ८।९।३७५, पृ० १४२

२६. वरदत्तादयोऽभूवन्नेकादश गणेशिनः। —उत्तरपुराण ७१।१८२।८७

२७. अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा गणहरा होत्था।
—कल्पसूत्र १६६ पृ० २३६

२८. (क) निर्युक्ति—रहनेमिस्स भगवओ, गिहत्थए चउर हुंति वाससया।
संवच्छरछउमत्थो, पंचसए केवली हुंति॥
नववाससए वासा—हिए उ सव्वाउगस्स नायव्वं।
एसो उ चेव कालो, राव (य) मईए उ नायव्वो॥
—अभिधान राजेन्द्र कोष० भाग० ६ पृ० ४९९

(ग) तत्र चत्वारि वर्षशतानि गृहस्थपर्यायः, वर्षं छद्मस्थ पर्यायः, वर्षं शतकपञ्चकं केवलिपर्याय इति, मिलितानि नव वर्षशतानि वर्षाधिकानि सर्वाऽऽयुरभिहितम्।
—अभिधान० भा० ६ पृ० ४९९

है। इस सम्वन्ध में विद्वानों को विशेष रूप से विचार करना चाहिए।

राजीमती की दीक्षा :

उत्तराध्ययन की सुखवोधा वृत्ति[३२] व वादीवेताल शान्तिसूरि रचित वृहद्वृत्ति में; मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भव भावना ग्रन्थ[33] के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को सुनकर ही राजीमती ने दीक्षा ली। और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती, नन्द की कन्या एकवाशा और यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा लेती है।[३४] राजीमती के अन्तर्मानस में ये विचार लहरियां उद्बुद्ध हुई कि भगवान् अरिष्टनेमि को धन्य है जिन्होंने मोह को जीत लिया है, निर्मोही बन चुके हैं। मुझे धिक्कार है जो मोह के दल-दल में

---

३१. (क) आप तो नेम जी पेली पधारया, मुझे न लिधी लार।
आप पेली में जाऊं मुगत में, जाणजो थांरी नार॥
चोपन्न दिनों रे पेली यो सती, पोहती मोक्ष मझार।
नेम राजुल या सरीखी जोड़ी, थोड़ी इण संसार॥
—नेमवाणी—पृ० २२३, सं० पुष्करमुनिजी म०

(ख) श्री जैन सिद्धान्त वोल संग्रह, भाग० ५, पृ० २७४

३२. परितुट्ठमणा य रायमई वि पत्ता समोसरणं।
—उत्तराध्ययन सुखबोधा पृ० २८१

इत्थं चासौ तावदवस्थिता यावदन्यत्र प्रविहृत्य तत्रैव भगवानाजगाम, तत उत्पन्नकेवलस्य भगवतो निशम्य देशनां विशेपत उत्पन्नवैराग्या किं कृतवतीत्याह 'अहे' त्यादि
—वृहद्वृत्ति पत्र ४९३

३३. पुव्वभवब्भासेणं तो पडिबंधो इमीइ सविसेसो।
इय कहियम्मि भगवया तुट्ठा कण्हाइणो सव्वे॥
राइमई वि य अहियं परितुट्ठा वड्ढमाणसंवेगा।
पव्वज्जं पडिवज्जइ जिणेण दिन्नं सहत्थेण॥
—भव-भावना ३७१६, १७, पृ० २४६

त्रिषष्टि० ८।१०।१४८

फँसी हूँ। अब मेरे लिए संसार को त्याग कर दीक्षा अंगीकार कर लेना ही श्रेयस्कर है।[३५]

ऐसा दृढ़ संकल्प करके उसने कंघी से संवारे हुए भ्रमर-सदृश काले केशों को उखाड़ डाला। वह सर्व इन्द्रियों को जीतकर दीक्षा के लिए तैयार हुई। श्रीकृष्ण ने राजीमती को आशीर्वाद दिया—'हे कन्या! इस भयंकर संसार सागर से तू शीघ्र तर।[३६]' राजीमती ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास अनेक राजकन्याओं के साथ दीक्षा ग्रहण की।[३७] रथनेमि ने भी उस समय भगवान् के पास संयम संग्रहण किया।[३८]

रथनेमि को प्रतिबोध :

एक दिन की घटना है। बादलों की गड़गड़ाहट से दिशाएं काँप रही थीं, बिजलियाँ कौंध रही थीं। रैवतक का वनप्रान्तर् सांय-सांय कर रहा था। महासती राजीमती अन्य साध्वियों के साथ रैवतक गिरि पर चढ़ रही थी। सहसा छमाछम वर्षा होने लगी। साध्वियों का झुंड आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया। दल से बिछुड़ी राजहंसी की तरह राजीमती ने वर्षा से बचने के लिए एक अंधेरी गुफा का आश्रय लिया।[३९] राजीमती ने एकान्त शान्त

---

३५. राईमई विचिन्तेइ धिरत्थु मम जीवियं।
जा हं तेण परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम॥

—उत्तराध्ययन २२।२९

३६. अह सा भमरसन्निभे कुच्चफणगपसाहिए।
सयमेव लुंचई केसे धिइमन्ता ववस्सिया॥

—वहीं० २२।३०

३७. वासुदेवो य णं भणइ लुत्तकेसं जिइन्दियं।
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने! लहु लहु॥

—उत्तराध्ययन २२।३१

३८. (क) रायमई वि बहुयाहिं रायकण्णगाहिं सह निक्खंता।

उत्तरा० सुखबोधा २८१

(ख) उत्तराध्ययन २२।३२

३९. रहनेमी वि संविग्गो पव्वइतो। —वहीं० २८१

स्थान समझ कर समस्त गीले वस्त्र उतारकर सूखने के लिए फैला दिये।[४०]

राजीमती की फटकार से प्रतिबुद्ध होकर रथनेमि प्रव्रजित हो गये थे और उसी गुफा में ध्यान मग्न थे।[४१] आज बिजली की चमक से राजीमती को अकेली और निर्वस्त्र देखकर उसका मन पुनः विचलित हो गया। इतने में एकाएक राजीमती की दृष्टि भी उन पर पड़ी। उन्हें देखते ही वह सहम गई, और अपने अंगों का गोपन कर जमीन पर बैठ गई।[४२]

काम-विह्वल रथनेमि ने राजीमती से कहा—हे सुरूपे! मैं रथनेमि हूँ, तू मुझे अंगीकार कर। प्रारंभ से ही मैं तुझ में अनुरक्त हूँ। तेरे विना मैं शरीर धारण नहीं कर सकता। अभी मेरी मनोकामना पूर्ण कर फिर अवस्था आने पर हम दोनों संयम मार्ग स्वीकार कर लेंगे।[४३]

राजीमती ने देखा—रथनेमि का मनोबल टूट गया है। वे वासना-विह्वल होकर संयम से भ्रष्ट हो रहे हैं। उसने धैर्य के साथ कहा—भले ही तुम रूप में वैश्रमण सदृश हो, भोग-लीला में नल-कुबेर या साक्षात् इन्द्र के समान हो तो भी मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती।[४४] अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प प्रज्वलित अग्नि में जलकर मरना पसन्द करते हैं किन्तु वमन किये हुए विष को पुनः पीने की इच्छा नहीं करते। हे कामी! वमन की हुई वस्तु को खाकर तू जीवित रहना चाहता है, इससे तो मृत्यु को वरण कर लेना श्रेयस्कर है।[४५]

---

४० गिरिं रेवययं जन्ती वासेणुल्ला उ अन्तरा।
वासन्ते अंधयारंमि अन्तो लयणस्स सा ठिया॥

—उत्तराध्ययन २२।३३

४१. उस गुफा को आज भी राजीमती गुफा कहा जाता है।

—विविध तीर्थकल्प पृ० ६

४२. उत्तराध्ययन २२।३५

४३. वही० २२।३७-३८

४४. वही० २२।४१

४५. वही० २२, ४२

साध्वी राजीमती के सुभाषित वचन सुनकर जैसे हस्ती अंकुश से वश में आता है वैसे ही रथनेमि का मन स्थिर हो गया।[४६]

रथनेमि ने भगवान् के पास जाकर आलोचना की। वे उत्कृष्ट तप तपकर मोक्ष गये। राजीमती भी केवली हुई, फिर कर्मों को नष्ट कर मुक्त हुई।[४७]

देवकी की शंका : भगवान् का समाधान :

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि अपने शिष्य समुदाय सहित विहार करते हुए द्वारावती नगरी के सहस्राम्रवन में पधारे। उस समय भगवान् के साथ अनीकयशा, अनन्तसेन अजितसेन, निहतशत्रु, देवयशा और शत्रुसेन ये छह अन्तेवासी अनगार भी थे। वे सहोदर भाई थे। रूप और वय में वे सभी समान प्रतीत होते थे। उन सभी के शरीर का रंग नीलोत्पल एवं अलसीपुष्प के समान था। उनके वक्षस्थल पर वत्स का लक्षण था। उनकी सौन्दर्य-सुषमा नल कुबेर से भी बढ़कर थी। जिस दिन उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उसी दिन उन्होंने भगवान् के सामने यावज्जीवन षष्ठ भक्त तप करने को भीषण प्रतिज्ञा ग्रहण की थी।

एकवार उन्होंने षष्ठभक्त के पारणे के दिन भगवान् श्रीअरिष्टनेमि की आज्ञा ग्रहण कर तीन संघाटक बना भिक्षा के लिए द्वारिका में प्रवेश किया। एक संघाटक भिक्षा के लिए परिभ्रमण करता हुआ वसुदेव की रानी देवकी के महल में आया। मुनियों को निहार कर देवको रानी अत्यधिक प्रसन्न हुई। वह अपने आसन से उठकर सात-आठ कदम सामने गई। मुनियों को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया, पश्चात् भोजन गृह में जाकर उदार भावना से मुनियों को सिंह केसरिया मोदक बहराये। मुनि मोदक लेकर चले गये। कुछ समय के पश्चात् दूसरे संघाटक ने प्रवेश किया। देवकी ने पूर्ववत् ही सत्कार सन्मान कर आहारदान दिया। कुछ समय के पश्चात् तीसरे संघाटक ने भी उसी तरह प्रवेश किया। देवकी ने

---

४६. उत्तराध्ययन २२।४६

४७. वही० २२।४८

तुम उनका समाधान करने के लिए यहां पर शीघ्र ही आयी हो ! क्या यह कथन सत्य है ?

देवकी ने निवेदन किया—प्रभो ! जो आप फरमाते हैं वह सत्य है। मैं वही पूछने आयी हूँ कि क्या अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हो गई ?

भगवान् अरिष्टनेमि ने रहस्य खोलते हुए कहा—हे देवानुप्रिय ! भद्दिलपुर नामक में नाग गाथापति[४८] निवास करता है, उसके सुलसा नामक भार्या है। जब वह बाल्यावस्था में थी तब किसी निमित्तज्ञ ने कहा—सुलसा दारिका मृतपुत्रों को जन्म देने वाली होगी। सुलसा बाल्यावस्था से ही हरिणगमेषी देव की उपासिका थी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान, कौतुक, मंगल आदि कर भीगी साड़ी पहने ही प्रथम उसकी पूजा—अर्चना करती और फिर अन्य कार्य करती।

उसकी भक्ति, बहुमान, और शुश्रूषा से हरिणगमेषी देव प्रसन्न हुआ। हरिणगमेषी देव सुलसा की अनुकम्पा से प्रेरित होकर सुलसा गाथा पत्नी को और तुम्हें एक ही काल में ऋतुमती करने लगा। तुम दोनों एक ही समय में गर्भवती होती, एक ही समय में गर्भवहन करती और एक ही समय में पुत्र को भी जन्म देतीं। सुलसा गाथापत्नी के मृत पुत्र को अपनी हथेली में उठाकर हरिणगमेषी देव तुम्हारे पास संहरण कर दिया करता था और तुम जिस सुकुमार बालक का प्रसव करतीं उसे वह उठा लेकर सुलसा के पास रख देता था। इस प्रकार हे देवकी ! ये छहों पुत्र वस्तुतः तुम्हारे ही हैं, न कि सुलसा गाथापत्नी के।"

यह बात सुनकर देवकी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार कर, जहां वे छह अनगार थे वहां गई और उन्हें वन्दन नमस्कार किया। अपने प्यारे पुत्रों को निहार कर उसके स्तन से दूध की धारा बहने लगी। आनन्दाश्रु से उसके नेत्र भींग गये, कंचुकी ढीली हो गई, वलय टूट गये। मेघ की जलधारा से आहत कदम्ब के पुष्प की तरह उसके शरीर के रोम-रोम पुलकित

---

४८. हरिवंशपुराण में उनके पिता का नाम सुदृष्टि और माता का नाम अलका दिया है—देखें

—हरिवंशपुराण—५९।११५, पृ० ७०४

तुम उनका समाधान करने के लिए यहां पर शीघ्र ही आयी हो ! क्या यह कथन सत्य है ?

देवकी ने निवेदन किया—प्रभो ! जो आप फरमाते हैं वह सत्य है। मैं वही पूछने आयी हूँ कि क्या अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हो गई ?

भगवान् अरिष्टनेमि ने रहस्य खोलते हुए कहा—हे देवानुप्रिय ! भद्दिलपुर नामक में नाग गाथापति[४८] निवास करता है, उसके सुलसा नामक भार्या है। जब वह बाल्यावस्था में थी तब किसी निमित्तज्ञ ने कहा—सुलसा दारिका मृतपुत्रों को जन्म देने वाली होगी। सुलसा बाल्यावस्था से ही हरिणगमेषी देव की उपासिका थी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान, कौतुक, मंगल आदि कर भीगी साड़ी पहने ही प्रथम उसकी पूजा—अर्चना करती और फिर अन्य कार्य करती।

उसकी भक्ति, बहुमान, और शुश्रूषा से हरिणगमेषी देव प्रसन्न हुआ। हरिणगमेषी देव सुलसा की अनुकम्पा से प्रेरित होकर सुलसा गाथा पत्नी को और तुम्हें एक ही काल में ऋतुमती करने लगा। तुम दोनों एक ही समय में गर्भवती होती, एक ही समय में गर्भवहन करती और एक ही समय में पुत्र को भी जन्म देतीं। सुलसा गाथापत्नी के मृत पुत्र को अपनी हथेली में उठाकर हरिणगमेषी देव तुम्हारे पास संहरण कर दिया करता था और तुम जिस सुकुमार बालक का प्रसव करतीं उसे वह उठा लेकर सुलसा के पास रख देता था। इस प्रकार हे देवकी ! ये छहों पुत्र वस्तुतः तुम्हारे ही हैं, न कि सुलसा गाथापत्नी के।"

यह बात सुनकर देवकी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन नमस्कार कर, जहां वे छह अनगार थे वहां गई और उन्हें वन्दन नमस्कार किया। अपने प्यारे पुत्रों को निहार कर उसके स्तन से दूध की धारा बहने लगी। आनन्दाश्रु से उसके नेत्र भींग गये, कंचुकी ढीली हो गई, वलय टूट गये। मेघ की जलधारा से आहत कदम्ब के पुष्प की तरह उसके शरीर के रोम-रोम पुलकित

---

४८. हरिवंशपुराण में उनके पिता का नाम सुदृष्टि और माता का नाम अलका दिया है—देखें

—हरिवंशपुराण—५९।११५, पृ० ७०४

लगी। उसके अद्भुत और अनुपम सौन्दर्य को देखकर सभी लोग चकित थे।

भगवान् अरिष्टनेमि सहस्राम्रवन में पधारे। सर्वत्र उत्साह और उमंग की लहर दौड़ गई। देवकी और श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन करने के लिए तैयार हुए। गजसुकुमार भी साथ हो लिया।

जिस राजमार्ग से कृष्ण की सवारी जा रही थी, उसके समीप ही एक सुन्दर सुकुमार वाला अपनी सहेलियों के साथ गेंद खेल रही थी। वह खेल में इतनी तल्लीन थी कि उसे किसी के आने जाने का ज्ञान भी नहीं था। किन्तु श्रीकृष्ण की दृष्टि सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा की सुषमा पर टिक गई। श्रीकृष्ण ने गजसुकुमाल के साथ विवाह करने के लिए सोमिल से सोमा की मांग की। उसने श्रीकृष्ण का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया।

भगवान् के पावन प्रवचन को सुनकर गजसुकुमार के अन्तर्मानस में वैराग्य उछालें मारने लगा। उसने महल में पहुंचते ही प्रव्रज्या का प्रस्ताव रखा, देवकी का वात्सल्य, श्रीकृष्ण का स्नेह और भौजाइयों का मधुर हासविलास उसके मार्ग को रोक न सका।

निवृत्ति के प्रशस्त पथ पर बढ़ने के लिए उसका मन मचल रहा था। उसने भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की और भगवान् अरिष्टनेमि की अनुमति प्राप्त कर वह कठोर साधना करने के लिए उसी दिन महाकाल नामक श्मशान में गया। उच्चार प्रश्रवण के लिए भूमि की प्रतिलेखना कर, शरीर को कुछ झुका, भुजाओं को पसार, नेत्रों को निर्निमेष रख, दोनों पैर एक साथ इकट्ठे कर एक रात्रि की महाप्रतिमा नामक तपश्चर्या ग्रहण कर खड़ा हो गया।

सोमिल ब्राह्मण, समिध, दर्भ, कुश, पत्ते आदि लेकर सन्ध्या के समय वन से नगर की ओर आ रहा था। उसने देखा कि मेरा जामाता होने वाला गजसुकुमार आज मुण्डित होकर तपस्वी हो गया है। मेरी सुकोमल बेटी के जीवन के साथ इस प्रकार का खिलवाड़!

क्रोध मानव को अन्धा बना देता है। सोमिल के मन में क्रोध की आंधी उठी, और उसने उसके विवेक के दीपक को बुझा दिया। उसने श्रीकृष्ण की राजसत्ता और अखंड प्रलाप को भी विस्मरण कर दिया। उसने चारों दिशाओं में देखा। किसी को भी न देखकर

पास की तलैया से गीली मिट्टी ली, और ध्यान मुद्रा में खड़े गजसुकुमार के सिर पर पाल बांधी। जलती चिता से धधकते अंगार लेकर उसमें भर दिये, और उसी क्षण वह वहाँ से चल दिया।

उस तरुण-तपस्वी का मस्तक, चमडी, मज्जा मांस, सभी जलने लगे। महाभयंकर, महादारुण वेदना होने पर भी तपस्वी ध्यान मुद्रा से विचलित नहीं हुआ। उसके मन में तनिक मात्र भी विरोध या प्रतिशोध की भावना जाग्रत नहीं हुई। वह देह में नहीं, आत्मभाव में रमण कर रहा था। वह सोच रहा था—यह मेरे किए हुए कर्मों का ही फल है। कभी मैंने सोमिल से कर्ज लिया होगा, आज उसे चुका कर मुक्त हो रहा हूँ। यह थी रोप पर तोप की शानदार विजय! और था दानवता पर मानवता का अमर जयघोष।

दूसरे दिन अरिष्टनेमि को वन्दन करने हेतु श्रीकृष्ण पहुँचे। पर गजसुकुमार मुनि को न देखकर उन्होंने भगवान् से पूछा—भगवन्! मेरे लघुभ्राता गजसुकुमार मुनि कहाँ हैं?

भगवान् ने गंभीर स्वर में कहा—कृष्ण! वह तो कृतकृत्य हो गया। उसने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया।

कृष्ण ने कातर स्वर में प्रतिप्रश्न किया—भगवन्! क्या उस बाल साधक ने एक ही दिन में साधना का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कर लिया?

भगवान् ने कहा—कृष्ण! आत्मा में अनन्त बल है, वह सभी कुछ करने में समर्थ है। गजसुकुमार मुनि को एक सहायक मिल गया। उसका निमित्त पाकर उसने सिद्धि का वरण किया है।

कृष्ण ने पुनः निवेदन किया—प्रभो! यह अनार्य कर्म किसने किया? वह कहाँ रहता है? उसका इतना साहस! मैं देखूं वह कौन है?

भगवान् ने कहा—कृष्ण, तुम उस व्यक्ति के प्रति द्वेष न करो। उस पुरुष ने निश्चय ही गजसुकुमार मुनि को सहारा दिया है।

कृष्ण ने पूछा—सो कैसे भगवन्?

भगवान्—कृष्ण! तुम अभी जब मेरे दर्शन के लिए आ रहे थे, तब रास्ते में तुमने एक वृद्ध पुरुष को देखा, जिसका शरीर जर्जरित हो चुका था। वह आतुर बुभुक्षित, तृष्णा से प्रपीडित और श्रम से हुआ था। वह ईंटों के ढेर में से एक-एक ईंट लेकर अपने

घर के अन्दर रख रहा था। उसको देखकर तुम्हारा दयालु हृदय द्रवित हो गया। तुमने हाथी पर बैठे बैठे ही एक ईंट लेकर उसके घर के अन्दर रख दी। तुम्हारा अनुकरण उन सभी ने किया जो तुम्हारे साथ यहाँ आ रहे थे। देखते ही देखते वह ईंटों का ढेर उसके घर में पहुँचाया। जैसे ईंट उठाकर तुमने उस वृद्ध की सहायता की वैसे ही उस पुरुष ने भी गजसुकुमार के अनेक सहस्र भवों के संचित किए हुए कर्मों की उदीरणा करके उनका सम्पूर्ण क्षय करने में सहायता कीं है।

कृष्ण वासुदेव—हे भदन्त ! मैं उस पुरुष को कैसे जान सकता हूँ ?

'कृष्ण ! तुम उसे नगर में प्रवेश करते ही देख सकोगे, अधीर मत बनो ?' भगवान् ने कहा।

सोमिल ने सुना—श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करने गये हैं, उसके अन्तर्मानस में एक महाभयानक प्रश्न कौंध उठा। वहां मेरे सभी गुप्त पाप प्रकट हो जायेंगे ! अब मुझे श्रीकृष्ण किस बेमौत से मारेंगे, कुछ पता नहीं।

सोमिल भयाक्रान्त हो नगर से अरण्य की ओर भागा जा रहा था। उधर से श्रीकृष्ण उदासीन व खिन्न मन से हाथी पर बैठकर आ रहे थे। ज्योंही उसने श्रीकृष्ण के हाथी को देखा, भयातुर हो, पछाड़ खाकर गिर पड़ा और मर गया।

कृष्ण ने देखा—यह वही दुष्ट व्यक्ति है जिसने मेरे कनिष्ट सहोदर भाई को अकाल में जीवन रहित कर दिया। उसके शव को चाण्डालों के द्वारा नगर के बाहर फिकवा दिया।

द्वारिका महानगरी में सर्वत्र गजसुकुमार मुनि की क्षमा की चर्चा श्रद्धा-भक्ति के साथ की जाने लगी।[५०]

अन्य दीक्षाएँ :

गजसुकुमार के मुक्ति गमन के समाचार को श्रवण कर अन्य अनेक यादवों ने एवं समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तमित, सागर, हिमवान्, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र, इन नौ दशार्हों ने तथा माता

---

५०. (क) अंतगडदसा वर्ग ३, अ० ८

(ख) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १०

अक्षोभ, प्रसेन और विष्णु आदि ने भी अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ग्रहण की, और गौतम की भाँति संयम का आराधन कर मुक्त हुए थे। इन सभी के पिता अंधकवृष्णि थे और माता धारिणी थी।

एकबार भगवान् जब पुनः द्वारिका पधारे तब वृष्णि के पुत्र और धारिणी के आत्मज अक्षोभ, सागर, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण, और अभिचन्द्र ने दीक्षा ली। इन सभी ने गुणरत्न संवत्सर नामक तपःकर्म का आचरण किया। सोलह वर्ष तक उत्कृष्ट चारित्र का पालन करने के पश्चात् एक मास की संलेखना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर आयु पूर्ण कर ये सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए।[५४]

फिर एक समय भगवान द्वारवती पधारे। उस समय वासुदेव के पुत्र और महारानी धारणी के अंगजात सारणकुमार ने पचास भार्याओं को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की। स्थविरों के पास चौदह पूर्वों का अभ्यास किया। बीस वर्ष तक संयम धर्म का पालन कर अन्त में एक मास की संलेखना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर मुक्ति प्राप्त की।[५५]

भगवान् एक बार पुनः द्वारवती पधारे। तब बलदेव राजा और धारिणी देवी के पुत्र सुमुखकुमार ने पचास पत्नियों को त्यागकर दीक्षा ली। चौदह पूर्वों का अभ्यास किया। बीस वर्ष तक संयम साधना, एवं तप आराधना कर शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की। उसी समय बलदेव और धारिणी के पुत्र दुर्मुख और कूप ने, तथा वासुदेव धारिणी के पुत्र दारुक व अनादृष्टि ने दीक्षा ली और उत्कृष्ट साधना कर मुक्ति प्राप्त की।[५६]

किसी समय पुनः भगवान् द्वारिका पधारे। उस समय वसुदेव और धारिणी के पुत्र जालिकुमार, मयालिकुमार, उपजालिकुमार, पुरुषसेन और वारिषेण तथा श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न, कृष्ण और जाम्बवती के पुत्र साम्बकुमार, प्रद्युम्न और वैदर्भी के पुत्र अनिरुद्ध और समुद्रविजय व शिवादेवी के पुत्र सत्यनेमि और दृढ़नेमि ने दीक्षा ली थी।[५७]

---

५४. अन्तकृतदशा वर्ग २, अ० १ से ८

५५. अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ७

५६. अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ९-१३

उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर कहा—कृष्ण ! अभी-अभी तुम्हारे अन्तर्मानस में ये विचार लहरें उठ रही थीं कि मैं जघन्य हूँ, जो प्रव्रज्या लेने में समर्थ नहीं हूँ। क्या मेरा यह कथन सत्य है ?

हाँ, प्रभो ! आपका कथन पूर्ण सत्य है, यथार्थ है—श्रीकृष्ण ने निवेदन किया।

भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—कृष्ण ! न कभी ऐसा हुआ है, न होता है, और न होगा ही कि वासुदेव हिरण्य राज्य आदि को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण करें। क्योंकि जितने भी वासुदेव हैं, वे सभी कृत-निदान होते हैं, जिससे वे प्रव्रज्या ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते।[६१]

श्रीकृष्ण ने पुनः प्रश्न निवेदन किया—प्रभो ! मैं इस शरीर का त्याग कर कहाँ जाऊंगा ? कहाँ पर उत्पन्न होऊंगा ?[६२]

भगवान् ने समाधान देते हुए कहा—कृष्ण ! जिस समय द्वारवती नगरी द्वीपयान के कोप से भस्म होगी, उस समय तुम माता-पिता और अपने स्वजनों से रहित होकर बलदेव के साथ एकाकी दक्षिण दिशा के किनारे बसी हुई पाण्डुमथुरा जाने के लिए निकलोगे। तुम पाण्डु राजा के पाँचों पाण्डव पुत्रों से मिलना चाहोगे। उस समय कौशाम्बी नगरी के कानन में न्यग्रोध नामक वृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर पीत वस्त्र से अपने शरीर को आच्छादित कर तुम शयन करोगे। उस समय जराकुमार वहाँ आयेगा। मृग की आशंका से तीक्ष्ण बाण छोड़ेगा। वह बाण तुम्हारे बांए पैर में लगेगा। उस बाण से विद्ध होकर कालकर तुम तृतीय पृथ्वी में उत्पन्न होओगे।[६३]

यह सुन कृष्ण कुछ चिन्तित हुए। तब भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा—हे कृष्ण ! तुम चिन्ता न करो। तृतीय पृथ्वी से निकलकर

---

६१. अन्तगडदशा वर्ग, ५, अ० १, सूत्र ४

६१. भन्ते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ! कहिं उववज्जिस्सामि।

—वहीं, वर्ग ५, अ० १, सूत्र ५

६३. (क) अन्तकृतदशाङ्ग वर्ग ५, अ०

(ख) त्रिपष्टि० ८।११

भगवान् ने कहा—जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।

उसके पश्चात् पद्मावती देवी उत्तर पूर्व दिशा की ओर चली गई। उसने अपने आभूषण और अलंकार उतारे और स्वयं पञ्चमुष्टि लोच किया। पश्चात् अरिष्टनेमि के पास आकर विधिपूर्वक वन्दन नमस्कार कर बोली—हे भगवन्! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दुःख रूपी अग्नि से प्रज्वलित हो रहा है। मैं उस दुःख से मुक्त होने के लिए आपके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने पद्मावती को स्वयं प्रव्रज्या दी और उसे यक्षिणी आर्या को शिष्या के रूप में प्रदान की। पद्मावती ने यक्षिणी आर्या के पास ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उपवास से लेकर मासिक उपवास तक उत्कृष्ट तप का आचरण करती हुई, एक मासिक संलेखना कर अन्त में सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुई।[६६]

उसके पश्चात् द्वारवती के बाहर जब भगवान् नन्दनवन में समवसृत हुए तब श्रीकृष्ण की अन्य रानियां गौरी,[६७] गांधारी,[६८] लक्ष्मणा,[६९] सुसीमा,[७०] जाम्ववती,[७१] सत्यभामा,[७२] और रुक्मिणी[७३] ने भी भगवान् के उपदेश को सुन, श्रीकृष्ण की आज्ञा ले संयम मार्ग ग्रहण किया और मुक्ति प्राप्त की।

उसके बाद पुनः भगवान् अरिष्टनेमि किसी समय द्वारवती पधारे। नन्दनवन में विराजे। तब सांबकुमार की पत्नी मूलश्री[७४] और मूलदत्ता[७५] ने प्रव्रज्या ग्रहण की और मुक्त हुई।

---

६५. एस णं भन्ते! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा अभिरामा जीवियऊसासा हिययाणंदजणिया उंबरपुप्फंविव दुल्लहा सवणयाए किमंग पुण पासणयाए? तण्णं अहं देवाणुप्पियाणं! सिस्सिणीभिक्खं दलयामि।

—अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० १

६६. अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० १

६७. अन्तकृतदशा वर्ग ५, अ० २

६८. वहीं० अ० ३

६९. वहीं० अ० ४

७०. वहीं० अ० ५

७१. वहीं० अ० ६

७२. वहीं० अ० ७

७३. वहीं० अ० ८

७४. वहीं० अ० ९

७५. वहीं० अ० १०

'पुत्र ! तेरे जन्म की बात का पूछना ही क्या ! उस समय बहुत गीत गाये गए थे, बाजे बजाए गये थे। पूरे मोहल्ले में मिठाइयाँ बांटी गई थीं। महान् उत्सव किया गया था।'

'माता ! मेरा मन करता है कि ऐसे गीत हमेशा सुनता रहूँ, बड़े अच्छे लगते हैं, तुम भी चलो ऊपर, और गीत-सुनने का आनन्द लो।'

'पुत्र ! मुझे बहुत काम है, मैं नहीं आ सकती, तुम जाओ और आनन्द से गीत सुनो।'

थावच्चापुत्र ऊपर गया किन्तु सुमधुर स्वर-लहरियों के स्थान पर कर्णकटु आक्रन्दन सुनाई दिया। भयावना-सा कोलाहल सुनाई दिया। उसे सुनते ही उसका मन रुआँसा होने लगा। वह वहां खड़ा न रह सका। उसी समय दौड़कर वह पुनः माता के पास गया। बोला—माता ! जो गीत पहले सुहावने लग रहे थे; जिन्हें सुनने के लिए जी चाहता था, अब वे बड़े डरावने लग रहे हैं। क्या कारण है ?'

माता को वस्तु-स्थिति समझने में देर न लगी। पड़ौसी पर आयी हुई आकस्मिक विपत्ति के कारण उसकी आँखें गीली हो गईं। माता की आँखों में आँसू छलकते देखकर थावच्चापुत्र ने कहा—"माँ क्यों रो रही हो ? मैंने ऐसा क्या कहा जिससे तुम रोने लग गईं ? मैंने तो इतना ही पूछा कि पहले गीत अच्छे लग रहे थे, अब क्यों नहीं लग रहे हैं ?"

माता थावच्चापुत्र की सरलता, व अबोधता पर गद्‌गद् हो उठी। वह अपने प्यारे पुत्र को गले लगाकर बोली—'वत्स ! कुछ समय पूर्व पड़ौसी के घर में जिस पुत्र का जन्म हुआ था, जिसका उत्सव मनाया जा रहा था, वह मर गया है। इसलिए गायन रुदन में परिणत हो गया है। प्रसन्नता के स्थान पर शोक की काली घटाएँ छा गयीं हैं।'

'माँ ! क्या इसी तरह मैं भी एकदिन मर जाऊंगा ?'

'बेटा ! ऐसी बात नहीं कहा करते। जा मुँह से थूक दे। तू तो मेरा आँखों का तारा, नयनों का सितारा है, तू क्यों मरेगा ?'

'अच्छा माता, मैं कभी नहीं मरूंगा ?'

महोत्सव मनाने के लिए श्रीकृष्ण के पास गई और श्रीकृष्ण से छत्र, मुकुट, और चंवर प्रभृति वस्तुएं मांगी।

श्रीकृष्ण ने कहा—देवानुप्रिये ! तू निश्चिन्त रह, मैं स्वयं ही उसका अभिनिष्क्रमण सत्कार करूंगा।" श्रीकृष्ण चतुरंगिणी सेना सजाकर थावच्चा सार्थवाही के घर आये। थावच्चापुत्र के वैराग्य की परीक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने थावच्चापुत्र से कहा—देवानुप्रिय ! तू मुण्डित होकर श्रमण धर्म स्वीकार न कर। मेरी भुजाओं का आश्रय ग्रहण कर और मानव सम्वन्धी विपुल कामभोगों का सेवन कर। तेरे ऊपर से जो पवन जारहा है उसे निवारण करने में तो मैं असमर्थ हूँ किन्तु इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी तुझे किञ्चित् मात्र भी वाधा नहीं पहुँचा सकेगा। मैं सभी वाधाओं का निवारण करूंगा।[७७]

थावच्चापुत्र ने अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन किया—'देवानुप्रिय ! यदि आप मेरे जीवन का अन्त करने वाली मृत्यु को आने से रोक सकते हों और मेरे शारीरिक सामर्थ्य एवं सौन्दर्य को नष्ट करने वाली वृद्धावस्था को रोक सकते हों तो मैं आपकी भुजाओं की छत्रछाया में मानव सम्वन्धी विषयभोगों का उपभोग करता हुआ रहूं।'[७८]

---

७७. मा णं तुमे देवाणुप्पिया ! मुंडे भवित्ता पव्वयाहि भुंजाहि, णं देवाणुप्पिया ! विउले माणुस्सए कामभोए मम वाहुच्छायापरिग्गहिए, केवलं देवाणुप्पियस्स अहं णो संचाएमि वाउकायं उवरिमेणं निवारित्तए। अण्णे णं देवाणुप्पियस्स जं किंचि वि आवाहं वा वावाहं वा उप्पाएइ तं सव्वं निवारेमि।

—ज्ञातासूत्र अ० ५ पृ० १८५

७८. कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जइ णं तुमं देवाणुप्पिया ! मम जीवियंतकरणं मच्चुं एज्जमाणं निवारेसि, जरं वा सरीररूवविणासिणि सरीरं अइवय-माणि निवारेसि, तए णं अहं तव वाहुच्छायापरिग्गहिए विउले माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरामि।

—ज्ञातासूत्र अ० ५, पृ० १८५

थावच्चापुत्र को सन्मुख कर श्रीकृष्ण ने भगवान् से निवेदन किया—प्रभो! यह थावच्चापुत्र थावच्चा सार्थवाही का एकमात्र पुत्र है। यह अपनी माता का इष्ट, कान्त, जीवन-रूप, तथा उच्छ्वास-निश्वास रूप है। यह उसके हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है। वह इसके दर्शन दुर्लभ मानती है। यह कामभोगों से कमलवत् निर्लिप्त है। संसार से उद्विग्न और जन्म जरा मरण से भयभीत है। यह आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है। उसकी माता आपको यह शिष्यभिक्षा प्रदान करती है। आप इस भिक्षा को ग्रहण कर अनुगृहीत करें।

तत्पश्चात् ईशानकोण में जाकर थावच्चापुत्र ने आभरण, माला, और अलंकार उतारे। थावच्चा सार्थवाही ने उनको ग्रहण किया। फिर आँखों से अश्रु गिराती हुई बोली—वत्स! साधना के मार्ग में प्रयत्न करना, संयम में जरा भी प्रमाद न करना। इस प्रकार उद्बोधन देकर माता जिस मार्ग से आयी उधर चली गई। थावच्चा पुत्र ने हजार पुरुषों के साथ पंचमुष्टि लोच कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

वर्षाऋतु में विहार क्यों नहीं :

एक बार भगवान् अरिष्टनेमि वर्षावास हेतु द्वारवती में समवसृत हुए। श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा—भगवन्! सन्तों को विहार पसन्द है। एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर जाते रहने से किसी स्थान एवं व्यक्ति के प्रति आसक्ति का भाव जागृत नहीं होता, उनकी आत्मा राग बन्धन और द्वेष बन्धन से मुक्त रहती है। साथ ही जनकल्याण भी अधिक होता है। तथापि सन्त वर्षा ऋतु में विहार क्यों नहीं करते? इसका क्या रहस्य है?[८१]

भगवान् अरिष्टनेमि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—कृष्ण! वर्षाऋतु में वर्षा होने के कारण त्रस और स्थावर जीवों की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। अहिंसा महाव्रत का उपासक सन्त, जीवों की विराधना न हो, एतदर्थ अहिंसा—दया की निर्मल भावना से एक स्थान पर अवस्थित रहकर तप और संयम की आराधना करता है।[८२]

---

८१. शुश्रूपमाणस्तं कृष्णो बभाषे भगवन् कथम्।
विहरध्वे न वर्षासु यूयमन्येऽपि साधवः ॥२०१।

थावच्चापुत्र को सन्मुख कर श्रीकृष्ण ने भगवान् से निवेदन किया—प्रभो ! यह थावच्चापुत्र थावच्चा सार्थवाही का एकमात्र पुत्र है। यह अपनी माता का इष्ट, कान्त, जीवन-रूप, तथा उच्छ्वास-निश्वास रूप है। यह उसके हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला है। वह इसके दर्शन दुर्लभ मानती है। यह कामभोगों से कमलवत् निर्लिप्त है। संसार से उद्विग्न और जन्म जरा मरण से भयभीत है। यह आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता है। उसकी माता आपको यह शिष्यभिक्षा प्रदान करती है। आप इस भिक्षा को ग्रहण कर अनुगृहीत करें।

तत्पश्चात् ईशानकोण में जाकर थावच्चापुत्र ने आभरण, माला, और अलंकार उतारे। थावच्चा सार्थवाही ने उनको ग्रहण किया। फिर आँखों से अश्रु गिराती हुई बोली—वत्स ! साधना के मार्ग में प्रयत्न करना, संयम में जरा भी प्रमाद न करना। इस प्रकार उद्बोधन देकर माता जिस मार्ग से आयी उधर चली गई। थावच्चा पुत्र ने हजार पुरुषों के साथ पंचमुष्टि लोच कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

वर्षाऋतु में विहार क्यों नहीं :

एक वार भगवान् अरिष्टनेमि वर्षावास हेतु द्वारवती में समवसृत हुए। श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से पूछा—भगवन् ! सन्तों को विहार पसन्द है। एक गाँव से दूसरे गाँव, एक नगर से दूसरे नगर जाते रहने से किसी स्थान एवं व्यक्ति के प्रति आसक्ति का भाव जागृत नहीं होता, उनकी आत्मा राग वन्धन और द्वेष बन्धन से मुक्त रहती है। साथ ही जनकल्याण भी अधिक होता है। तथापि सन्त वर्षा ऋतु में विहार क्यों नहीं करते ? इसका क्या रहस्य है ?[८१]

भगवान् अरिष्टनेमि ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—कृष्ण ! वर्षाऋतु में वर्षा होने के कारण त्रस और स्थावर जीवों की अधिक उत्पत्ति हो जाती है। अहिंसा महाव्रत का उपासक सन्त, जीवों की विराधना न हो, एतदर्थ अहिंसा—दया की निर्मल भावना से एक स्थान पर अवस्थित रहकर तप और संयम की आराधना करता है।[८२]

---

८१. शुश्रूपमाणस्तं कृष्णो बभाषे भगवन् कथम्।
विहरध्वे न वर्षासु यूयमन्येऽपि साधवः ॥२०१।

श्रीकृष्ण ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—देखो, त्याग का मार्ग स्वामी बनने का मार्ग है और भोग का मार्ग दासी बनने का। त्यागी के चरणों में सम्राट् झुकते हैं क्योंकि वह षट्काय का स्वामी है, नाथ है। तुमने बहुत सुन्दर विचार किया है। तुम्हारे ये विचार, तुम्हारे कुल के अनुकूल हैं। अतः मैं आदेश देता हूँ कि स्वामिनी बनने के लिए भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण करो।"

श्रीकृष्ण के आदेश को स्वीकार कर सभी ने त्याग मार्ग ग्रहण किया।[८६]

श्रीकृष्ण के यहाँ जो भी विवाह योग्य कन्याएँ होतीं उन सभी से श्रीकृष्ण वही प्रश्न करते। त्याग-मार्ग का महत्त्व बताकर उन्हें त्यागमार्ग ग्रहण कराते। अपने पुत्रों और पुत्रियों को त्यागमार्ग में प्रविष्ट देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते।

केतुमंजरी को प्रतिबोध :

एक दिन एक महारानी ने अपनी पुत्री को सिखलाया कि पिता जी जब तुम्हें रानी या दासी बनने के लिए पूछें तब स्पष्ट शब्दों में कहना कि मुझे रानी नहीं, दासी बनना है।[८७] उस पुत्री का नाम केतुमंजरी था। श्रीकृष्ण ने एक दिन उससे पूछा—बेटी, तुम क्या बनना चाहती हो दासी, या रानी ? उसने माता के कहे अनुसार कह दिया—पिताजी, मुझे दासी बनना है रानी नहीं।

पुत्री की बात सुनकर श्रीकृष्ण विचारने लगे—यह विचित्र लड़की है, जो दासी बनना पसन्द करती है। यदि मैंने शिक्षा न देकर इसका पाणिग्रहण किसी राजा आदि के साथ करा दिया तो अन्य सन्तान भी इसी का अनुसरण करेंगी। भोग का मार्ग ढलान का मार्ग है। हर किसी का पैर फिसल सकता है। एतदर्थ ऐसा उपाय करूं जिससे भविष्य में मेरी कोई भी सन्तान विषय-भोग के कीचड़ में न फंसे।

---

८६. त्रिषष्टि० ८।१०।२१५-२१६

८७. पृष्टा तातेन वत्से त्वं भाषेथा अविशंकितम्।
अहं दासीभविष्यामि न पुनः स्वामिनी प्रभो॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।२१७

करवाया और मेरी आज्ञा की अवहेलना की तो तुम्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा।

वीरक श्रीकृष्ण के आदेश को सुनकर भय से कांप उठा। उसने घर आते ही केतुमंजरी को आज्ञा के स्वर में कार्य करने के लिए कहा।

केतुमंजरी ने ज्योंही वीरक का आदेश सुना, उसे क्रोध आ गया। उसने कहा—वीरक ! तुम जानते हो ! मैं वासुदेव श्रीकृष्ण की पुत्री हूँ, मुझे कार्य के लिए आदेश देने का अर्थ मेरा अपमान करना है।

वीरक ने आव देखा न ताव, उसे पीटना प्रारंभ किया। केतुमंजरी भाग कर अपने पिता के पास पहुँची। वीरक की शिकायत करने लगी।

कृष्ण ने कहा—मैंने पूर्व ही तुम्हें स्वामिनी बनने के लिए कहा था न ! पर तुमने तो दासी बनना ही पसन्द किया। अब मैं क्या करूं ? तुम्हें अपने पति की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए।

केतुमंजरी कृष्ण के चरणों में गिरकर बोली--पिताजी ! मैंने माता जी के कहने से भूल की। अब मैं दासी न रहकर रानी बनना चाहती हूं ? केतुमंजरी के अत्यधिक आग्रह पर वीरक को समझाकर उसे अरिष्टनेमि के पास दीक्षा दिलवाई। उसके पश्चात् किसी ने भी दासी बनने की बात नहीं कही।

कृष्ण का वन्दन :

एक समय श्रीकृष्ण भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा में गये। सन्त मण्डली को देखकर मन में विचार आया—मैं प्रतिदिन जब कभी दर्शन के लिए आता हूँ तब भगवान् को और अन्य विशिष्ट सन्तों को वन्दन कर बैठ जाता हूँ, क्यों न आज सभी सन्तों को विधियुक्त वन्दन किया जाय। भावना की उच्चता बढ़ी, वे सभी सन्तों को अनुक्रम से वन्दन करने लगे। उनका मित्र वीर कौलिक भी साथ था। श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए वह भी उनके देखादेखी वन्दन करने लगा। वन्दन पूर्ण हुआ। श्रीकृष्ण बैठे। उन्होंने भगवान् से निवेदन किया भगवन् ! मैंने अपने जीवन में तीन सौ साठ संग्राम किये हैं, पर उन संग्रामों में मुझे जितना श्रम नहीं हुआ उतना श्रम

आज वन्दन करने में हुआ है। कृपया फरमाइये कि वन्दन करने का मुझे क्या फल हुआ ?[८८]

भगवान् ने कहा—कृष्ण ! तुमने भाव-वन्दन किया है, इसके फलस्वरूप तुम्हें क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है साथ ही तीर्थंकर गोत्र की शुभ प्रकृति का बन्धन किया है। इतना ही नहीं, तुमने सातवीं, छट्ठी पाँचवीं, और चौथी नरक का बंधन भी तोड़ दिया है।[८९] किन्तु वीरक ने तुम्हारे देखा देखी ही भावशून्य वन्दन किया है। तुम्हें प्रसन्न करना ही इसका उद्देश्य रहा है, अतः इनका वन्दन कायक्लेश मात्र हुआ है।[९०]

शाम्ब और पालक :

शाम्ब और पालक श्रीकृष्ण के पुत्र थे। दोनों की प्रकृति में दिन रात का अन्तर था। शाम्ब जहाँ दयालु, धर्मात्मा, और उदार प्रकृति का धनी था वहां पालक, लोभी, दुराग्रही, और अभव्य प्रकृति का स्वामी था। भगवान् अरिष्टनेमि द्वारवती नगरी के बाहर पधारे हुए थे। प्रसंगवश श्रीकृष्ण ने कहा—जो कल प्रातःकाल सर्वप्रथम भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करेगा, वह जो भी मांगेगा मैं उसे

---

८८. अन्यदा सर्वसाधूनां द्वादशावर्तवन्दनम्।
कृष्णो ददौ नृपास्त्वन्ये निर्वीर्यास्त्ववतास्थिरे ॥२४०।
सर्वेषामपि साधूनां वासुदेवानुवर्तनात्।
तत्पृष्ठतो वीरकोऽदाद्द्वादशावर्तवन्दनम् ॥२४१।
बभाषे स्वामिनं कृष्णः षष्टयग्रत्रिशताहवैः।
न तथा हं परिश्रान्तो वन्दनेनामुना यथा ॥२४२।

८९. सर्वज्ञोऽप्यवदत् कृष्ण ! बह्वद्य भवतार्जितम्।
पुण्यं क्षायिकसम्यक्त्वं तीर्थकृन्नाम कर्म च ॥२४३।
उद्धृत्य सप्तमावन्यास्तृतीयनरकोचितम् ॥२४४।
—त्रिषष्टि० ८।१०

९०. (क) वीरकस्य फलं कृष्णेनानुयुक्तोऽवदत् प्रभुः।
फलमस्य वपुः क्लेशस्त्वच्छन्दाद्वन्दते ह्यसौः ॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।२४७

(ख) आवश्यक चूर्णि

वही दूंगा। पालक को रातभर नींद नहीं आयी। वह यही सोचता रहा कि कहीं शाम्ब मुझसे पूर्व वन्दन के लिए न चला जाए। वह प्रातःकाल वहुत शीघ्र उठा, घोड़े पर बैठकर भगवान् जहां विराजे वहां उनकी सेवा में पहुँचा। भगवान् को वन्दन किया। वह बाहर से भगवान् को नमस्कार कर रहा था पर उसके अन्तर्मानस में लोभ की आग जल रही थी।

शाम्ब कुमार भी जगा, शय्या से उतरकर भगवान् को वहीं से उसने भक्ति भाव-विभोर होकर नमस्कार किया।

पालक श्रीकृष्ण के पास पहुँचा। उसने कहा– पिताजी, आज सबसे प्रथम अरिष्टनेमि को वन्दन करके आया हूँ अतः मुझे दर्पक नामक अश्व मिलना चाहिए।

सूर्योदय होने पर श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन करने के लिए गये। उन्होंने भगवान् से पूछा—भगवन्, आज सर्वप्रथम आपको पालक ने वन्दना की या शाम्ब ने ? भगवान् ने उत्तर दिया—द्रव्य से पालक ने और भाव से शाम्ब ने। उपहार शाम्ब को मिला।[९१]

ढंढण मुनि :

ढंढणकुमार वासुदेव श्रीकृष्ण का पुत्र था। वह भगवान् श्री अरिष्टनेमि की कल्याणी वाणी श्रवण कर भोग से विमुख होकर योग की ओर बढ़ा था। दीक्षा ग्रहण की थी। अल्पसमय में ही वह उग्र तप की साधना करने लगा।

एकसमय श्रीकृष्ण ने भगवान् से पूछा—भगवन् ! आपके अठारह सहस्र श्रमणों में से सबसे अधिक उग्र तपस्वी, सबसे कठोर साधक, और सबसे उत्कृष्ट चारित्रवान् कौन श्रमण है ?

सर्वज्ञ यथार्थवक्ता होते हैं। वह सदा सत्य और स्पष्ट बात कहते हैं। भगवान् ने कहा—'ढंढण मुनि' !

श्रीकृष्ण ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवन् ! अल्पसमय में ही ढंढण मुनि ने ऐसी कौन-सी कठोर व उग्र साधना की है ?

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—कृष्ण ! उसने अलाभ परीषह को जीत लिया है। द्वारवती नगरी में वह भिक्षा के लिए

---

९१. (क) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १०, श्लोक २८७ से २९४
(ख) आवश्यक चूर्णि

निकलता है तो भिक्षा उपलब्ध नहीं होती। अन्तराय कर्म के प्रबलतम उदय से उसे सर्वत्र अलाभ ही अलाभ का सामना करना पड़ता है। कदाचित् लाभ होता भी है तो इसी कारण कि यह राजकुमार है।

ढंढणमुनि ने यह उग्र अभिग्रह ग्रहण कर लिया है कि पर-निमित्त से होने वाले लाभ को मैं ग्रहण नहीं करूंगा। ढंढणमुनि के महान् अभिग्रह को जानकर कृष्ण के मन में उनके दर्शन करने की तीव्र भावना उद्बुद्ध हुई। तब उन्होंने पूछा—भगवन् ! ढंढणमुनि इस समय कहां हैं ?

भगवान् ने कहा—कृष्ण ! यहां से द्वारिका जाते समय जब तुम नगरी में प्रवेश करोगे, तब तुम्हें भिक्षा के लिए घूमते हुए ढंढण मुनि दिखलाई देंगे।

श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन कर गजारूढ़ हो बढ़े जा रहे थे। नगरी में प्रवेश करते ही सामने से ढंढण मुनि आते दिखलाई दिये। हाथी से उतरकर ढंढण मुनि के दर्शन किये, सुख-शान्ति पूछी। हजारों श्रमणों में अद्वितीय उग्र तपस्वी के दर्शन कर वासुदेव सहसा धन्य धन्य कह उठे। मन में आनन्द की ये ऊर्मियां तरंगित हो गई—यादव जाति धन्य है जिसमें एक से एक बढ़कर तपोधन, त्यागी, वैरागी, आत्माएं साधना के क्षितिज पर निर्मल नक्षत्र की तरह चमक रही हैं।

भव्य-भवन के गवाक्ष से श्रीकृष्ण को वन्दन करते हुए एक सेठ ने देखा। मन में सोचा—यह कोई विशिष्ट सन्त है जिसे तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण भी रास्ते में वन्दन कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण वन्दन कर आगे बढ़े। मुनि ने भिक्षा के लिए उसी श्रेष्ठी के घर में प्रवेश किया। सेठ ने भक्ति के साथ मुनि को मोदकों का दान दिया। भिक्षा लेकर मुनि भगवान् के चरणों में पहुँचे। अत्यन्त नम्रता के साथ भगवान् से पूछा—भगवन् ! क्या मेरा अन्तराय कर्म क्षीण हो गया है ? क्या यह भिक्षा मेरी अपनी लब्धि की है ?

भगवान् ने कहा—नहीं ! अभी तुम्हारा अन्तराय कर्म नष्ट नहीं हुआ है। तुम्हारी यह भिक्षा पर-निमित्त की है, स्व-निमित्त की नहीं।

यह भिक्षा श्रीकृष्ण के प्रभाव से तुम्हें मिली है। ढंढण मुनि ने सुना, किन्तु उनके अन्तर्मानस में तनिक मात्र भी ग्लानि नहीं हुई।

ढंढण मुनि विचारने लगे—जो भिक्षा पर के प्रभाव से मिली हो वह कितनी भी सुन्दर क्यों न हो, मेरे लिए अग्राह्य है।

ढंढण मुनि एकान्त स्थान पर पहुँचे। विवेक से मोदकों को डालने (परठने) लगे। विचारधारा शुद्धता की ओर बढ़ी। घनघाती कर्म नष्ट हुए, केवलज्ञान केवलदर्शन की उपलब्धि हुई। तब ये भगवान् की प्रदक्षिणा कर केवली परिषद् में जा बैठे।

निराशा के वातावरण में भी जो आशा के दीप संजोये रहता है, वही तो महान् कलाकार है। ढंढण मुनि वैसे ही कलाकार थे।[९२]

निषधकुमार :

एक समय भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। वासुदेव श्रीकृष्ण ने यह शुभ संवाद सुना, उनके नेत्रों में प्रसन्नता चमक उठी। प्रभु का आगमन, नगर का अहोभाग्य, भगवान् का दर्शन! जीवन की धन्यता है। वासुदेव के आदेश से द्वारिका सजाई गई। दर्शन यात्रा की तैयारी होने लगी। वासुदेव वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर, राजकीय वैभव के साथ प्रभु दर्शन को चल पड़े। निषधकुमार ने सुना, वह भी बड़े ठाठ के साथ भगवान् को वन्दन करने के लिए पहुँचा। भगवान् की वाणी को सुनकर श्रावक के व्रतों को स्वीकार किया।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि के प्रधान शिष्य गणधर वरदत्त अनगार ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! यह निषधकुमार इष्ट है, इष्टरूप है, कान्त है, कान्त रूप है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मनोरम है, सोम है, सोमरूप है, प्रियदर्शन है सुरूप है। हे भदन्त! इस निषधकुमार को मानव सम्बन्धी यह ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई?

भगवान् अरिष्टनेमि ने समाधान करते हुए कहा—उस काल उस समय में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रोहितक नामक नगर था।

---

९२. (क) उत्तराध्ययन अध्ययन, २, गाथा ३० की टीका
(ख) त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १० पृ० २१०-११
(ग) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति, पूर्वभाग

वहाँ का राजा महाबल था और रानी पद्मावती थी। उसका वीरंगत पुत्र था, जिसका बत्तीस कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था। एक बार वहां आचार्य सिद्धार्थ अपने शिष्य परिवार सहित पधारे। उपदेश सुन वह श्रमण बना, ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, उत्कृष्ट तपः साधना की, अन्त में समाधिमरण प्राप्त कर पांचवें ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ। वहां से आयु पूर्ण कर बलदेव की पत्नी रेवती का पुत्र हुआ। यह विराट् सम्पत्ति और ऋद्धि पूर्वकृत शुभ पुण्य का फल है।

वरदत्त ने पूछा—भगवन्! क्या यह निषधकुमार आपके सन्निकट प्रव्रजित होगा?

भगवान् ने कहा—हां, यह अनगारवृत्ति स्वीकार करेगा।

एक बार भगवान् पुनः द्वारिका पधारे। भगवान् की वाणी सुनकर निषधकुमार ने संयम ग्रहण किया। तथारूप स्थविरों के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। तथा बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि विचित्र तपों से आत्मा को भावित करते हुए, पूरे नौ वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया। अन्त में बयालीस भक्तों का अनशन से छेदन कर, पाप स्थानकों की आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक कालगत हुआ।

निषधकुमार को कालगत जानकर वरदत्त ने भगवान् से प्रश्न किया—भगवन्! आपका शिष्य निषध अनगार जो प्रकृति से भद्र और विनयी था, काल प्राप्त कर कहाँ गया है? कहां उत्पन्न हुआ है?

भगवान् ने कहा—वह सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। उसने तेतीस सागरोपम की स्थिति पायी है।[९३]

बलदेव को प्रतिबोध :

बलदेव श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता थे। उनका श्रीकृष्ण पर अत्यधिक अनुराग था। मोह के प्राबल्य के कारण वे एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे। श्रीकृष्ण को प्यास लगी। बलदेव पानी लेकर लौटते हैं। श्रीकृष्ण को चिरनिद्रा अधीन देखकर मूर्च्छित हो जमीन पर गिर पड़ते हैं। होश आने पर बालक की तरह करुण-

---

९३. निरियावलिआ—वर्ग ५-१

क्रन्दन करने लगते हैं। आंखों से आंसुओं की धारा प्रवाहित हो रही है! भाई के शरीर को झकझोरते हुए कहते हैं—भाई उठो! पानी पीलो! मुझे पानी लाने में विलम्ब हो गया—और तुम रूठ गये! रूठो नहीं, भाई पर क्या कभी इतने नाराज होते हैं। जरा आंख खोलो। मस्कराओ!" वलदेव ने अनेक प्रयास किये, पर सफलता कैसे मिलती?

वलदेव ने श्रीकृष्ण के मृत कलेवर को उठाया। उसे कंधे पर लेकर वे एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमने लगे। स्वयं भी खाना-पीना भूल गये। छहमाह का समय पूर्ण हो गया।

वलदेव के एक सारथी का नाम सिद्धार्थ था, जो संयम-पालन कर देवपर्याय में उत्पन्न हुआ था। उसने अवधिज्ञान से वलदेव की यह अवस्था देखी। प्रतिवोध देने के लिए वह वहां आया। उसने देव-शक्ति से पत्थर के एक रथ का निर्माण किया। पहाड़ की चोटी से वह नीचे उतर रहा था, धड़ाम से विषम स्थान में गिरा और टूट कर चकनाचूर हो गया। सारथी पुनः उसे ठीक करने का प्रयास करने लगा।

उधर से वलदेव आये। उन्होंने देखा, सारथी मूखता कर रहा है। वे वोले—अरे मूर्ख! यह पत्थर का रथ टुकड़ा-टुकड़ा हो चुका है, क्या पुनः यह सँध (जुड़) सकेगा?

प्रत्युत्तर में देव ने कहा—हजारों व्यक्तियों को जिसने युद्ध में मार दिया, पर स्वयं न मरा, किन्तु विना युद्ध किये ही जो मर गया है वह यदि पुनः जीवित हो सकता हो तो फिर मेरा रथ क्यों नहीं तैयार हो सकता?

वलदेव देव की वात अनसुनी कर आगे वढ़ गये। देव ने एक किसान का रूप धारण किया। पत्थर की चट्टान पर कमल पैदा करने का वह उपक्रम कर रहा था। वलदेव ने कहा—अरे मूर्ख! क्या कभी पत्थर की चट्टान पर कमल पैदा होते हैं?

देव—यदि तुम्हारा मृत भाई जीवित हो सकता है तो पत्थर पर कमल क्यों नहीं पैदा हो सकते?

मुंह मचकाकर वलदेव आगे चले। देव भी आगे वढ़ा। वह एक जले हुए ठूंठ को पानी पिलाने लगा।

बलदेव ने कहा—अरे मूर्ख, क्या पानी पिलाने से जला हुआ ठूंठ हरा-भरा होगा ?

देव—यदि तुम्हारे कंधे पर रखा हुआ यह मुर्दा जीवित हो सकता है तो फिर इस ठूंठ में फल कैसे नहीं लगेंगे ?

बलदेव ने बिना सुने ही कदम आगे बढ़ा दिये। देव ने अब ग्वाले का रूप बनाया और एक मरी हुई गाय के मुंह में वह घास देने लगा ?

बलदेव ने कहा—अरे मूर्ख ! क्या मरी हुई गाय भी घास खाती है ?

देव—यदि तुम्हारा मरा हुआ भाई जीवित हो सकता है तो फिर मृत गाय घास क्यों नहीं खायेगी ?

बलदेव ने प्रत्येक के मुंह से अपनी भाई के मरने की बात सुनी। वे गहराई से सोचने लगे—क्या वस्तुतः मेरा भाई मर गया है ? क्या ये सभी लोग सत्य कहते हैं ?

देव ने देखा—बलदेव चिन्तन के सागर में गहराई से गोते लगा रहे हैं। उसी समय उसने सिद्धार्थ सारथी का रूप बनाया और बलदेव से कहा—बलदेव ! मैं तुम्हारा सारथी सिद्धार्थ हूँ। मैंने भगवान् अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की थी, और देव हुआ हूँ। आपने एक बार मुझसे कहा था कि तू यदि देव बने तो विपत्ति में मेरी सहायता करना। अतः मैं आपके पास आया हूँ। भगवान् अरिष्टनेमि ने जो भविष्य कथन किया था वैसे ही जरद्कुमार के हाथ से वासुदेव श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई है। श्रीकृष्ण ने अपना कौस्तुभ रत्न देकर तुम्हारे आने के पूर्व ही पाण्डवों के पास भेजा। भाई के मोह से तुम इन्हें उठाकर छहमाह से घूम रहे हो ! देखो न, अब इनके शरीर के वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श सभी बदल गये हैं।

बलदेव की विलुप्त संज्ञा जागृत हुई। उन्होंने उसी समय श्रीकृष्ण का दाहसंस्कार किया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् अरिष्टनेमि ने अपने एक विद्याधर मुनि को वहां भेजा। मुनि ने बलदेव को उपदेश दिया। बलदेव ने मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बलदेव मुनि अब उत्कृष्ट तप की आराधना करने लगे।

मासखमण का पारणा था ! बलदेव मुनि पारणा के लिए, नगर में प्रवेश कर रहे थे। उनके दिव्य और भव्य रूप को निहार कर एक

महिला भान भूल गई। बलदेव मुनि ने देखा—कुए पर खड़ी महिला उनकी ओर टकटकी लगाकर देख रही है, घड़े के गले में डालने की रस्सी बालक के गले में डाल रही है। अनर्थ! महान् अनर्थ! मुनि ने महिला को सावधान किया। बालक की रक्षा कर मुनि उलटे पैरों जंगल में लौट गये। उन्होंने सोचा—ऐसे रूप को धिक्कार है। आज से मैं किसी नगर या गांव में प्रवेश नहीं करूंगा। जंगल में जो व्यक्ति काष्ठ आदि लेने आवेंगे, उनसे जो भी निर्दोष भिक्षा मिल जायेगी वही ग्रहण करूंगा।

भयानक निर्जन जंगल में ऐसे दिव्य भव्य तेजस्वी तपस्वी सन्त को देखकर सभी आगन्तुक चकित थे! यह कौन है? यहां क्यों तप कर रहा है? क्या किसी मंत्र-तंत्र की साधना कर रहा है? लोगों ने राजा को सूचना दी। राजा ससैन्य वहां पहुँचा, तपस्वी को मारने के लिए। सिद्धार्थ देव ने गंभीर गर्जना करते हुए सिंह का रूप बनाया; राजा भाग गया।

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः" की उक्ति के अनुसार जंगल के प्राणी निर्भय होकर बलदेव मुनि के आस-पास घूमने लगे। एक मृग तो जातिस्मरण ज्ञान से अपने पूर्व भवों को स्मरण कर उनका परम भक्त बन गया। वह जंगल में इधर-उधर घूमता और देखता कि कौन काष्ठ लेने के लिए जंगल में आया है। उन्हें देखकर वह पुनः बलदेव मुनि के पास आता, उनको नमस्कार कर अपने हृदय के भाव बताता कि आपको भिक्षा देने वाला इधर है। एक दिन मृग के संकेत से मुनि भिक्षा के लिए पहुँचे। मासखमण का पारणा था। मुनि को देखकर रथवाला अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह मुनि के चरणों में गिर पड़ा। उदार भावना से उसने मुनि को आहार दान दिया। मुनि भिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। मृग सोच रहा है—यह सारथी कितना भाग्यशाली है जो मुनि को दान दे रहा है। उसी समय तूफान आया और वह वृक्ष गिर पड़ा। बलदेव मुनि, सारथी तथा मृग तीनों ने शुभ ध्यान में आयु पूर्ण किया। ब्रह्मदेव लोक के पद्मोत्तर नामक विमान में वे तीनों उत्पन्न हुए।[९४]

---

९४. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित पर्व ८, सर्ग १२

(ख) पाण्डवचरित्र सर्ग १८, ५६५-५७०, मलधारी देवप्रभ

शिष्यों के साथ, व आर्या सुव्रता को अनेक श्रमणियों के साथ पाण्डु मथुरा प्रेषित किया।[१०१] धर्मघोष स्थविर चार ज्ञान के धारक एवं प्रबल प्रतिभा के धनी थे। धर्मघोष के उपदेश को सुनकर, ज्ञातासूत्र के अनुसार, अपने पुत्र पण्डुसेन को राज्य देकर[१०२] और त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित्र के अनुसार जराकुमार को राज्य देकर[१०३] पाण्डवों ने धर्मघोष अनगार के पास और द्रौपदी ने आर्या सुव्रता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।[१०४] पाण्डवों ने बारह अंगों का व द्रौपदी ने ग्यारह अंगों का गंभीर अध्ययन किया, और उत्कृष्ट तपजप की साधना करने लगे।[१०५]

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि सौराष्ट्र जनपद में विचरण कर रहे थे।[१०६] युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव मुनियों के मन में भगवान् के दर्शन करने की तीव्र भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने धर्मघोष स्थविर की आज्ञा लेकर सौराष्ट्र जन पद की ओर विहार किया।[१०७]

---

९९. वहीं० ६३।६१-६८, पृ० ७७६-७७७

१००. पाण्डवपुराण, पर्व २२, श्लोक ८७-९९, पृ० ४६८-४६९

१०१. ज्ञातासूत्र में भगवान के द्वारा प्रेषित करने का उल्लेख नहीं है, पर त्रिषष्टि० आदि में है—

तान् प्रविव्रजिषूञ्ज्ञात्वा श्रीनेमिः प्राहिणोन्मुनिम्।
धर्मघोषं चतुर्ज्ञानं मुनिपञ्चशतीयुतम् ॥

—त्रिषष्टि० ८।१२।९२

१०२. तए णं ते पंच-पंडवा पंडुसेणस्स अभिसेओ जाव राया जाए, जाव रज्जं पासाहेमाणे विहरइ।

—ज्ञातासूत्र १।१६

१०३. जारेयं न्यस्य ते राज्ये द्रौपद्यादिसमन्विता।

—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२, श्लोक ९३

१०४. ज्ञाता सूत्र १।१६, सूत्र १३३-१३४, सुत्तागमे

१०५. वहीं० १।१६।१३३-१३४

१०६. अरहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए जाव विहरइ·······

—ज्ञातासूत्र १।१६।१३५

१०७. वहीं० १।१६।१३५

पर्वत पर गये, दो महीने की संलेषणा से आत्मा को कृश कर, श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।[११२]

श्वेताम्बर परम्परा में :

श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य मल्लधारी देवप्रभसूरि ने पाण्डव-चरित्र में[११३], व आचार्य हेमचन्द्र कृत - त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[११४] में, ज्ञातासूत्र के कथानक से एक बात अधिक है। वह यह कि पांचों पाण्डव मुनि जब हस्तीकल्प नगर में पहुँचते हैं तब वे परस्पर विचार करते हैं कि यहां से रैवतगिरि केवल बारह योजन दूर हैं जहां भगवान् अरिष्टनेमि विराज रहे हैं। मासखमण का पारणा आज न कर भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन करने के पश्चात् ही पारणा करेंगे। किन्तु भगवान् का दर्शन किये विना पारणा नहीं करेंगे। इस प्रकार प्रतिज्ञा ग्रहण की ही थी कि लोगों के मुंह से सुना कि रैवतगिरि पर भगवान् मोक्ष पधार गये हैं। पाण्डवचरित्र के अनुसार तो एक चारणलब्धि धारी मुनिराज वहां पर पधारते हैं और भगवान् के मोक्षगमन के समाचार सुनाते हैं। समाचार सुनकर पाँचों मुनियों को अत्यधिक दुःख होता है कि हम भगवान् के दर्शन नहीं कर सके। वे सिद्धाचल पर्वत (पांडव चरित्र में विमलगिरि) पर गये, अनशन कर केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर मुक्त हुए।

सती द्रौपदी भी अन्त समय में आयुपूर्ण कर पाँचवें ब्रह्मदेव लोक में उत्पन्न हुई।[११५]

---

१११. ज्ञातासूत्र १।१६

११२. ज्ञातासूत्र १।१६।१३५

११३ पाण्डवचरित्र, सर्ग १८, पृ० ५८०-५८१, गुजराती अनुवाद भीमसिंह माणेक, मुम्बई, सन् १८७८

११४. त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२

११५. (क) तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ २ त्ता बहूणि वासाणि मासियाए संलेहणाए आलोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववन्ना।

—ज्ञातासूत्र १।१६, १३६

दिगम्बर परम्परा में :

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में पाण्डवों के सम्बन्ध में पृथक् रूप से उल्लेख मिलता है :—

जरत्कुमार के द्वारा द्वारिकादहन, कृष्णमरण, बलभद्र मुनि का दीक्षाग्रहण प्रभृति समाचार सुनकर मथुरा से पाण्डव भगवान् अरिष्टनेमि के पास आते हैं।[११६] उस समय भगवान् पल्लव देश में विहार कर रहे थे।[११७] पाण्डवों के मन में कृष्णमरण और द्वारिका नगरी के विनाश से वैराग्य भावना उत्पन्न हो गई थी। उन्हें संसार के नश्वर स्वरूप का ज्ञान हो गया था। उन्होंने भगवान् को वन्दन कर पूर्व भव पूछे।[११८] भगवान् ने विस्तार के साथ उनके पूर्वभवों का निरुपण किया। पूर्वभवों को सुनकर वैराग्य में और अधिक अभिवृद्धि हुई। भगवान् के पास उन्होंने दीक्षा ग्रहण की।[११९] कुन्ती, द्रौपदी, तथा सुभद्रा ने भी राजमती आर्या से पास संयम लिया।[१२०] सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र व तप का आचरण करने

(ख) त्रिषष्टि० ८।१२

(ग) पाण्डवचरित्र सर्ग १८, पृ० ५८१

११६. यत्सर्वं पाण्डवाः श्रुत्वा तदायन्मधुराधिपाः।
स्वामिबन्धुवियोगेन निर्विद्य त्यक्तराज्यकाः॥
महाप्रस्थानकर्माणः प्राप्य नेमिजिनेश्वरम्।
तत्कालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भाक्तिकाः॥

—उत्तरपुराण ७२।२२४-२२५

११७. अथ ते पाण्डवाश्चण्डसंसारभयभीरवः।
प्राप्य पल्लवदेशेषु विहरन्तं जिनेश्वरम्॥

—हरिवंशपुराण ६४।१

(ख) पाण्डवपुराण २३।३३ पृ० ४७३

११८. (क) हरिवंशपुराण ६४।३

(ख) उत्तरपुराण ७२।२२६

(ग) पाण्डवपुराण, पर्व २३, श्लोक ७३-७५, पृ० ४७७

—शुभचन्द्राचार्य विरचित, जीवराज गौतमचन्द दोशी, सोलापुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९५४

११९. हरिवंशपुराण ६४।१४३

में अत्यन्त प्रज्वलित कर उनके मस्तक आदि स्थानों में पहनाये। पर पाण्डव मुनियों ने कर्मों को क्षय करने की भावना से उस दाह के भयंकर उपसर्ग को हिम के समान शीतल समझा।

भीम, अर्जुन, और युधिष्ठिर ये तीन मुनिराज तो शुक्ल ध्यान से युक्त हो आठों कर्मों को क्षय कर मोक्ष गये। परन्तु नकुल और सहदेव अपने ज्येष्ठ भ्राताओं को जलते हुए देखकर कुछ आकुलचित्त हुए, एतदर्थ सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुए।[१२७]

महाभारत में :

महाभारत में पाण्डवों के अन्तिम जीवन का प्रसंग अन्य रूप से चित्रित किया गया है। वह इस प्रकार है—

यादवों के सर्वनाश और श्रीकृष्ण के निर्वाण के शोकजनक समाचार जब हस्तिनापुर पहुँचे तो पाण्डवों के मन में विराग छा गया, उनमें जीवित रहने की इच्छा नहीं रही। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी पर बिठाकर पाँचों पाण्डव द्रौपदी को लेकर तीर्थयात्रा के लिए निकले। वे अन्त में हिमालय की तलहटी में पहुँचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था। सभी ने पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया, चढ़ते-चढ़ते मार्ग में द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने क्रमशः शरीर त्याग दिया किन्तु सत्य-ब्रह्म का ज्ञान रखने

---

१२६. ज्ञात्वा भगवतः सिद्धिं पञ्च पाण्डवसाधवः।
शत्रुञ्जयगिरौ धीराः प्रतिमायोगिनः स्थिताः॥
दुर्योधनान्वयस्तत्र स्थितो क्षुयवरोधनः।
श्रुत्वागत्याकरोद्वैराद्रुपसर्गं सुदुस्सहम्॥
तप्तायोमयमूर्तीनि मुकुटानि ज्वलन्त्यलम्।
कटकैः कटिसूत्रादि तन्मूर्धादिष्वयोजयत्॥
रौद्रं दाहोपसर्गं ते मेनिरे हिमशीतलम्।
—हरिवंशपुराण ६५।१८-२१

१२७. शुक्लध्यानसमाविष्टा भीमार्जुनयुधिष्ठिराः।
कृत्वाष्टविधकर्मान्तं मोक्षं जग्मुस्त्रयोऽक्षयम्॥
नकुलः सहदेवश्च ज्येष्ठदाहं निरीक्ष्य तौ।
अनाकुलितचेतस्कौ जातौ सर्वार्थसिद्धिजौ॥
—हरिवंशपुराण ६५।२२-२३

वाले युधिष्ठिर किञ्चित् मात्र भी विचलित नहीं हुए। वे ऊपर चढ़ते ही गये। उनके पीछे-पीछे वह कुत्ता भी चलता रहा। बहुत दूर जाने पर देवराज इन्द्र दिव्य रथ लेकर युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और बोले—

युधिष्ठिर! द्रौपदी और तुम्हारे भाई स्वर्ग पहुँच चुके हैं। अकेले तुम्हीं रह गये हो। तुम अपने शरीर के साथ ही इस रथ पर सवार होकर स्वर्ग चलो, तुम्हें ले जाने के लिए मैं आया हूँ।

युधिष्ठिर रथ पर आरूढ़ होने लगे तब वह कुत्ता भी उनके साथ रथ पर चढ़ने लगा। इन्द्र ने उसे रोका और कहा—कुत्ते के लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा—यदि कुत्ते को स्वर्ग में रहने का स्थान नहीं है तो मुझे भी वहाँ जाने की इच्छा नहीं है।

इन्द्र के बहुत समझाने पर भी युधिष्ठिर कुत्ते को छोड़कर अकेले स्वर्ग जाने को तैयार न हुए।

धर्मदेव ने अपने पुत्र की परीक्षा लेने के लिए ही कुत्ते का रूप बनाया था। युधिष्ठिर की दृढ़ता देखकर वे प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

युधिष्ठिर स्वर्ग पहुंचे, स्वर्ग में भी उनकी परीक्षा ली गई। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्होंने मानवीय शरीर त्याग किया और अपने स्वजनों के साथ वहां आनन्दपूर्वक रहने लगे।[१२८]

जैन और वैदिक दोनों ही परम्परा में पाण्डवों के प्रसंग पृथक् रूप से आये हैं। जिज्ञासुओं के अन्तर्मानस में यह प्रश्न उद्बुद्ध हो सकता है कि पाण्डव जैन थे, या वैदिक परम्परा के अनुयायी थे? यही प्रश्न एक बार महाराजा कुमारपाल की राजसभा में उपस्थित हुआ था। तब आचार्य हेमचन्द्र ने एक आकाशवाणी का प्रमाण देते हुए कहा—सैकड़ों भीष्म हो चुके हैं, तीन सौ पाण्डव हुए हैं, हजारों द्रोणाचार्य हो चुके हैं और कर्ण नाम वालों की तो संख्या ही नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल से कहा—इनमें से कोई जैन पाण्डव शत्रुञ्जय पर्वत पर आये होंगे और कोई वैदिक परम्परा के मानने वाले पाण्डव हिमालय पर गये होंगे![१२९]

---

१२८. महाभारत कथा—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी पृ० ४७४-७५

हम यहाँ इस चर्चा में जाना नहीं चाहते किन्तु इतना स्पष्ट है कि महाभारत की कथा की अपेक्षा जैन कथा अधिक वास्तविकता लिए हुए प्रतीत होती है।

भगवान् का विहार :

भगवान् अरिष्टनेमि के विहार का वर्णन आगमसाहित्य में विस्तार से नहीं मिलता है। अन्तकृद्दशांग में उनका मुख्य रूप से द्वारिका में पधारने का उल्लेख है। वे अनेक वार द्वारिका पधारे हैं।[१३०] एक बार वे भद्दिलपुर भी पधारे थे, ऐसा स्पष्ट वर्णन अनेक स्थलों पर आया है।[१३१] भद्दिलपुर मलय जनपद की राजधानी थी जिसकी पहचान हजारीवाग जिले के भदिया नामक गांव से की जाती है।[१३२]

आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि ने अनार्य देशों में भी विहार किया था।[१३३] जिस समय द्वारिका का दहन हुआ उस समय भगवान् पल्हव नामक अनार्य देश में विचरण कर रहे थे।[१३४] यह अन्वेषणीय है कि यह पल्हव भारत की सीमा में था या भारत की सीमा से वाहर था? प्राचीन पार्थीया (वर्तमान ईरान) के एक भाग को पल्हव या पण्हव माना जाता है। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि श्रीकृष्ण की जिज्ञासा पर भगवान् अरिष्टनेमि ने द्वारवती के दहन की बात कही। उस समय भगवान् द्वारवती में

---

१२९. (क) प्रभावक चरित्र
(ख) भगवान महावीर नी धर्मकथाओ पृ० २४५

१३०. अन्तकृतदशा

१३१. (क) अन्तकृतदशा वर्ग ३, अ० ८
(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र

१३२. जैनआगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४७७

१३३. (क) मगहारायगिहाइसु मुणओ खेत्तारिएसु विहरिंसु।
उसभोनेमि पासो, वीरो य अणारिएसुं पि॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० २५६
(ख) विशेषावश्यकभाष्य गा० १६६६

१३४. उत्तराध्ययन सुखवोधा वृत्ति पत्र ३९

थे। उसके पश्चात् उन्होंने अन्य जनपदों में विहार किया। द्वारवती दहन से पूर्व वे पुनः रैवतपर्वत पर आये थे।[१३५] जब द्वारवती का दहन हुआ उस समय वे पल्हव देश में थे। इस मध्यावधि में बारह वर्ष का काल बीता है।[१३६] संभव है इस बीच वे ईरान भी गये हों क्योंकि द्वारवती के दहन के पश्चात् श्रीकृष्ण और बलभद्र पाण्डव मथुरा (वर्तमान मदुरा) में जा रहे थे। वे द्वारवती से पूर्व दिशा में चले, सौराष्ट्र को पारकर हस्तिकल्पपुर पहुंचे। वहां से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और कौसुम्बारण्य में गये।[१३७] इस यात्रा में वे भगवान् अरिष्टनेमि के पास गये हों ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। यह आश्चर्य की बात है कि द्वारवती दहन के बाद वे भगवान् के पास नहीं गये। इसलिए यह सहज ही कल्पना होती है कि भगवान् उस समय सौराष्ट्र में नहीं होंगे। यह भी हो सकता है कि वे उनके जाने के मार्ग से कहीं दूर हों, जब तक इस सम्बन्ध में विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक अन्तिम निर्णय नहीं लिया जा सकता।[१३८]

आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार उनका विहारक्षेत्र संक्षेप में इस प्रकार रहा है—भगवान् अरिष्टनेमि मध्यदेश आदि में विहार कर उत्तर दिशा में राजपुर आदि नगरों में पधारे। वहां से 'ह्रीमान' गिरि पर पधारे। वहां से अनेक म्लेच्छ देशों में पधारे, वहां के अनेक राजाओं को और मंत्रियों को प्रतिबोध दिया। वहाँ से पुनः ह्रीमान गिरि पर आये। वहाँ से वे किरात देश में गये। वहाँ से ह्रीमान पर्वत से उतरकर दक्षिणापथ देश में आये। वहाँ से निर्वाण समय सन्निकट जानकर रैवतगिरि पर पधारे।[१३९]

---

१३५. एत्थंतरे य भगवं पुणरवि अरिट्ठनेमि सामी विहरंतो आगओ, रेवयम्मि समोसढो।

१३६. (क) चउप्पन्नमहापुरिस चरियं

(ख) भव-भावना

१३७. पत्थिया ते पाएहि चेव पुव्वदिसिमंगीकाऊण......सुरट्ठादेसं च समुत्तरिऊण......पत्ता हत्थिकप्पपुर-वरस्सवाहि......दक्खिणाभिमुहं गंतुं पयत्ता। कोसुंबारण नाम वणं।

—उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र ४०

मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र ने भी भव-भावना में विहार का वर्णन निम्न प्रकार किया है।[१४०]

आचार्य जिनसेन ने लिखा है कि भगवान् अरिष्टनेमि ने भव्य जीवों को सम्बोधन देने हेतु जगत् के वैभव के लिए पृथ्वी पर विहार किया। भगवान् ने सुराष्ट्र, मत्स्य, लाट, विशाल, शूरसेन, पटच्चर, कुरुजांगल, पाञ्चाल, कुशाग्र, मगध, अञ्जन, अङ्ग, वंग, तथा कलिंग आदि नाना देशों में विहार करते हुए क्षत्रिय आदि वर्णों को जैन धर्म में दीक्षित किया।[१४१]

---

१३८. अतीत का अनावरण पृ० १४६

१३९. इतश्च मध्यदेशादौ विहृत्य परमेश्वरः।
उदीच्यां राजपुरादिपुरेपु व्यहरत् प्रभुः॥
शैले ह्रीमति गत्वा च म्लेच्छदेशेष्वनेकशः।
विहरन् पार्थिवामात्य प्रभृतीन्न प्रत्यवोधयत्॥
आर्यानार्येषु विहृत्य भूयो ह्रीमत्यगाद्विभुः।
ततः किरातदेशेषु व्याहार्षीद्विश्वमोहहृत्॥
उत्तीर्य ह्रीमतः शैलाद्विजह्रे दक्षिणापथे।
भव्यारविन्दखंडानि बोधयन्नंशुमानिव॥
आरभ्य केवलादेवं भर्तुर्विहरतोऽभवन्।
निर्वाणसमयं ज्ञात्वा ययौ रैवतके प्रभुः॥
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग १२, श्लोक ९६ से १०५

१४०. भयवं पि मज्झ देसे नाणाविहजणवएसु गंतूण।
विहरइ उत्तरदेसे रायपुराई नयरेसु॥
हिरिमंतनगं गंतुं विहरइ बहुएसु मेच्छदेसेसु।
नरनाहअमच्चाइं ठावंतो धम्ममग्गम्मि॥
आरियमणारिएसुं इय विहरेउण बहुयदेसेसु।
हिरिमंतमुवेइ पुणो गंगाजलखालियसिलोहं॥
विहरइ किरायदेसे हिरिमंतनगाउ तो समुत्तरिउं।
विहरइ दाहिणदेसे बोहेंतो भव्वकमलाइं॥
—भव-भावना, गा० ४०१० से ४०१३ पृ० २६४-६५

भद्रिलपुर नामक नगर मलय में स्थित था, जहाँ के छह भ्राताओं ने दीक्षा ली थी।[१४२]

परिनिर्वाण :

भगवान् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष पर्यन्त कुमार अवस्था में रहे। चौपन-रात्रि-दिवस छद्मस्थ पर्याय में रहे। सात सौ वर्षों में चौपन दिन कम केवली अवस्था में रहे। सात सौ वर्षों तक श्रमण जीवन में रहे।[१४३]

ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थमास, आषाढ़ मास की शुक्ला अष्टमी के दिन, रैवतक शैल-शिखर पर अन्य पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ, जल रहित मासिक तप कर चित्रा नक्षत्र के योग में, मध्य-रात्रि में, निषद्या में अवस्थित होकर आयु कर्म, वेदनीय कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म—इन चारों कर्मों को नष्टकर वे कालगत हुए, सर्वदुःखों से मुक्त हुए।[१४४]

---

१४१. विभूत्योद्धतया भूत्यै जगतां-जगतां विभुः।
विजहार भुवं भव्यान् बोधयन् बोधदः क्रमात्॥
सुराष्ट्रमत्स्यलाटोरुसूरसेनपटच्चरान्।
कुरुजाङ्गलपाञ्चालकुशाग्रमगधाञ्जरान्॥
अंगवङ्गकलिङ्गादीन्नानाजनपदान् जिनः।
विहरन् जिनधर्मस्थांश्चक्रे क्षत्रियपूर्वकाम्॥

—हरिवंशपुराण ५९।१०९-१११

१४२. ततो मलयनामानं देशमागत्य स क्रमात्।
सहस्राम्रवने तस्थौ पुरे भद्रिलपूर्वके॥

—हरिवंशपुराण ५९।११२

१४३. कौमारे त्रिवर्षशती छद्मकेवलयोः पुनः।
सप्तवर्षशतीत्यब्दसहस्रायुः शिवासुतः॥

—त्रिषष्टि० ८।१२।११५, पृ० १९३

१४४. (क) कल्पसूत्र सूत्र १६८
(ख) ततः प्रपेदेऽनशनं पादपोपगमं प्रभुः।
मासिकं सह साधूनां षट्त्रिंशैः पंचभिः शतैः॥

शिष्य परिवार :

कल्पसूत्र[१४५] के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि का संघ समुदाय इस प्रकार था :—

अर्हत् अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर थे।[१४६] उनके गण समुदाय में वरदत्त आदि १८००० श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण .म्पदा थी। आर्यायक्षिणी आदि ४०००० श्रमणियों की उत्कृष्ट श्रमणी सम्पदा थी। उनके नन्द आदि १०००६९ श्रमणोपासक और महासुव्रता आदि ३०००३६ श्रमणोपासिकाएं थीं।

अर्हत् अरिष्टनेमि के समुदाय में जिन नहीं, पर जिन समान तथा सर्वअक्षरों के संयोगों को अच्छी तरह जानने वाले यावत् ४१४ पूर्वधारियों की सम्पदा थी। इसी प्रकार १५०० अवधिज्ञानी १५०० केवली, १५०० वैक्रिय लब्धिधारी, १००० विपुलमती मनः पर्यवज्ञानी ८०० वादी, और १६०० अनुत्तरौपपातिकों की सम्पदा थी। उनके श्रमण समुदाय से १५०० श्रमण सिद्ध हुए और ३००० श्रमणियां सिद्ध हुईं।

हरिवंशपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थों में उनके संघ समुदाय का वर्णन इस प्रकार है—

भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण में श्रुतज्ञानरूपी समुद्र के भीतरी भाग को देखने वाले वरदत्त आदि ग्यारह गणधर सुशोभित थे।[१४७] भगवान् के समवसरण में सज्जनों के माननीय चार सौ

त्वाष्ट्रे शुचिसिताष्टम्यां शैलेशीध्यानमास्थितः।
सायं तैर्मुनिभिः सार्धं नेमिर्निर्वाणमासदत्॥

—त्रिषष्टि० ८।१२।१०८-१०९

१४५. कल्पसूत्र सूत्र १३६, पृ० २३६-२३७

— देवेन्द्रमुनि सम्पादित

१४६. मलधारी आचार्य देवप्रभसूरि रचित पाण्डव चरित्र सर्ग, ६ पृ० ५३५ में ग्यारह गणधर का उल्लेख है। विशेष स्पष्टीकरण गणधर कितने इस प्रकरण में किया गया है।

१४७. एकादश गणाधीशा वरदत्तादयस्तदा।
श्रुतज्ञानसमुद्रान्तर्दर्शिनोऽत्र विरेजिरे॥

—हरिवंशपुराण ५९।१२०।७०५

पूर्वधारी, ग्यारह हजार आठ सौ शिक्षक (उपाध्याय) पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, नौ सौ विपुलमति मनः पर्यव-ज्ञानी, आठ सौ वादी, और ग्यारह सौ वैक्रिय ऋद्धि के धारक मुनिराज थे।[१४८]

राजीमती को साथ लेकर चालीस हजार आर्यिकाएं एक लाख उनहत्तर हजार श्रावक, तथा सम्यग्दर्शन से शुद्ध श्रावक के व्रत धारण करने वाली तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाएं वहाँ विद्यमान थी।[१४९]

●●

---

१४८. चतुःशतानि तत्रान्ये मान्याः पूर्वधराः सताम्।
एकादशसहस्राष्टशतसंख्यास्तु शिक्षकाः॥
शतान्यवधिनेत्रास्तु केवलज्ञानिनोऽपि च।
ते पंचदशसंख्यानाः प्रत्येकमुपवर्णिताः॥
मत्या विपुलया युक्ता शतानि नव संख्यया।
वादिनोऽष्टौ शतानि स्युरेकादश तु वैक्रिया॥

—वहीं० ५९।१२८-३० पृ० ७१५

१४९. चत्वारिंशत्सहस्राणि, राजीमत्या सहार्यिका।
लक्षैकैकोनसप्तत्या सहस्रैः श्रावका स्मृताः।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि लक्षाणां त्रितयं तथा।
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः श्राविकाः श्रावकव्रताः॥

—हरिवंशपुराण ५९।१३१-१३२, पृ० ७०५

अर्हत् अरिष्टनेमि के शिष्य परिवार की तालिका

	कल्पसूत्र (भद्रबाहु)	हरिवंशपुराण (जिनसेन)
गण	१८	११
गणधर	१८	११
श्रमण	१८०००	
श्रमणी	४००००	४००००
श्रमणोपासक	१०००६९	१०००६९
श्रमणोपासिका	३०००३६	३०००३६
केवली	१५००	१५००
मनः पर्यवज्ञानी	१०००	९००
पूर्वधर	४१४	४००
अवधिज्ञानी	१५००	१५००
वैक्रियलब्धि	१५००	११००
वादी	८००	८००
अनुत्तरौपपातिक	१६००	
सिद्ध श्रमण	१५००	
,, श्रमणी	३०००	
उपाध्याय		११८००

♣

द्वितीय खण्ड
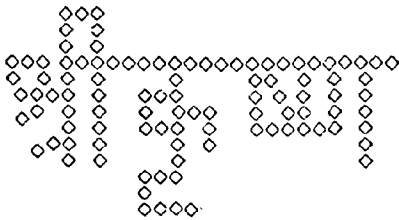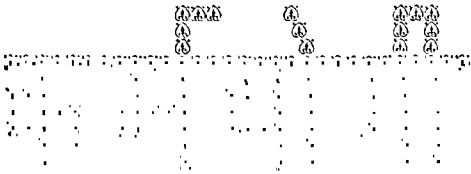
भारतीय साहित्य में कर्मयोगी श्रीकृष्ण

- जैन कृष्ण साहित्य
- संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य
- बौद्ध साहित्य में श्रीकृष्ण
- वैदिक साहित्य में श्रीकृष्ण
- यूनानी लेखकों के उल्लेख
- उपसंहार

व्यवस्थित रूप से एक स्थान पर एकत्रित करने से कृष्ण का तेजस्वी रूप हमारे सामने आता है।

अन्तकृत्दशाङ्ग[२], समवायाङ्ग[३] णायाधम्मकहाओ[४] स्थानाङ्ग[५] निरियावलिका[६] प्रश्नव्याकरण[७] उत्तराध्ययन[८], आदि में उनके महान् व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। वे अनेक गुण सम्पन्न और सदाचार निष्ठ थे, अत्यन्त ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, और यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें ओघवली, अतिबली, महाबली अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है। उनके शरीर में अपार वल था। वे महारत्न वज्र को भी चुटकी से पीस डालते थे।

मनोविज्ञान का नियम है कि बाह्य व्यक्तित्व ही अन्तरंग व्यक्तित्व का प्रथम परिचायक होता है। जिसके चेहरे पर ओज हो, प्रभाव चमक रहा हो, आकृति में सौन्दर्य छलक रहा हो, आंखों में मन्दस्मित, शारीरिक गठन की सुभव्यता व सुन्दरता हो, उसका प्रथम दर्शन ही व्यक्ति को प्रभावित कर देता है। और जहां बाह्य-सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य भी हो, तो वहां तो सोने में सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। यही कारण है कि जितने भी विशिष्ट पुरुष हुए हैं उनका बाह्य व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक और

---

२. वर्ग १, अध्ययन १ में द्वारिका के वैभव व कृष्ण वासुदेव का वर्णन, वर्ग ३, अ० ८ वें में कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का वर्णन, वर्ग ५ में द्वारिका का विनाश और कृष्ण के देह त्याग का उल्लेख है।

३. श्लाघनीय पुरुषों की पंक्ति में श्रीकृष्ण का उल्लेख तथा उनके प्रतिद्वन्दी जरासंध के वध का वर्णन है।

४. प्रथम श्रुतस्कंध के अध्ययन ५ वें में थावच्चा पुत्र की दीक्षा और श्रीकृष्ण का दल-बल सहित रैवतक पर्वत पर अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जाना। अ० १६ वें में अमरकंका जाने का वर्णन।

५. अ० ८ वें कृष्ण की आठ अग्रमहिषियों का वर्णन, उनके नाम।

६. प्रथम अध्ययन में द्वारिका नगरी के राजा कृष्ण वासुदेव का रैवतक पर्वत पर अर्हत् अरिष्टनेमि के सभा में जाने का वर्णन।

७. चतुर्थ आश्रव द्वार में श्री कृष्ण द्वारा दो अग्रमहिषियों रुक्मणी और पद्मावती के लिए किये गए युद्धों का वर्णन।

८. अध्ययन २२ में।

प्रभावशाली रहा है। जैन दृष्टि से जो तिरेसठ श्लाघनीय पुरुष हुए हैं, उन सभी का शारीरिक संस्थान अत्युत्तम था।[९] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा के समान होती है।[१०]

श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान, और प्रमाण में पूरा, सुजात और सर्वाङ्ग सुन्दर था। वे लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। देखने में बड़े ही कान्त, सौम्य सुभग-स्वरूप और अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रगल्भ, धीर और विनयी थे। सुखशील होने पर भी उनके पास आलस्य फटकता नहीं था।

उनकी वाणी गंभीर, मधुर और प्रतिपूर्ण थी। उनका निनाद क्रौंच पक्षी के घोष, शरद् ऋतु की मेघ-ध्वनि और दुंदुभि की तरह मधुर व गंभीर था। वे सत्यवादी थे।

उनकी चाल मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र की तरह ललित थी। वे पीले रंग के कौशेय-वस्त्र पहना करते थे। उनके मुकुट में उत्तम धवल, शुक्ल, निर्मल कौस्तुभ मणि लगा रहता था। उनके कान में कुंडल, वक्षस्थल पर एकावली हार लटकता रहता था। उनके श्रीवत्स का लांछन था। वे सुगन्धित पुष्पों की माला धारण किया करते थे।

वे अपने हाथ में धनुष रखा करते थे, वे दुर्धर धनुर्धर थे। उनके धनुष की टंकार बड़ी ही उद्घोषकर होती थी। वे शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते। ऊँची गरुड़ ध्वजा के धारक थे।

वे शत्रुओं के मद को मर्दन करने वाले, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले, अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।[११]

श्री कृष्ण सभी प्रकार से गुण सम्पन्न और श्रेष्ठ चरित्रवान् थे। उनके जीवन के विविध प्रसंगों से, जो अगले अध्यायों में दिये गये हैं, सहज ही ज्ञात होता है कि वे प्रकृति से दयालु, शरणागत-वत्सल,

---

९. प्रज्ञापना सूत्र २३

१०. हारिभद्रीयावश्यक, प्रथम भाग गा० ३६२-६३।

११. प्रश्नव्याकरण, अ० ४ पृ० १२१६, सुत्तागमे भाग १।

प्रगल्भ, धीर, विनयी, मातृ-भक्त, महान् वीर, धर्मात्मा, कर्तव्य परायण, बुद्धिमान्, नीतिमान् तथा तेजस्वी थे।

आगमेतर साहित्य में भी श्रीकृष्ण का वही व्यक्तित्व अक्षुण्ण रहा है। निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीका ग्रन्थों में भी श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रसंग आये हैं, जिनका हमने अगले अध्यायों में यथास्थान उल्लेख किया है।

आगमेतर साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ संघदासगणी विरचित वसुदेव हिण्डी है।[१२] वसुदेव श्री कृष्ण के पिता थे। उन्हीं का भ्रमण-वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ में है। देवकी लम्वक में श्रीकृष्ण के जन्म, आदि का वर्णन है। पीठिका में प्रद्युम्न, शाम्वकुमार की कथा, बलराम और श्री कृष्ण की अग्रमहिषियों का वर्णन है। इस ग्रन्थ की शैली का आधार गुणाढ्य कृत बृहत्कथा को बतलाया गया है।[१३] इस ग्रन्थ में कौरव-पाण्डवों का वर्णन भी हुआ है पर विशेष नहीं इसकी भाषा प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है।[१४]

चउप्पन्नमहापुरिषचरियं[१५]—यह आचार्य शीलाङ्क की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें नौ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर शेष चउप्पन्न महापुरुषों का जीवन उट्टङ्कित किया है। ४६, ५०, ५१ वें अध्याय में अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव और बलदेव का चरित्र चित्रित किया गया है, भाषा साहित्यिक प्राकृत है।

---

१२. मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, आत्मानन्द जैन ग्रन्थ माला भावनगर की ओर से सन् १६३०-३१ में प्रकाशित। इसका गुजराती भाषान्तर प्रोफेसर सांडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रन्थ माला की ओर से ही वि० सं० २००३ में प्रकाशित हुआ है।

१३. कथासरित्सागर की भूमिका, पृ० १३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।

१४. प्राकृतसाहित्य का इतिहास, —डा० जगदीशचन्द जैन पृ० ३८२

१५. पं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित, प्राकृत ग्रन्थ परिषद् वाराणसी द्वारा सन १६६१ में प्रकाशित। गुजराती अनुवाद आचार्य हेमसागर सूरि द्वारा शेठ देवचन्द लालभाई द्वारा १६६६ में प्रकाशित हुआ है।

नेमिनाहचरिउ—यह द्वितीय आचार्य हरिभद्र सूरि की महत्त्व पूर्ण रचना है। जिसका प्रथम भाग लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है, जिसमें भगवान् अरिष्टनेमि के पूर्वभव हैं।

भव-भावना—[१६] इसके रचयिता मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र सूरि हैं। उन्होंने वि० सं० १२२३ (सन् ११७०) में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। इसमें भगवान् नेमिनाथ का चरित्र, कंस का वृत्तान्त, वसुदेव देवकी का विवाह, कृष्ण-जन्म, कंस-वध, आदि विविध प्रसंग हैं।

नेमिनाह चरिउ—यह आचार्य हरिभद्र सूरि की वि० सं० १२१६ की रचना है।

उपदेशमालाप्रकरण[१७]— यह भी मल्लधारी हेमचन्द्र की ही कृति है। इसमें दान, शील, तप और भावना इन चार तत्वों का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। उसमें तप द्वार में वसुदेव का चरित वर्णित हुआ है।

कुमारपाल पडिबोह[१८]—(कुमारपाल प्रतिबोध) इसके रचयिता सोमप्रभसूरि हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में मद्यपान के दुर्गुण बताते हुए द्वारिका दहन की कथा दी गई है। तप के सम्बन्ध में रुक्मिणी की कथा आयी है।

कण्ह चरित[१९]—(कृष्ण चरित्र) इस ग्रंथ के रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं। प्रस्तुत चरित में वसुदेव के पूर्वभव, कंस का जन्म, वसुदेव का भ्रमण, अनेक कन्याओं से पाणिग्रहण, कृष्ण का जन्म,

---

१६. ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम द्वारा वि० सं० १९९२ में दो भागों में प्रकाशित।

१७. ऋषभदेव जी केशरीमल संस्था द्वारा सन् १९३६ में इन्दौर से प्रकाशित।

१८. यह ग्रन्थ गायकवाड ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा से मुनि जिन-विजय जी द्वारा सन् १९२० में सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है, इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा की ओर से प्रकाशित हुआ।

१९. केशरीमल जी संस्था, रतलाम द्वारा सन् १९३० में प्रकाशित।

कंस का वध द्वारिका नगरी का निर्माण, कृष्ण की अग्रमहिषियाँ, प्रद्युम्न का जन्म, जरासंध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के साथ विवाह की चर्चा आदि सभी विषय आए हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक रचनाएं हैं।

संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य :

जैन लेखकों ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में ही नहीं संस्कृत भाषा में भी विपुल कृष्ण साहित्य लिखा है। संस्कृत साहित्य के लेखक श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के विद्वान रहे हैं।

हरिवंश पुराण[२०]—इसके रचयिता दिगम्बर आचार्य जिनसेन हैं। इसमें ६६ सर्ग हैं और १२ हजार श्लोक हैं। ३२ वें सर्ग में कृष्ण के बड़े भाई बलदेव का वर्णन है। पैंतीसवें सर्ग में कृष्ण जन्म से लेकर अन्तिम सर्ग तक श्री कृष्ण के जीवन के विविध प्रसंग विस्तार के साथ लिखे गये हैं जैसे—कालियामर्दन, कंसवध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा से विवाह, जरासंध के पुत्र का वध, जरासंध के भय से मथुरा से प्रस्थान, द्वारकानिर्माण, रुक्मिणी का विवाह, शिशुपाल-वध, प्रद्युम्न का जन्म, जाम्बवती का विवाह, जरासंध वध, कृष्ण की दक्षिण भारत विजय, कृष्ण की रानियों के पूर्व भव, द्वीपायन का क्रोध द्वारिका विनाश, बलदेव श्रीकृष्ण का दक्षिण गमन, कृष्ण-मरण, बलदेव विलाप, बलदेव की जिन दीक्षा।

उत्तरपुराण[२१]—इसके लेखक गुणभद्र हैं। उन्होंने ७१, ७२, ७३वें पर्व में कृष्ण कथा का उल्लेख किया है। हरिवंशपुराण की अपेक्षा इसमें कथा बहुत ही संक्षिप्त है।

हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण को आधार बनाकर अन्य दिगम्बर विद्वानों ने श्रीकृष्ण पर लिखा है।

द्विसंधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य—इसके रचयिता धनंजय हैं। इसमें १८ सर्ग हैं। इसके प्रत्येक पद्य से दो अर्थ प्रकट होते हैं

---

२०. श्री पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित और भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा सन् १९६२ में प्रकाशित।

२१. पं० पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञान-पीठ काशी द्वारा प्रकाशित।

जिनसे एक अर्थ में रामायण और दूसरे अर्थ में महाभारत की कथा कुशलता से लिखी गई है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो एक अर्थ में राम तथा द्वितीय अर्थ में कृष्ण कथा का सृजन होता है। ध्वन्या-लोक के रचयिता आनन्दवर्धन ने निम्न शब्दों में उसकी प्रशंसा लिखी है :—

द्विसंधाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः,
यथा जातं फलं तस्य, सतां चक्रे धनंजयः।

प्रद्युम्न चरित[२२]—इसके रचयिता महासेनाचार्य हैं। स्व० नाथूराम प्रेमी के अभिमतानुसार इसका रचनाकाल सं० १०३१-१०६६ है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन है। प्रद्युम्न चरित नाम से अन्य लेखकों के भी अनेक ग्रन्थ हैं।

भट्टारक सकलकीर्ति ने भी जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण आदि के अनुसार ही हरिवंशपुराण और प्रद्युम्न चरित्र लिखा है। जयपुर के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में इन ग्रन्थों की कई हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं[२३]।

पाण्डव पुराण[२४]—इसके लेखक भण्डारक शुभचन्द्र हैं। पाण्डव-पुराण की कथा हरिवंशपुराण में वर्णित पाण्डवों की कथा पर आधारित है।

भट्टारक श्री भूषण का पाण्डवपुराण भी सुन्दर रचना है। इन्हीं का लिखा हुआ एक हरिवंशपुराण भी मिलता है, जिसका रचना काल सं० १६७५ है।[२५] महाकवि वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण काव्य, ब्रह्मचारी नेमिदत्त का नेमिनाथ पुराण (सं० १५७५ के

---

२२. पं० नाथूराम प्रेमी द्वारा सम्पादित और हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय बम्बई द्वारा प्रकाशित।

२३. जिनवाणी – जुलाई १९६६, पृ० २६।

२४. प्रो० ए० एन्० उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर सन् १९५४ में जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

२५. (क) जैन साहित्य और इतिहास – नाथूराम प्रेमी पृ० ३८३-८४
(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला—पृ० ३६१-६२।

लगभग) भट्टारक धर्मकीर्ति का हरिवंशपुराण (सं० १६७१) भी सुन्दर कृतियां हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र एक महत्वपूर्ण रचना है। यह विराट्काव्य ग्रन्थ है। इसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं जो कलिकालसर्वज्ञ के नाम से विश्रुत हैं। डाक्टर व्हीलर के अभिमतानुसार विक्रम सं० १२१६ से १२२९ के मध्य में इस ग्रन्थ की रचना हुई। इसके आठवें पर्व में भगवान् नेमिनाथ कृष्ण, बलभद्र और जरासंध का विस्तृत वर्णन है।

श्री कल्याणविजय जी के शिष्य ने ५० पद्यों में त्रिषष्टि शलाका पंचाशिका की रचना की है और किसी अन्य अज्ञात लेखक ने तेतीस गाथाओ में त्रिषष्टि शलाका पुरुष विचार लिखा है ।

भगवान् अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण का जीवन एक दूसरे से मिला-जुला जीवन है। अतः भगवान् नेमिनाथ के सम्बन्ध में जो ग्रंथ लिखे गये हैं उनमें श्री कृष्ण का जीवन आ ही जाता है। नेमिनाथ चरित्र—यह द्विसधान काव्य रूप चरित्र द्रोणाचार्य के शिष्य सूराचार्य ने सं० १०९० में रचा है।

नेमिनिर्वाण काव्य—यह वाग्भट्टालंकार के कर्ता वाग्भट्ट की रचना है जो 'काव्यमाला' में ई० सं० १८९६ में प्रकाशित हुई है।

अरिष्टनेमि चरित्र—इसके रचयिता रत्नप्रभसूरि हैं। १२२३ में इसकी रचना हुई।

नेमिनाथचरित्र—विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभ सूरि का है। वि० सं० १२८५ में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई है।

नेमिनाथचरित्र—(महाकाव्य) इसके लेखक कीर्तिराज हैं। रचना संवत् १४९५ है।[२६]

अरिष्टनेमि चरित्र—विजयगणी ने वि० सं० १६६८ में इसकी रचना की है।

नेमिनाथ चरित्र—यह गद्यमय है, इसके रचयिता गुणविजय गणी है।[२७]

नेमिनाथ चरित्र—वह वज्रसेन के शिष्य हरि की रचना है।

---

२६. यशोविजय ग्रन्थमाला द्वारा वीर सं० २४४० में प्रकाशित हुआ।

नेमिनाथ चरित्र– इसके रचयिता तिलकाचार्य हैं। और दूसरे एक नेमिनाथ चरित्र के रचयिता भोजराज हैं।

शत्रुंजय माहात्म्य—इसके सर्ग १०-१२ में कृष्ण चरित्र का आलेखन हुआ है।[२८]

इनके अतिरिक्त भी प्रस्तुत विषय के अनेक ग्रंथ हैं।

हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड आदि प्रान्तीय भाषाओं में जैन लेखकों के द्वारा श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों पर विपुल साहित्य लिखा गया है। ज्यों-ज्यों प्राचीन हस्त लिखित भण्डारों की अन्वेषणा की जारही है त्यों-त्यों नित्य नवीन सामग्री प्रकाश में आ रही है। स्थानाभाव और साधनाभाव के कारण उन सभी का परिचय देना संभव नहीं है। तथापि संक्षेप में कुछ परिचय दिया जारहा है।

अमम स्वामी चरित्र—इसके लेखक मुनिरत्नसूरि हैं। उन्होंने १२५२ में प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की है। इसमें श्री कृष्ण अमम स्वामी नाम से भावी तीर्थंकर होने वाले हैं उनका परिचय दिया गया हैं, श्रीकृष्ण का जीवन विस्तार से आया है, साथ ही उनके पूर्वभव का भी उल्लेख है। श्रीकृष्ण के पूर्वभवों का विस्तार से उल्लेख इसी ग्रन्थ में हुआ है।

नेमिनाथ रास—इसके रचयिता सुमतिगणी हैं। उन्होंने सं० १२७० में प्रस्तुत रास की रचना की है। इस रास की हस्तलिखित प्रति जेसलमेरदुर्ग में अवस्थित भण्डार में है।[२९]

गयसुकुमाल रास—इसके रचयिता श्री देल्हण हैं। इनका रचनाकाल सं० १३१५-२५ के बीच अनुमान किया जाता है। इस रास की सं० १४०० की एक प्रति जेसलमेर के भण्डार में उपलब्ध है और अभयजैन ग्रन्थालय बीकानेर में भी है।

---

२७. श्री मानचन्द वेलचन्द सूरत से ई० सन् १६२० में प्रकाशित हुआ।

२८. इन सभी के परिचय के लिए देखें जैन संस्कृत साहित्य नो इतिहास प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया भाग—२।

२९. जिनवाणी—सितम्बर १६६९ में प्रकाशित। जैन कृष्ण साहित्य—महावीर कोटिया का लेख।

पंचपांडव चरित्र रास—यह कवि शालिभद्रसूरि की रचना है। इसका रचना समय संवत् १४१० है।[30]

प्रद्युम्न चरित—इसके रचयिता सधारु हैं। इसका रचना सं० १४११ माना जाता है।[31]

वलभद्र रास—इसके रचयिता कवि यशोधर हैं वि० संवत् १५८५ में इसकी रचना की गई है।

नेमिजिनेश्वर रासो एवं प्रद्युम्न रासो—इसके निर्माता कवि रायमल्ल हैं।

नेमीश्वर चन्द्रायण—यह कवि नरेन्द्र कीर्ति की रचना है।

हरिवंशपुराण—इसके रचयिता शालिवाहन हैं। यह रचना जिनसेन के हरिवंश पुराण पर आधृत है।

नेमीश्वर रास—इसके लेखक नेमिचन्द्र हैं, जिनका समय १७६६ है। यह प्रति आमेरशास्त्र भण्डार में है।

प्रद्युम्न-प्रबन्ध—इसके रचयिता देवेन्द्रकीर्ति हैं। इनका रचना काल सं० १७२२ हैं।

पाण्डव पुराण—यह बुलाकीदास की रचना है। जिन्होंने वि० सं० १७५४ में बनाया है।

नेमिनाथ चरित्र—इसके रचयिता अजयराज पाटनी हैं। इसका रचना काल सं० १७९३ है।

नेमिचन्द्रिका—इसके रचयिता मनरंग लाल हैं।

स्थानकवासी जैन परम्परा के अनेक मुनिवरों ने भी भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पर लिखा है—साहित्य इस प्रकार है :—

भगवान् नेमिनाथ, महारानी देवकी श्री कृष्ण की ऋद्धि, आदि के रचयिता आचार्य श्री जयमल जी म० हैं।[32]

---

३०. हिन्दी के अज्ञात रास काव्य—मंगल प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित, तथा गुर्जररासावली में प्रकाशित।

३१. पं० चैनसुखदास, डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल के सम्पादकत्व में श्री महावीर क्षेत्र प्रवन्ध कारिणी कमेटी जयपुर द्वारा प्रकाशित।

३२. श्री मधुकर मुनि के द्वारा सम्पादित, 'जयवाणी' सन्मतिज्ञान पीठ आगरा से वि० सं०२०१६ में प्रकाशित।

राजीमती नेमिनाथ का चोढाल्या—सं० १८३४, राजमती रथनेमि की सज्झाय सं० १८४१, कृष्ण-भैरी संवाद सं० १८४३, देवकी राणी की ढाल आदि के रचयिता कवि रायचन्द्रजी म० हैं।[33]

भारत द्विशत पन्नत्ति के रचयिता आचार्य रामचन्द्रजी म० जो आचार्य जयमल जी म० की सम्प्रदाय के थे। मरुधरीय कविवर्य चौथमलजी म० ने भी श्रीकृष्ण लीला का निर्माण किया है। नेमिनाथ और राजुल के रचियता नेमिचन्द जी म० हैं।[34] आचार्य खूबचन्दजी म० ने प्रद्युम्न और शाम्बकुमार की ढाल बनायी। जैन दिवाकर चौथमलजी म० ने भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण[35] तथा मरुधर केशरी मिश्रीमलजी म० का महाभारत[36], व प्रवर्तक शुक्लचंदजी म०[37] व प्रवर्तक सूर्यमुनिजी म० का महाभारत भी सुन्दर रचनाएं हैं। पं० काशीनाथ जैन का नेमिनाथ चरित्र भी सुन्दर कृति है। तेरापंथी मुनियों की भी अनेक रचनाएं हैं।[38] इस प्रकार श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सहस्राधिक रचनाएं उपलब्ध हैं। जोधपुर, जयपुर, खांडप, पीपाड, आदि के स्थानकवासी भण्डारों को देखने का अवसर इन पक्तियों के लेखक को मिला है जहां अनेकों लेखकों की रचनाएं हैं।

शोधप्रधान युग में श्रीकृष्ण पर पं० सुखलालजी ने 'चारतीर्थंकर' में, पं कैलाशचन्द्रजी ने जैन साहित्य के इतिहास (पूर्व पीठिका) में, श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'प्राचीन जैन ग्रन्थों में श्रीकृष्ण' लेख में, श्रीचन्दजी रामपुरिया ने अर्हत्‌अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण' महावीर कोटिया ने जिनवाणी पत्रिका व मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ में 'जैन कृष्ण साहित्य में श्रीकृष्ण' लेख लिखकर प्रकाश डाला है। तथा प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया ने 'वासुदेव श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य' में अच्छा संकलन किया है।

---

३३. मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ—(लेख सन्त कविरायचन्द जी और उनकी रचनाएँ)।

३४. लेखक द्वारा सम्पादित नेमवाणी ग्रन्थ।

३५. दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर से प्रकाशित।

३६. पाण्डव यशोरसायन-रघुनाथ ज्ञान भण्डार सोजत से प्रकाशित।

३७. अम्बाला, पंजाब से प्रकाशित।

३८. मुनिधनराजजी का जैन महाभारत आदि।

मार डाला। उसके पश्चात् कंस स्वयं मारने को उठा, किन्तु वासुदेव ने चक्र से कंस और उपकंस दोनों भाइयों को मार दिया।

उन्होंने असितंजन नगर और कंसभोग राज्य पर अधिकार कर लिया और अपने माता-पिता उपसागर और देवगम्भा को भी गोवड्ढमान से बुला लिया। फिर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त करने को वहाँ से चल दिये। प्रथम उन्होंने अयोध्या के राजा काल-सेन को पराजित कर उसका राज्य हस्तगत किया। उसके पश्चात् वे द्वारवती पहुँचे। जहां एक ओर समुद्र और दूसरी ओर पर्वत था। वहां के राजा को मारकर उन्होंने द्वारवती पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसप्रकार उन्होंने जम्बूद्वीप के त्रेसठ हजार नगरों के समस्त राजाओं को चक्र से मारकर उनके राज्यों को अपने अधिकार में ले लिया था। उसके बाद द्वारवती में रहते हुए उन्होंने अपने राज्य को दस भागों में बांट लिया। नौभाग, नौ भाइयों को मिले। उनके एक भाई अंकुर ने राज्य न लेकर व्यापार करना चाहा। उसका भाग उनकी बहिन अंजन देवी को दिया गया। रोहिणोय्य उनका अमात्य था। अन्त में वासुदेव महाराज का प्रिय पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ, इससे उन्हें अत्यधिक संताप हुआ। उस समय उनके भाई घट पंडित ने बड़े कौशल से उनका पुत्र-शोक दूर किया। उस समय जो गाथाएँ कही गईं, उनमें वासुदेव के कण्ह (कृष्ण) और केसव (केशव) ये नाम भी मिलते हैं।

वासुदेवादि दस भाइयों की संतान ने कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती नारी बताकर उसकी सन्तान के विषय में उनसे पूछा। कृष्ण द्वीपायन ने उनका विनाश काल निकट जानकर कहा कि इससे एक लकड़ी का टुकड़ा उत्पन्न होगा और उससे वासुदेव के कुल का सर्वनाश हो जायेगा। तुम लकड़ी को जला देना और उसकी राख नदी में फैंक देना। अन्त में उसी राख से उत्पन्न अरंड के पत्तों द्वारा परस्पर लड़कर सब लोग मर गये। मुष्टिक ने मरकर यक्ष के रूप में जन्म ग्रहण किया। वह बलदेव को खा गया। वासुदेव अपनी बहिन और पुरोहित को लेकर वहां से चला गया। मार्ग में जरा नामक शिकारी ने सूअर के भ्रम से वासुदेव पर शक्ति फेंककर उसे घायल कर दिया इससे उसकी भी मृत्यु हो गई। इस गाथा को कह कर गौतम बुद्ध ने उपासक

समुदाय से कहा था—'पूर्व जन्म में सारिपुत्र वासुदेव था, आनन्द, अमात्य रोहिणोय्य था और स्वयं मैं घट पण्डित था।"

अन्तर :

घट जातक की इस कथा से जैन और वैदिक कथा में पर्याप्त अन्तर है। इस कथा के अनुसार कंस के पिता का नाम उग्रसेन न होकर मकाकंस था। उसकी बहिन का नाम देवकी न होकर देवगम्भा (देवगर्भा) था, जो उसकी बहिन थी। कंस की राजधानी मथुरा न होकर असितंजन नामक नगरी थी और उसके राज्य का नाम कंसभोग था। कंस के अनुज का नाम उपकंस था। इसमें देवकी का नाम नहीं है। कंस और उपकंस अत्याचारी तथा प्रजापीड़क नहीं थे। वे अपनी बहिन के प्रति भी अधिक निर्दय नहीं थे, वे यह जानते थे कि उसके पुत्र से ही उनका विनाश होगा।

मथुरा का राजा सागर और उसका लघु भाई उपसागर था। उपसागर ही पुराणों का वसुदेव है। जो मथुरा से भागकर असितंजन में कंस-उपकंस की शरण में गया और वहां आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसने छिपकर देवगम्भा से प्रेम किया तो भी कंस उपकंस ने कुछ नहीं कहा, किन्तु उसके साथ अपनी बहिन का विवाह कर गोवड्ढमान (गोवर्धन) ग्राम भी दे दिया। ताकि वे दोनों वहां आनन्द से रह सकें। उन्होंने इतनी सावधानी रखी थी कि देवगम्भा के कोई पुत्र न हो। यशोदा का नाम नन्दगोपा बताया गया है। उसके पति का नाम नन्द न होकर अंधकवेणु है। नन्दगोपा के दस पुत्रियाँ हुईं और देवगम्भा के दस पुत्र, वे परस्पर बदल लेते हैं किन्तु वे सभी जीवित रहते हैं, कंस किसी की भी हत्या नहीं करता।

देवगम्भा के दस पुत्रों में वासुदेव सबसे बड़ा था और बलदेव उससे छोटा। प्रद्युम्न, अर्जुन, अंकुर (अक्रूर) आदि को भी वासुदेव का भाई बताया गया है। वासुदेव सहित दसों भाइयों को लुटेरा, निर्दयी और सर्वजनसंहारक लिखा है। उन्होंने अपने मामाओं को मारकर, जम्बूद्वीप के हजारों राजाओं को चक्र से काटकर उनका राज्य छीन लिया था।[४१] इस प्रकार घटनाओं और नामों में अन्तर होने पर भी कथा के हार्द में जो सादृश्य है वह भी पाठकों की दृष्टि में आए विना नहीं रहेगा।

वैदिक साहित्य में कृष्ण :

वैदिक वाङ्मय में श्रीकृष्ण के असाधारण, अद्भुत एवं अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। किन्तु यह समझना समीचीन न होगा कि कृष्ण नामक एक ही विशिष्ट व्यक्ति हुए हैं। विशाल अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि देवकी-तनय कृष्ण से भिन्न अन्य कृष्ण भी हुए हैं। जिनका अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य में उल्लेख हुआ है। ऋग्वेदसंहिता में अनेक बार कृष्ण का नाम आया है। कृष्ण सूत्रों के रचयिता भी माने गये हैं। सूत्रों के रचयिता कृष्ण आंगरिस गोत्र के थे। ऋग्वेद अष्टम मंडल ७४ वे मंत्र के स्रष्टा ऋषि कृष्ण बतलाये गये हैं।[४२] अष्टम मंडल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मंडल के ४२, ४३, ४४ वें सूत्रों के ऋषि का नाम भी कृष्ण ही है। किन्तु विद्वानों का अभिमत है कि ये कृष्ण ऋषि देवकी पुत्र कृष्ण से भिन्न है।[४३] कृष्ण ऋषि के नाम पर कार्ष्णायिन गोत्र प्रचलित हुआ। विज्ञों का अनुमान है कि इस गोत्र प्रवर्तक के नाम पर ही वसुदेव के पुत्र का नाम कृष्ण रखा गया है।[४४] ऋग्वेद की अन्य दो ऋचाओं में अपत्य-बालक के रूप में कृष्णिय शब्द आया है।[४५] आंगरिस ऋषि के शिष्य कृष्ण का नाम कौषीतकि ब्राह्मण में मिलता है।[४६] ऐतरेय आरण्यक में कृष्ण हरित नाम आया है।[४७] कृष्ण नामक एक असुरराज अपने दस सहस्र सैनिकों के साथ अंशुमती (यमुना) के तटवर्ती प्रदेश में रहता था।

---

४१. विशेष वर्णन जानने हेतु भदन्त आनन्द कौसल्यायन अनुवादित जातक कथाओं के चतुर्थ खंड में सं० ४५४ की 'घट जातक' कथा पढ़िए।

४२. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, ले० प्रभुदयाल मित्तल पृ० १५-१६।

४३. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर पृ० १५

४४. हिन्दी साहित्य में राधा—द्वारकाप्रसाद मित्तल पृ० २८।

४५. वहीं पृ० २८।

४६. ऋग्वेद १-११६-२३, १७-७।

४७. कृष्णो हताङ्गिरसो ब्राह्मणाम् छंसीय तृतीयं सवनं ददर्श।
—सांख्यायन ब्राह्मण अ० ३० आनन्दाश्रम पूना।

बृहस्पति की सहायता लेकर इन्द्र ने उसे पराजित किया।[४८] ऋग्वेद में इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध करने वाला कहा है।[४९]

छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये हैं। वे घोर अङ्गिरस ऋषि के निकट अध्ययन करते हैं।[५०] देवकीनन्दन श्रीकृष्ण के लिए वासुदेव, विष्णु, नारायण, गोविन्द, आदि अनेक नाम प्रचलित रहे हैं। कृष्ण वदेसुव के पुत्र थे अतः वासुदेव कहलाते थे। अनेक स्थलों पर वासुदेव का उल्लेख आया है।[५१] ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को सर्वोपरि देव माना है।[५२] ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग अनेकार्थक और विपुल है, किन्तु उसकी एक विशेषता यह है कि वह सर्वत्र एक दिव्य महान् और व्यापक शक्तिका प्रतीक रहा है।[५३] विष्णु के विविध रूपों का वर्णन जे० गोंडा नामक विद्वान् ने अपने शोध ग्रन्थ एस्पैटक्स ऑव अर्ली विष्णुइजम में विस्तारपूर्वक किया है। विष्णु की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। विष्णु के वैशिष्ठ्य की कथाएं शतपथ ब्राह्मण[५४] और तैत्तिरीयारण्यक में मिलती हैं और उसकी महत्ता मैत्रेय उपनिषद् और कठोपनिषद्[५५] में बताई गई है। कृष्ण को शान्तिपर्व में विष्णु का रूप बताया है।[५६] गीता में कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार हैं।

महाभारत में कृष्ण के लिए गोविन्द नाम भी आया है। वासुदेव श्रीकृष्ण ने शान्ति पर्व में अपना नाम गोविन्द बताया है।

---

४८. ऐतरेय आरण्यक ३।२।६

४९. ऋग्वेद १।१०।११

५०. छान्दोग्योपनिषद्, तृतीय अध्याय, सप्तदश खण्ड श्लोक ६, गीताप्रेस गोरखपुर।

५१. देखिए—तीर्थंकर और वासुदेव।

५२. ऐतरेयब्राह्मण—१-१।

५३. J. Gonda. Aspects of Early Vishnuism, P. 3.

५४. शतपथ १।२।५। १४-१-१

५५. कठोपनिषद् ३।६

५६. महाभारत शान्ति पर्व अ० ४८।

कृष्ण नर रूप में अवतरित होकर भी नारायण रूप की सभी विशिष्टताओं से युक्त हैं। "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्" कह कर महाभारतकार ने उनका अभिनन्दन किया है। उनके दिव्य भव्य मानवीय स्वरूप के दर्शन हमें महाभारत में होते हैं।

महाभारत के कृष्ण का व्यक्तित्व आकर्षक है। इन्द्रनील मणि के समान उनका श्यामवर्ण शोभायुक्त था। कमल सदृश उनके नेत्र थे, सुडौल, मन मोहक उनकी बाह्य छवि थी। अपने अप्रतिम रूप के साथ ही वे अतुल बलसम्पन्न भी थे। उनका उत्तम चरित्र सभी प्रकार के श्रेष्ठ गुणों और आदर्शों की खान है। वे महान् वीर, मित्रजनों के प्रशंसक, जाति और बन्धु बांधवों के प्रेमी, क्षमाशील, अहंकार रहित, ब्राह्मण भक्त, भयातुरों का भय दूर करने वाले, मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाले, समस्त प्राणियों को शरण देने वाले, दीन-दुःखियों को पालने में तत्पर, शास्त्रज्ञानसम्पन्न, धनवान, सर्वभूतवन्दित, शरणागत को वर देने वाले, शत्रु को अभय देने वाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, वेदों के वक्ता, तथा जितेन्द्रिय कहे गये हैं।[५७] वे धैर्यशाली, पराक्रमी, बुद्धिमान और तेजस्वी हैं।[५८] इस प्रकार कृष्ण लोक के रक्षक, धर्म व नीति के संस्थापक और आदर्श पुरुषोत्तम हैं।

शतपथ ब्राह्मण में नारायण का उल्लेख है[५९]। ऋग्वेद में पाञ्च-रात्र-सत्र का प्रयोजक पुरुष तथा पुरुष-सूक्त का कर्ता भी नारायण

---

५७. वीरो मित्रजन श्लाघी, ज्ञाति-बन्धुजनप्रियः।
क्षमावांश्चानहंवादी, ब्रह्मज्ञो ब्रह्मनायकः॥
भयहर्ता भयार्तानां, मित्राणां नन्दिवर्धनः
शरण्यं सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः
श्रुतवानर्थसम्पन्नः सर्वभूत नमस्कृतः।
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित्
नीतिज्ञो नीतिसम्पन्नो, ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः।

—महाभारत अनुशासन पर्व १४७।१९-२०

५८. तस्मिन् धृतिश्च, वीर्यं च प्रज्ञा चौजश्च माधवे।

—उद्योग पर्व ६५।६

५९. शतपथ ब्राह्मण १३-३-४।

को बताया है[६०]। तैत्तिरीयारण्यक में नारायण को सवगुण-सम्पन्न कहा है[६१]। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में नारायण को सर्वेश्वर का रूप दिया गया है। महाभारत के अनुसार मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को बताया कि जनार्दन ही स्वयं नारायण हैं। वासुदेव और अर्जुन का महाभारत में कई स्थानों पर नर और नारायण के रूप में निर्देश है[६२]।

कृष्णचरित्र का वर्णन कुछ पुराणों में विस्तार से और कुछ पुराणों में संक्षेप से आया है। निम्नलिखित पुराणों में कृष्णचरित्र का वर्णन विस्तार से आया है—पद्मपुराण, वायुपुराण, वामन-पुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवत।

ब्रह्मपुराण में कृष्ण की कथा विस्तार से दी गई है। पद्मपुराण के पातालखण्ड में कृष्णचरित का वर्णन आया है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य का प्ररूपण ६९वें अध्याय से ७२ वें अध्याय तक है और ७३ से ८३ अध्याय तक वृन्दावन आदि का माहात्म्य और कृष्णलीला का वर्णन है।

विष्णुपुराण के चोथे अंश के १५वें अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है और पांचवें अंश में कृष्ण का चरित्र विशेष रूप से दिया है और उनकी लीलाओं के साथ रास का भी वर्णन दिया है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण को परम ब्रह्म बताया गया है[६३]। सत्तरहवें और उन्नीसवें अध्याय में गोपों और गायों को दावानल से बचाने का उल्लेख है। इक्कीसवें अध्याय में वेणुगीत है। बावीसवें अध्याय में चीर-हरणलीला का वर्णन है। गीता और भागवत दोनों ने श्रीकृष्ण को ज्ञान, शांति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—इन छह गुणों से विशिष्ट माना है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण के रूपों का चित्रण इस प्रकार हुआ है—१ अद्भुतकर्मा असुर संहारक कृष्ण, २ बाल-

---

६०. ऋग्वेद १२।६।१, १२।१०।९० ।

६१. तैत्तिरीयारण्यक १०।११ ।

६२. महाभारत वनपर्व १६-४७ तथा उद्योगपर्व ४९-१ ।

६३. श्री मद्भागवत दशमस्कन्ध ८-४५, ३-१३, २४-२५ ।

कृष्ण, ३ गोपीविहारी कृष्ण, ४ राजनीति वेत्ता, कूटनीति-विशारद श्रीकृष्ण, ५ योगेश्वर श्रीकृष्ण, ६ परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण।

भागवत के द्वितीय स्कंध के सप्तम अध्याय में कृष्ण और बलराम के अवतारों की ओर संकेत किया गया है। तृतीय अध्याय में अन्य लीलाओं का वर्णन है। दशमस्कंध के पूर्वार्द्ध में श्रीकृष्ण का बालचरित्र तथा गोपी-विहार है। दशम स्कंध में लीलाओं का विशद चित्रण है। एक शब्द में कहा जाय तो श्रीमद्‌भागवत में महाभारत, गीता आदि का समन्वय हुआ है। उसमें एक ओर महाभारत में कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों के सखा वीर कृष्ण का रूप तथा दूसरी ओर गीता के साधुओं के परित्राता तथ पापियों के विनाशक एवं धर्म की स्थापना कर निष्काम कर्मयोग का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण का रूप निहारने को मिलता है।

वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के चौतीसवें अध्याय में स्यमंतक मणि की कथा के वर्णन में कृष्ण का विवरण आया है। वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के बयालीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म से परे और राधा के साथ गोलोक-लीला विलासी बताया है[६४]। यही उपनिषदों का अरूप, अनिर्देश्य और अनिर्वाच्य ब्रह्म है। यही किसी नाम द्वारा अभिहित न किया जाने वाला परम तत्त्व है जिसे सात्वत वैष्णव श्रीकृष्ण कहते हैं।

अग्निपुराण के बारहवें अध्याय में कृष्णावतार की कथा है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीकृष्ण के चरित का पूर्ण विवेचन है। उसके तेरहवें अध्याय में 'कृष्ण' शब्द की अनेक दृष्टियों से व्याख्या की है। कृष्ण शब्द का 'क' अक्षर ब्रह्मवाचक, 'ऋ' अनन्तवाचक 'ष' शिववाचक, न धर्म वाचक, अ विष्णु वाचक, और विसर्ग नर-नारायण अर्थ का वाचक है।[६५] सर्वाधार, सर्वबीज, और सर्वमूर्ति स्वरूप होने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं।

मार्कण्डेय पुराण की जो विषयसूची नारदीय पुराण में दी गई है उसके अनुसार मार्कण्डेय पुराण में यदुवंश, श्रीकृष्ण की लीलाएं,

---

६४. वायुपुराण द्वितीय खण्ड अ० ४२ श्लो० ४२ से ५७।

६५. ब्रह्मवैवर्तपुराण १३।५५-६८।

द्वारिका वर्णन आदि होना चाहिए, किन्तु वर्तमान में उपलब्ध पुस्तकों में वह नहीं है।

वामनपुराण में केशी, सुर तथा काल नेमि के वध की कथा है।

कूर्मपुराण के पूर्वार्ध में यदुवंश का वर्णन है। पच्चीसवें अध्याय में कृष्ण पुत्र-प्राप्ति के लिए महादव आदि की आराधना करते हैं। सत्ताईसवें अध्याय में साम्ब आदि कुमारों का वर्णन है।

गरुड़पुराण के आचार काण्ड में कृष्णलीलाओं का वर्णन है।[६६] इसमें पूतनावध, यमलार्जुन उद्धार कालियदमन, गोवर्द्धन धारण, केसी-चाणूर वध, संदीपनि गुरु से शिक्षा लाभ आदि सभी कथाएं संक्षेप में दी गई हैं। गोपियों का तथा कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अष्ट पत्नियों का उल्लेख है, किन्तु राधा का नाम नहीं आया है। २३ वें अध्याय में गीता का सार भी प्रस्तुत किया है। २७वें अध्याय में जाम्बवती के साथ कृष्ण पाणिग्रहण का वर्णन भी है।

ब्रह्माण्ड पुराण के बीसवें अध्याय में कृष्ण के जन्म लेने आदि की घटनाएं हैं।

दैवी भागवत के चतुर्थस्कन्ध में भी श्रीकृष्ण की कथा वर्णित है।

हरिवंशपुराण में गोपालकृष्ण सम्बन्धी सबसे अधिक कथाएं हैं। यह पुराण गाथात्मक है और लौकिकशैली में निर्मित है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसको ईसा की पहली शताब्दी की कृति माना है।[६७] इसमें पूतनावध, शकटभंग, यमलार्जुन पतन, माखनचोरी कालिय दमन, धेनुकवध, गोवर्द्धन धारण आदि लीलाओं का विस्तार से वर्णन है। विष्णु पर्व में कृष्णजीवन की सम्पूर्ण कथा है।[६८] कृष्ण के सौन्दर्य का निरूपण है[६९]। यमलार्जुन भंग में कृष्ण व बलराम के अंगों का वर्णन है। हरिवंश[७०] के कृष्ण आबाल वृद्ध सभी को प्रिय

---

६६. गरुडपुराण, आचार कांड अ० १४४, श्लो० १११।

६७. हिन्दी साहित्य में राधा, पृ० ४१ देखें।

६८. विष्णु पर्व अ० १२८।

६९. हरिवंशपुराण अ० २० श्लो० १९-२०-२१।

७०. अध्याय ७, श्लो० ७।

हैं। जब कभी गोकुल में उपद्रव होता तब गोपिकाएं श्रीकृष्ण को सुरक्षित देखने के लिए आकुल-व्याकुल हो जाती थीं। उसमें रास-लीला का भी वर्णन है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा और विषयवैविध्य की दृष्टि से पुराण एक काल में निर्मित नहीं हुए हैं, अपितु इनकी विभिन्न कालों में रचना हुई है। साम्प्रदायिक आचार्य अपनी-अपनी परम्परा अनुकूल इन पुराणों में श्रीकृष्ण के चरित्र का निरूपण करते रहे हैं।

इन्हीं पुराणों में चित्रित श्रीकृष्ण चरित्र को मुख्य आधार बनाकर संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं में विपुल मात्रा में कृष्ण पर साहित्य लिखा गया।

जयदेव ने कृष्ण के प्रेमी रूप को ग्रहण किया, विद्यापति ने उसमें अपना सुर मिलाया। कृष्ण भक्ति शाखा का प्रादुर्भाव हुआ। कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण निर्गुण नहीं, सगुण हैं, वे परब्रह्म और पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम की सभी क्रीड़ाएं और लीलाएं नित्य हैं। वल्लभाचार्य ने प्रेमलक्षण भक्ति को स्वीकार कर पुष्टिमार्ग का प्रवर्तन किया। उन्होंने तथा उनकी परम्परा के भक्तकवियों ने भागवत में वर्णित कृष्ण के मधुर रूप को ग्रहण किया व प्रेमतत्व की बड़े विस्तार से अभिव्यंजना की। इन भक्तकवियों के कृष्ण, मर्यादापालक, लोकरक्षक कृष्ण नहीं, प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के गोपीवल्लभ कृष्ण हैं। सूरदास, कुंभनदास, परमानन्द दास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास ये आठों अष्टछाप के कवियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। सभी ने कृष्ण को इष्टदेव मानकर उनकी बाललीला, और यौवनलीला का विस्तार से विश्लेषण किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन कवियों ने शृङ्गार और वात्सल्य रसों को पराकाष्ठ पर पहुँचाया है। मुख्य रूप से इन्होंने मुक्तकों की रचना की है, प्रबन्ध के रूप में नहीं। सूर-सागर, भ्रमर-गीत आदि रचनाएं काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। मीराबाई भी कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थी। उसने श्रीकृष्ण को प्रियतम मानकर उपासना की। नरसीजी का मायरा, आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। देखिए—

वसो मेरे नैनन में नन्दलाल,
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैना बने रसाल।
मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल अरुन तिलक दिए भाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदायी, भक्तवच्छल गोपाल।।

गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, श्री भट्ट, व्यासजी, ध्रुवदास, नागरीदास, अलवेली अलिजी, चाचा हितवृंदावनदास जी, भगवत रसिक आदि भक्तिकाल के कवियों ने, व रीतिकाल तथा आधुनिक काल के कवियों ने भो कृष्ण पर बहुत कुछ लिखा है।[७१] बंकिमचन्द्र चटर्जी का कृष्णचरित्र, हरिऔधजी का प्रियप्रवास, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का कृष्णावतार आदि आधुनिक युग की सुंदर कृतियां हैं।

यूनानी लेखकों का उल्लेख :

चन्द्रगुप्त मौर्य के दरवार में नियुक्त यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने अपने जो संस्मरण लिखे थे, वे मूलरूप में इस समय उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु उसके कुछ अवतरण एरियन नामक एक दूसरे यूनानी लेखक की रचना में मिलते हैं। उसमें मैगस्थनीज का कृष्ण-सम्बन्धी अवतरण इस प्रकार है—

'वह भारतीय हरक्लीज़ (हरिकृष्ण) अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति में समस्त जनसमुदाय में बढ़े हुए थे। उन्होंने भूमण्डल को पाप से मुक्त कर दिया था और अनेक नगरों की स्थापना की थी। उनके देहावसान के पश्चात् उनके प्रति देवताओं के समान श्रद्धा व्यक्त की गई थी। उन हरक्लीज (हरिकृष्ण) के प्रति शौरसेनाइ (शूरसेन जनपद के निवासी) लोगों की विशेष रूप से पूज्य दृष्टि है। शौरसेनाइ लोगों के प्रदेश में दो वड़े नगर हैं, जिनके नाम मथुरा तथा क्लीसोवोरा (कृष्ण पुरा) हैं और जिनके निकट जोवरेस (यमुना) नदी वहती है जिसमें नावें चलती हैं[७२]।'

---

७१. देखिए —हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल
७२. श्री ई० जे० चैनोक कृत 'इण्डिका' से अनुवादित ग्रन्थ।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति की जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनों धाराओं ने कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार और संक्षेप में युगानुकूल भाषा में चित्रित किया है। जहाँ वैदिक परम्परा ने विष्णु का पूर्ण अवतार मानकर श्रद्धा और भक्ति से कृष्ण की स्तवना की है वहाँ जैन परम्परा ने भावी तीर्थंकर और श्लाघनीयपुरुष मानकर उनका गुणानुवाद किया है; तथा बौद्ध परम्परा ने भी बुद्ध का अवतार मानकर उनकी उपासना की है।

यह सत्य है कि उपासकों ने अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार महापुरुषों को चित्रित किया है। यही कारण है कि कथाओं के विविध प्रसंग लेखक की दृष्टि से बदलते रहे हैं। वैदिक परम्परा में जो रूप हैं वह जैन परम्परा से कुछ पृथक् है, यहाँ तककि श्वेताम्बर दिगम्बर जैन लेखकों में भी मतभेद है। बौद्धपरम्परा की कथा तो काफी स्वतंत्र रूप लिए हुए है।

हम अगले अध्यायों में समन्वय की दृष्टि से ही श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण करेंगे। किसी भी परम्परा का खण्डन करना हमारा लक्ष्य नहीं है। हमारा लक्ष्य केवल विविध दृष्टिकोणों का निदर्शन एवं सत्य तथ्य का विश्लेषण करना है।

कंस : एक परिचय

- कंस का जीवयशा के साथ पाणिग्रहण
- वसुदेव का देवकी के साथ विवाह
- अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी
- वैदिक परम्परा के संदर्भ में
- जैन परम्परा के संदर्भ में

कंस : एक परिचय

●

वसुदेवहिण्डी, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, आदि ग्रन्थों के अनुसार भोजवृष्णि मथुरा में राज्य करते थे। उनके उग्रपराक्रमवाला उग्रसेन नामक पुत्र हुआ। युवावस्था आने पर धारिणी के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ। भोजवृष्णि के पश्चात् उग्रसेन मथुरा के राजा हुए। एकदिन महारानी धारिणी गर्भवती हुई। गर्भ के प्रभाव से रानी के अन्तरमानस में महाराजा उग्रसेन के शरीर का मांस खाने की भावना उद्बुद्ध हुई, पर उसने अपनी यह कुत्सित मनोकामना किसी के सामने प्रकट नहीं की। चिन्ता से वह प्रतिदिन कृश होने लगी।[1] राजा ने रानी के कृश होने का कारण जानना चाहा, तब किसी प्रकार लज्जा के साथ रानी ने अपने हृदय की बात कही, राजा ने मंत्रियों से परामर्श किया। तब रानी ने दोहद को पूर्ण करने के लिए मंत्रीगण राजा को एक अंधेरे कमरे में ले गये। उसी के सन्निकटवर्त्ती कमरे में रानी को बैठाया गया, जहां से वह राजा के शब्दों को भली-भांति सुन सके। राजा के उदर पर एक शशक का ताजा मांस रखा गया। शशक के मांस को जब काटने का प्रदर्शन किया गया तब राजा इतना जोर से चिल्लाया जैसे वस्तुत:

---

१. त्रिषष्टिशलाका० ८।२।६

उसी का मांस काटा जा रहा हो[२]। राजा के करुण क्रन्दन को सुनकर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह मांस खाकर फूली न समाई। तब वह दोहदपूर्त्ति हो जाने पर सन्तुष्ट हुई तत्पश्चात् उसे घोर पश्चात्ताप हुआ कि यह मैंने क्या किया ? जो पुत्र गर्भ में भी पिता के प्रति इतनी दुर्भावना रखता हो, वह बाद में किस प्रकार की भावना रखेगा, इसकी कल्पना कर रानी धारिणी भावी अमंगल की कल्पना से सिहर उठी। समय व्यतीत हुआ। जन्म लेने पर बालक को कांस्य की पेटी में रखकर, साथ ही जन्मपत्रिका और माता-पिता के नाम की दो मुद्रिकाएं रखकर यमुना नदी में बहा दिया। सोचा – न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जब यहां पर बालक ही न रहेगा तब पिता को किसी प्रकार का खतरा भी न होगा। वह पेटी यमुना नदी में बहती हुई चली जा रही थी। सुभद्र नामक श्रेष्ठी ने वह पेटी निकाली। पेटी में तेजस्वी बालक को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने वह बालक पालन-पोषण के लिए अपनी पत्नी को दिया। बालक का नाम कांस्य की पेटी में से निकलने के कारण 'कंस' रखा। बड़ा होने पर कंस वसुदेव के वहां अनुचार रहा, वसुदेव से कंस ने युद्ध आदि की समस्त कलाएं सीखीं।[५]

कंस का जीवयशा के साथ पाणिग्रहण :

उस समय राजगृह का अधिपति जरासंध नामक प्रतिवासुदेव था। प्रायः सभी राजा उसके अधीन थे। एक दिन प्रतिवासुदेव ने

---

२. सोऽथोग्रसेनभार्याया धारिण्या उदरेऽभवत्।
तस्याश्च दोहदो जज्ञे पत्युः पललभक्षणे ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।६२

३. त्रिषष्टि० ८।२।६६-७०

४. कंस इत्यभिधां तस्य चक्रतुस्तौ तु दंपती।
वर्धयामासतुस्तं स मधुक्षीरघृतादिभिः ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।७२

५. ततस्ताभ्यां दशवर्षः सेवकत्वेन सोऽर्पितः।
वसुदेवकुमारस्य सोऽभूत्तस्याप्यतिप्रियः ॥
—त्रिषष्टि० ८।२।७७

सोरियपुर के राजा समुद्रविजय को आदेश दिया कि वह सिंह राजा को पकड़कर लावे। जो सिंह राजा को पकड़कर लायेगा उसके साथ मैं अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह करूंगा।[6] और राज्य भी दूंगा। समुद्रविजय युद्ध के लिए जाने लगे, पर वसुदेव ने कहा—मैं जाऊंगा, वसुदेव गये और सिंह राजा को परास्त कर विजयपताका फहराकर घर पर आये। वसुदेव को एकान्त में ले जाकर समुद्र-विजय ने कहा – मुझे एक विशिष्ट निमित्तज्ञ कोष्टुक ने बताया है कि जरासंध की पुत्री जीवयशा कनिष्ठ लक्षणों वाली है। वह पति और पिता के दोनों ही कुलों को कलंकित व क्षय करेगी, अतः तुम उसका पाणिग्रहण मत करना। जीवयशा का पाणिग्रहण तुम्हारे अनुचार कंस के साथ करा दिया जाय। समुद्रविजय जी ने कंस के वंश का पता लगाया। सुभद्र श्रेष्ठी से मुद्रिका और जन्मपत्री साथ लेकर जरासंध के दरबार में गये। जरासंध ने पूछा—सिंह राजा को किसने पकड़ा ?[7] समुद्रविजय ने कंस का नाम लिया और कंस के साथ जीवयशा का पाणिग्रहण हो गया। कंस समुद्रविजय और वसुदेव पर बहुत ही प्रसन्न हुआ और अपने पिता उग्रसेन पर अत्यन्त क्रुद्ध। जरासंध की सेना लेकर कंस मथुरा आया,[8] राजा उग्रसेन को जो उसके पिता थे, बन्दी बनाकर स्वयं मथुरा का राजा बन गया।[9]

उग्रसेन के अतिमुक्त आदि अन्य पुत्र भी थे। अतिमुक्तक को पिता की दुर्दशा देख, वैराग्य उत्पन्न हुआ और दीक्षा ग्रहण की।[10]

---

६. त्रिषष्टि० ८।२।८२।८४

७. वहीं० ८।२।८५-९५

८. वसुदेवं रहस्यूचे समुद्रविजयो नृपः।
यज्ज्ञानी क्रोष्टुकिनामाचख्यौ मम हितं ह्यदः॥
जरासंधस्य कन्येयं नाम्ना जीवयशा इतिः।
अलक्षणा पतिपितृकुलक्षयकरी खलु॥
—त्रिषष्टि० ८।२।९५-९६

९. जरासंधार्पितवलो मथुरायामुपेत्य च।
कंसो नृशंसः पितरं बद्ध्वा चिक्षेप पंजरे।
—त्रिषष्टि० ८।२।१०६

वसुदेव का देवकी के साथ विवाह :

जरासंध ने समुद्रविजय जी आदि का सत्कार किया। वे पुनः वहां से सौर्यपुर आये। वसुदेव का रूप अत्यन्त सुन्दर था, उनके दिव्य, भव्य एवं चित्ताकर्षक रूप को निहार कर अनेकों महिलाएं उन पर मुग्ध हो जाती थीं, किसी ने समुद्रविजयजी से कहा कि वसुदेव जिधर से भी निकलते हैं महिलाएं उन पर न्यौछावर हो जाती हैं![11] समुद्रविजय जी ने वसुदेव को राजमहलों में और बगीचों में ही घूमने का प्रेम से आदेश दिया।[12] एक दिन कुब्जा दासी ने यह बात वसुदेव को बता दी, वसुदेव वहां से विदेश-यात्रा के लिए निकल पड़ते हैं।[13] वसुदेव निदानकृत होने से स्त्री-वल्लभ थे। शताधिक स्त्रियों के साथ उनका पाणिग्रहण होता है। उन सभी स्त्रियों में दो मुख्य स्त्रियां थीं—रोहिणी और देवकी। रोहिणी से बलभद्र पुत्र हुए उनका अपर नाम राम भी था।[14] देवकी का वर्णन इस प्रकार है।

एक समय कंस ने बड़े ही स्नेह से वसुदेव को मथुरा बुलाया। समुद्रविजय जी की आज्ञा लेकर वसुदेव मथुरा गये।[15] जीवयशा के साथ बैठे हुए कंस ने वसुदेव से निवेदन किया कि मृत्तिकावती में मेरे चाचा देवक राजा की पुत्री देवकी है उसके साथ आपको विवाह करना पड़ेगा।"[16]

---

१०. उग्रसेनस्य चाभूवन्नतिमुक्तादयः सुताः।
अतिमुक्तः पितृदुःखात् प्रव्रज्यामाददे तदा॥
—त्रिषष्टि० ८।२।१०८

११. त्रिषष्टि० ८।२।११५-११७

१२. त्रिषष्टि० ८।२।१२१-१२२

१३. त्रिषष्टि० ८।२।१२३-१२६

१४. राम इत्यभिरामं च तस्य नामाकरोत् पिता।
क्रमाच्च ववृधे रामः सर्वेषां रमयन् मनः॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२५-२६

१५. त्रिषष्टि० ८।५।४३

१६. वहीं० ८।५।४४-४६

कंस के प्रस्ताव को वसुदेव ने स्वीकार किया और वे कंस के साथ वहां जाने को तैयार हुए। मार्ग में ही नारद ऋषि मिल गये। उन्होंने उनका हार्दिक सत्कार किया। नारद ऋषि कंस और वसुदेव पर बहुत प्रसन्न हुए। नारद ऋषि वसुदेव और कंस के जाने के पूर्व ही देवकी के पास पहुँचे और दिल खोलकर वसुदेव के रूप सौन्दर्य व स्वभाव की प्रशंसा की। देवकी नारद के कहने से वसुदेव पर मुग्ध हो गई।[१७]

कंस और वसुदेव वहां पहुँचे। देवक राजा के सामने कंस ने विवाह का प्रस्ताव रखा। पहले देवक राजा आनाकानी करता रहा पर अन्त में देवकी की तीव्र इच्छा होने से देवकी का वसुदेव के साथ विवाह कर दिया।[१८] राजा देवक ने पाणिग्रहण के समय विराट् सम्पत्ति के साथ दस गोकुल के अधिपति नन्द को भी गायों के साथ अर्पित किया।[१९]

विवाह कर कंस के साथ वसुदेव मथुरा आये, विवाह की प्रसन्नता में एक महान् महोत्सव का आयोजन किया।[२०]

अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी :

महोत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं। उस समय कंस के लघु-भ्राता अतिमुक्त मुनि, जिनका शरीर उग्र तप की साधना करने से अत्यन्त कृश हो चुका था, जिन्हें अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो चुकी थीं, भिक्षा के लिए कंस के वहां आये। उस समय कंस की पत्नी जीवयशा अभिमान की मदिरा से बेभान बनी हुई थी। वह अतिमुक्त मुनि से अमर्यादित वाणी में इस प्रकार बोली—"अरे देवर ! तुम ठीक समय

---

१७. त्रिषष्टि० ८।५।५४ से ५६

१८. जज्ञे विवाहः पुण्येऽह्नि देवकी-वसुदेवयोः।
तारतारं गीयमानैर्नवैर्धवलमंगलैः ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।६५-६८

१९. देवको वसुदेवाय ददौ स्वर्णादि भूरिशः।
दशगोकुलनाथं च नंदं गोकोटिसंयुतम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।६९

२०. त्रिषष्टि० ८।५।७०

पर यहाँ पर आये हो। अच्छा हो तुम मेरे साथ नृत्य करो, गायन करो!' वह मुनि से उच्छृङ्खल मजाक करने लगी।[२१] मुनि बहुत समय तक उसका अभद्र व्यवहार देखते रहे, चंदन शीतल होता है पर चन्दन को यों ही घिसा जाय तो उसमें से भी आग पैदा हो जाती है। मुनि स्वभावतः शान्त होते हैं, पर अधिक कष्ट देने पर उन्हें भी कभी-कभी क्रोध आ जाता है। ज्ञानी अतिमुक्त मुनि ने रोष में कह दिया—अरे जीवयशा! जिसके निमित्त यह उत्सव मनाया जा रहा है, उसका सातवां गर्भ तेरे पिता और पति को मारने वाला होगा।[२२]

मुनि की गंभीर घोषणा सुनते ही जीवयशा का मद उतर गया। उसने मुनि को छोड़ दिया[२३] मुनि चले गये। जीवयशा ने शीघ्र ही कंस के पास पहुंच कर आंखों से आंसू को बरसाकर मुनि की भविष्यवाणी सुनाई। मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर कंस भी एक बार कांप उठा। क्योंकि मुनि की वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होती[२४], दूसरे ही क्षण उसने सोचा—जब तक यह बात प्रकट नहीं हो जाती तब तक मुझे पूरा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। वसुदेव से देवकी के सातों गर्भ मुझे मांग लेने चाहिए। कंस सीधा वसुदेव के पास गया और उसने अत्यन्त नम्रता के साथ वसुदेव से कहा—आप तो मेरे महान् उपकारी हैं। आपने ही शस्त्र विद्या आदि मुझे सिखाई है। आपने ही मेरा जीवयशा के साथ विवाह कराया। अब मेरी एक इच्छा की पूर्ति करने की कृपा करें। वह यह कि देवकी के

---

२१. (क) साधूत्सवदिनेऽमुष्मिन् देवरासि समागतः।
नृत्य गाय मया सार्धमित्यादि बहुधा तया॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७१

(ख) वसुदेव हिण्डी

२२. सोऽपि ज्ञानी शशंसैवं यन्निमित्तोऽयमुत्सवः।
तद्गर्भः सप्तमो हंता पतिपित्रोस्त्वदीययोः॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७४

२३. तां वाचं स्फुर्जथुनिभां श्रुत्वा जीवयशा द्रुतम्।
भयाद् गतमदावस्था तं मुमोच महामुनिम्॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७५

२४. त्रिषष्टि० ८।५।७६

सात गर्भ जन्मते ही आप मुझे दे दें।[२५] सरलहृदय वसुदेव कंस के कपट को नहीं समझ सके। उन्होंने सोचा—कंस के कारण हो मेरा देवकी के साथ पाणिग्रहण हुआ है, अतः यह जब मांगता है तो मुझे दे देना चाहिए। उन्होंने कंस के कहे अनुसार अभिवचन दे दिया कि सातों पुत्र जन्मते ही तुम्हारे अधीन होंगे।[२६] कंस वसुदेव से वचन लेकर बहुत प्रसन्न हुआ। मुनि की भविष्यवाणी नहीं जानने वाली देवकी ने भी कहा—भाई! तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही होगा। वसुदेव और तुम्हारे पुत्र में कोई अन्तर नहीं है, हमारा दोनों का सम्बन्ध भी तुम्हारे कारण ही तो हुआ है।

वसुदेव कंस को वचन देकर जब घर पर पहुँचे तब उन्हें अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी का पता चला। उन्हें विचार आया—मधुर शब्द बोलकर कंस ने मुझे ठग लिया है, पर अब क्या हो सकता था![२७]

वैदिक परम्परा के संदर्भ में :

वैदिक परम्परा के ग्रंथों के अनुसार से एकबार मथुरा नगरी में वसुदेवजी देवकी के साथ विवाह कर अपने घर जाने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय राजा उग्रसेन का पुत्र कंस ने उन्हें स्वर्णमण्डित रथ में बैठाकर बहिन देवकी की प्रसन्नता के लिए घोड़ों की रास पकड़ ली।

महाराजा देवक ने कन्या को विदा करते समय स्वर्णमाला से विभूषित चार सौ हाथी, पन्द्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा विचित्र वस्त्राभूषणों से विभूषित दो सौ सुकुमार दासियां दहेज में दीं।[२८] मार्ग में जिस समय कंस देवकी का रथ चला रहा था उस

---

२५. सप्तेतो देवकी गर्भाञ्जामात्रान्ममार्पयेः।
वसुदेवोऽप्यृजुमनास्तन्तथा प्रत्यपद्यत॥
—त्रिषष्टि० ८।५।७७ से ८३

२६. त्रिषष्टि० ८।५।८४-८६

२७. उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया।
रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः॥
—श्रीमद्भागवत १०।१।३०, पृ० २१६

समय उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी—अरे मूर्ख ! जिसको तू रथ में बैठाकर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवां बालक तुझे मारेगा।[२९]

आकाशवाणी सुनते ही कंस देवकी को मारने के लिए उद्यत हो गया। उसने उसी समय देवकी के केश पकड़ लिए।[३०] उस समय कंस को महाक्रूर कर्म करते हुए देखकर वसुदेव ने कंस को समझाते हुए कहा[३१]—इस समय इसे मारना उचित नहीं है। हे सौम्य ! इस देवकी से तो आपको कुछ भी भय नहीं है, अतः जिन पुत्रों से आपको भय है, वे सभी पुत्र मैं आपको सौंप देता हूँ।[३२]

इस प्रकार वसुदेव ने उस समय दक्षता से कार्य किया। एक महान् अनर्थ होने जा रहा था उसे बचा लिया। कंस ने अपनी बहिन को मारने का संकल्प छोड़ दिया।[३३]

---

२८. चतुः शतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम्।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट् शतम्॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते।
दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः॥
—श्रीमद्भागवत १०।१।३१-३२, पृ० २१६

२९. पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक्।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध॥
—श्रीमद्भागवत १०।१।३४

३०. इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत्॥ ३५।

३१. तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम्।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन्॥ ३६।

३२. नह्यस्यास्ते भयं सौम्य ! यद्वै साहाशरीरवाक्।
पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम्॥ ५४।

३३. स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित्।
वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम्॥ ५५।
—सभी उद्धरण श्रीमद्भागवत १०।१

जैन परम्परा के संदर्भ के :

उस समय भद्दिलपुर नगर में नाग सेठ की सुलसा नामक स्त्री थी,[34] वह मृत बच्चों को जन्म दिया करती थी, अतः उसने हरिणैगमैषी देव की उपासना की। उस पर देव प्रसन्न हुआ। देव देवकी के बच्चों को सुलसा के वहाँ पर रख देता था और सुलसा के मृत बच्चों को देवकी के वहाँ पर रख देता था। देवकी के छहों पुत्र सुलसा के वहां पर अभिवृद्धि को प्राप्त हुए उनके नाम १ अनीकयश, २ अनन्तसेन, ३ अजितसेन, ४ निहतारी, ५ देवयश और ६ शत्रुसेन हुए।[35] जिसका विशेष परिचय अरिष्टनेमि के प्रकरण में दिया गया है। देवकी के मृत छहों पुत्रों के साथ कंस ने नृशंसतापूर्वक वर्ताव किया। कंस अत्यन्त प्रमुदित था कि मेरा प्रयास पूर्ण सफल रहा।

◆

३४. इतश्च भद्दिलपुरे श्रेष्ठीभ्यो नाग इत्यभूत्।
श्रेष्ठिनी सुलसा नाम परमश्रावकी च तौ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।८१

३५. त्रिषष्टि० ८।५।९०-९७

गौकुल और मथुरा में श्रीकृष्ण

- श्रीकृष्ण का जन्म
- शकुनी और पूतना
- यमलार्जुनोद्धार
- बलराम को गौकुल में भेजना
- निमित्तज्ञ का कथन
- कृष्ण का धनुष्य चढ़ाना
- कालिया नाग दमन
- पद्मोत्तर और चम्पक वध
- कंस वध
- सत्यभामा के साथ पाणिग्रहण
- सोमक का आगमन

गोकुल और मथुरा में श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण का जन्म :

श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र रहे हैं। जैन और वैदिक दोनों ही परम्पराओं में मुक्त कंठ से उनके यशोगान गाये गये हैं। दोनों ही परम्पराओं में वे एक महान् व्यक्ति के रूप में उट्टङ्कित किये गए हैं। वैदिक परम्परा में वे विष्णु के अवतार माने गए हैं तो जैन परम्परा में वे श्लाघनीयपुरुष एवं भावी तीर्थंकर स्वीकार किये गए हैं।

जैन दृष्टि से जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आते हैं तब माता देवकी स्वप्न में सिंह, अग्निगज, ध्वजा, विमान, और पद्म सरोवर देखती है।[1]

श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद अष्टमी की अर्धरात्रि को होता है।[2] उस समय सर्वत्र दुःख और अंधकार फैला हुआ था। मौसम भी

---

१. (क) त्रिषष्टि० ८।५।९८

(ख) वसुदेवहिण्डी अनु० पृ० ४८२

२. पुत्रं नभः सिताष्टम्यां निशीथेऽसूत देवकी।
कृष्णं सदेवसान्निध्यं शत्रुदृक्पातघातिनम्॥

—त्रिषष्टि० ८।५।१००

भयावना था। आकाश में काली घटाएं छायी हुई थीं, बिजलियां कड़क रही थीं। प्रचण्ड वर्षा हो रही थी। सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी भयानक तूफान आ रहा था। कंस के क्रूर शासन की काली घटाएं छायी हुई थीं। जरासंध के अत्याचार की बिजलियाँ कड़क रही थीं। दुर्योधन और शिशुपाल जैसी मदान्ध शक्तियाँ भारतीय क्षितिज पर मंडरा रही थीं। 'जिसके पास शक्ति है वही इस धरती का अधिपति है।' शक्तिहीन को जीवित रहने का अधिकार नहीं।' इस मान्यता की भयानकता से सभी का मानस व्यथित था। तात्पर्य यह है कि प्रकृति में ही नहीं, समाज में भी तूफान मचलरहा था। इस अन्तर्बहिर तूफान के बीच श्रीकृष्ण का जन्म होता है। श्रीकृष्ण के पुण्य के प्रभाव से कारागृह के बाहर जो पहरेदार कंस की आज्ञा से पहरा दे रहे थे उन्हें गहरी नींद आजाती है।[3]

महारानी देवकी ने वसुदेव से कहा—पतिराज! कंस ने छल करके हमारे गर्भ के बच्चे मांग लिये थे। इसके पूर्व के मेरे छह बालकों को उसने मार डाला है।[4] इस बच्चे की किसी प्रकार रक्षा करें। आप इस बालक को गोकुल में ले जावें और नन्द के घर रख दें। यह वहीं पर बड़ा होगा।[5]

वसुदेव ने देवकी की बात सुनकर अपनी सहमति प्रकट की। वे उसी समय बालक को लेकर चल दिये। द्वार आदि स्वतः खुलते

---

३. वसुदेवहिण्डी में

४. (क) वसुदेव हिण्डी पृ० ३६८-९ में मारने का स्पष्ट उल्लेख है।

(ख) त्रिपष्टिशलाकापुरुपचरित्र, पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ९०-९७ तक, चउप्पन्नमहापुरिसचरियं—श्लोक ४६-४७ पृ० १८३ और हरिवंशपुराण सर्ग ३५, श्लोक १-१५ के अनुसार देवकी के छह सजीव बालकों को हरिणैगमेसी परिवर्तन करता है और सुलसा के मृत बालकों को देवकी के पास रखता है और कंस उन्हें पछाड़ता है।

(ग) हतेपु पट्सु बालेपु देवक्या औग्रसेनिना।

—भागवतस्कंध, १०, अ० २, श्लोक ४ के अनुसार देवकी के जन्मे हुए बलभद्र के पहले के छः सजीव बालकों को कंस पटक कर मार देता है।

गए। सभी लोग निद्राधीन थे किन्तु दरवाजे पर पिंजरे में बद्ध उग्रसेन उस समय भी जग रहे थे। उन्होंने साश्चर्य पूछा—कौन है? वसुदेव ने धीरे से कहा—कंस का शत्रु है। यह तुम्हें कारागृह से मुक्त करेगा। शत्रु का निग्रह करेगा, किन्तु यह बात अत्यन्त गोपनीय है, किसी से आप कहें नहीं।[६]

वसुदेव बालक को लेकर नन्द के घर पहुँचे। उस समय नन्द की धर्मपत्नी यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया, अतः वसुदेव ने उसे अपना पुत्र दिया और उसके बदले में उसकी पुत्री को लेकर वे पुनः देवकी के पास आये और देवकी को यशोदा की पुत्री दे दी।[७]

वसुदेव ज्योंही देवकी के कमरे से बाहर आये त्योंही द्वारपालों की निद्रा खुल गई। 'कौन जन्मा है',[८] कहते हुए कन्या को देखा।

वे उसी समय बालिका लेकर कंस के पास गये, बालिका को देखकर कंस ने अपनी मूंछों पर हाथ फेरते हुए कहा—अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि देवकी का सातवां गर्भ तुझे मारेगा किन्तु वह तो लड़की के रूप में पैदा हुआ है,[९] मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हो गई। यह बालिका मेरा क्या बिगाड़ सकती है? बालिका में शक्ति कहाँ है?

---

५. नंदस्य गोकुले नीत्वा मुंचेमं मम बालकम्।
गृहे मातामहस्येव तत्र वर्धिष्यते ह्यसौ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।१०२-१०४

६. (क) वसुदेवहिण्डी
(ख) त्रिषष्टि० ८।५॥१०५-११०
(ग) भव-भावना गा० २१९३ से २१९५ पृ० १४६

७. (क) सुतं दत्वा यशोदायै शौरिरादाय तत्सुताम्।
आनीय देवकीपार्श्वे सुतस्थानेऽमुचत् क्षणात्॥११२।
(ख) भव-भावना गा० २१९६-२१९७

८. शौरिश्च निर्ययौ ते च प्रबुद्धाः कंसपूरुषा।
किं जातमिति जल्पंतो ददृशुस्तत्र तां सुताम्॥११३।

९. तां कंसस्यार्पयंस्तेऽथ दध्यौ कंसोऽपि यो मम।
मृत्यवे सप्तमो गर्भः स स्त्रीमात्रमभूदसौ॥११४।
—सभी स्थल त्रिषष्टि० ८।५

संघदास गणी[10] और आचार्य हेमचन्द्र[11] के अनुसार कंस के आदेश से बालिका की नाक काट दी गई, और वह पुनः देवकी को दे दी गई।

आचार्य जिनसेन के अनुसार उसकी नाक चपटी की गई।[12]

श्रीमद्भागवत के अनुसार विष्णु की योगमाया यशोदा के उदर से पुत्री रूप में जन्म लेकर वसुदेव के हाथ देवकी के पास पहुँचती है[A] और देवकी के गर्भ से जन्मे हुए श्रीकृष्ण वसुदेव के हाथ यशोदा के वहाँ पर पहुँचते हैं। उस पुत्री को मारने के लिए कंस पछाड़ता है, पटकता है, पर वह योग माया होकर छिटक जाती है। वह जाती हुई यह उद्घोषणा भी करती है कि तुम्हारा शत्रु तो उत्पन्न हो चुका है।[13]

कंस को कहीं पता न लग जाय कि सातवें गर्भ का बालक जीवित है, अतः एक महीने के पश्चात् देवकी गौपूजन के बहाने गौकुल में जाती है। वहाँ अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होती है। उसके पश्चात् समय-समय पर देवकी गौ

---

१०. (क) वसुदेवहिण्डी

(ख) भव-भावना, २१६६

११. छिन्ननासापुटां कृत्वा देवक्यास्तां समर्पयत्।

—त्रिषष्टि० ८।५।११५

१२. विचिन्त्य शंकाकुलितस्तदेति निरस्तकोपोऽपि स दीर्घदर्शी।
स्वयं समादाय करेण तस्याः प्रणुद्य नासां चिपिटीचकार॥

—हरिवंशपुराण ३५।३२, पृ० ४५२

A श्रीमद्भागवत १०।३।५२

१३. तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम्।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः॥
सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा॥
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत्॥
किं मया हतया मन्द-जातः खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा॥

—श्रीमद्भागवत १०।४।८ से १२ पृ० २३३-३४

पूजा का बहाना लेकर गोकुल में जाती रहती है।[१४] पुत्र के दिव्य तेज को देखकर उसकी प्रसन्नता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगती है। कृष्ण के कान्तिमय श्याम रूप को देखकर बालक का नाम श्रीकृष्ण रखा जाता है।[१५]

जैन और वैदिक दोनों ही परम्परा के ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व को बताने वाली बाल्यकाल की अनेक चामत्कारिक घटनाएं लिखी गई हैं। वे सारी घटनाएं ऐतिहासिक ही हैं, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हम यहाँ इतना ही बताना चाहते हैं कि वे घटनाएं जैन और वैदिक ग्रन्थों में किस-किस रूप में आयी हैं—

शकुनी और पूतना :

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[१६] व भव-भावना के अनुसार सूर्पक विद्याधर की पुत्री शकुनी और पूतना ये दोनों वसुदेव की विरोधिनी थीं। उन्हें किसी तरह ज्ञात हो गया था कि कृष्ण वसुदेव का पुत्र है अतः श्रीकृष्ण को मारने के लिए वे गोकुल में आयीं। शकुनी ने श्रीकृष्ण को जोर से दबाया, भय उत्पन्न करने के लिए जोर से कर्ण-कटु किलकारियां की, किन्तु कृष्ण डरे नहीं अपितु उन्होंने शकुनी को

---

१४. (क) वसुदेवहिण्डी देवकी लम्भक अनुवाद पृ० ४८३

(ख) ततोऽन्विता बहुस्त्रीभिः सर्वतोगोपथेन गाः।
अर्चन्ती गोकुलं गच्छेद्देवक्यपि तथाकरोत्॥
श्री वत्सलांछितोरस्कं नीलोत्पलदलद्युतिम्।
उत्फुल्लपुंडरीकाक्षं चक्राद्यंककरक्रमम्॥
नीलरत्नमिवोन्मृष्टं यशोदोत्संगवर्तिनम्।
ददर्श हृदयानंदं नंदनं तत्र देवकी॥

—त्रिषष्टि० ८।५।११९-१२१

(ग) भव-भावना गा० २२०१-२२०४

१५. त्रिषष्टि० ८।५।११६

१६. (क) त्रिषष्टि० ८।५।१२३-१२६

(ख) भव-भावना गा० २२०६ से २२१० पृ० १४७

ही समाप्त कर दिया। पूतना ने विष-लिप्त स्तन श्रीकृष्ण के मुंह में दिये, पर कृष्ण का बाल बांका न हुआ, वह स्वयं ही मर गई।

आचार्य जिनसेन[१७] के हरिवंशपुराणानुसार एक दिन कंस के हितैषी वरुण नामक निमित्तज्ञ ने उससे कहा—राजन्! यहां कहीं नगर अथवा वन में तुम्हारा शत्रु बढ़ रहा है, उसकी खोज करनी चाहिए। उसके पश्चात् शत्रु के नाश की भावना से कंस ने तीन दिन का उपवास किया, देवियां आयीं और कंस से कहने लगीं कि हम सब आपके पूर्वभव के तप से सिद्ध हुई देवियां हैं। आपका जो कार्य हो वह कहिए। कंस ने कहा—हमारा कोई वैरी कहीं गुप्त रूप से बढ़ रहा है। तुम दया से निरपेक्ष हो शीघ्र ही उसका पता लगाकर उसे मृत्यु के मुंह में पहुँचाओ—उसे मार डालो। कंस के कथन को स्वीकृत कर देवियां चली गईं। उनमें से एक देवी शीघ्र ही भयंकर पक्षी का रूप बनाकर आयी। चोंच द्वारा प्रहार कर बालक कृष्ण को मारने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु कृष्ण ने उसकी चोंच पकड़कर इतने जोर से दबाई कि वह भयभीत हो प्रचण्ड शब्द करती हुई भाग गई। दूसरी देवी प्रपूतन भूत का रूप धारण कुपूतना बन गई और अपने विष सहित स्तन उन्हें पिलाने लगी। परन्तु देवताओं से अधिष्ठित होने के कारण श्रीकृष्ण का मुख अत्यन्त कठोर हो गया था, इसलिए उन्होंने स्तन का अग्रभाग इतने जोर से चूसा कि वह बेचारी चिल्लाने लगी।

श्री मद्भागवत के अनुसार कंस कृष्ण के नाश के लिए पूतना राक्षसी को व्रज में भेजता है वह बालकृष्ण को विषमय स्तन पान कराती है। यह रहस्य श्रीकृष्ण जान जाते हैं अतः वे स्तनपान इतनी उग्रता से करते हैं कि पूतना पीडित होकर वहीं मर जाती है।[१८]

यमलार्जुनोद्धार :

श्रीकृष्ण बड़ी ही चंचल प्रकृति के थे। एक स्थान पर टिककर नहीं रहा करते थे। अतः परेशान होकर यशोदा उनके उदर में एक रस्सी बांध दिया करती थी। एक दिन यशोदा रस्सी बांधकर किसी

---

१७. हरिवंशपुराण ३५।३७ से ४२ पृ० ४५२ से ४५३

आवश्यक कार्य हेतु पड़ौसी के घर गई। उस समय सूर्पक विद्याधर का पुत्र अपने पिता के वैर को स्मरण कर 'यह वसुदेव का पुत्र है' ऐसा सोचकर जहां श्रीकृष्ण खेल रहे थे वहां पर आया और विद्या के बल से उसने दो अर्जुन जाति के वृक्षों का रूप बनाया। श्रीकृष्ण उस वृक्ष के बीच में से गये और उन्होंने उस वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। श्रीकृष्ण के अपूर्व बल से वह उसी क्षण मर गया। श्रीकृष्ण के पेट में डोरी बांधी जाती थी, अतः वे दामोदर के नाम से भी विश्रुत हुए।[१९] आचार्य जिनसेन ने जमल और अर्जुन को देवियां मानी हैं।[२०] श्रीमद्भागवत में भी यमलार्जुनोद्धार की कथा विस्तार के साथ दी गई है।[२१]

---

१८. सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम्।
योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी॥ ४॥
बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्
यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्॥
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं।
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि॥ ७॥
तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्वणं।
घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ॥
गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य त-
त्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत्॥ १०।
निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि॥
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता।
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप॥ १३।

—श्रीमद्भागवत १०।६।४ से १३

१९. (क) तौ धूलिधूसरं कृष्णं मोहान्मूर्ध्नि चुचुंबतुः।
दामोदरेत्यूचिरे च तं गोपा दामबंधनात्॥

—त्रिषष्टि० ८।५।१४१

(ख) भव-भावना गा० २२११-२२१५

२०. यशोदया दामगुणेन जातु यदृच्छयोदूखलबद्धपादः।
निपीडयन्तौ रिपुदेवतागौ न्यपातयन्तौ जमलार्जुनौ सः॥

—हरिवंशपुराण ३५।४५, पृ० ४५३

बलराम को गोकुल भेजना :

वसुदेव ने जब ये सभी घटनाएं सुनीं तो उन्हें भय लगा कि कंस कृष्ण के पराक्रम को जानकर और उसे पहचान कर कहीं उसका अनिष्ट न कर डाले। एतदर्थ उन्होंने शौर्यपुर से अपने बड़े लड़के बलराम को कृष्ण की सहायता के लिए बुलाया और उसे सारा रहस्य समझाकर नन्द और यशोदा को पुत्र रूप में अर्पित किया। बलराम से श्रीकृष्ण ने धनुर्विद्या व अन्य युद्ध कलाएँ आदि सीखीं।[२२] श्रीकृष्ण के रूप, शौर्य और गुणों पर गोकुलवासी अत्यन्त मुग्ध हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोकुल में आनन्दपूर्वक रहते हुए ग्यारह वर्ष पूर्ण किये।[२३]

निमित्तज्ञ का कथन :

एक दिन कंस घूमता-घामता देवकी के भवन में जा पहुंचा। उस समय छेदी हुई नासिका वाली लड़की को देखकर अपने लघु-भ्राता अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी उसे स्मरण हो आयी। उसने उसी समय सभा में जाकर किसी विशिष्ट निमित्तज्ञ को बुलाया और प्रश्न किया—बताओ, मुनि की यह भविष्यवाणी कि 'देवकी का सातवां गर्भ मुझे मारेगा, क्या सत्य है या मिथ्या है?[२४]

---

२१. श्रीमद्भागवत १०।१०।१ से ४३, पृ० २५६-२६३

२२. (क) त्रिषष्टि० ८।५।१४६ से १५३

(ख) हरिवंशपुराण ३५।६४, पृ० ४५६

(ग) भव-भावना २२१७-२२१६

२३. एवं च क्रीडतोस्तत्र गोपयो रामकृष्णयोः।
एकादश समा जग्मुः सुषमाकालवत् सुखम्॥

—त्रिषष्टि० ८।५।१६६

२४. (क) वसुदेवगृहेऽन्येद्युर्देवकीं द्रष्टुमागतः।
तां छिन्नैकघ्राणपुटां कंसः कन्यामुदैक्षत॥
भीतोऽथ कंसो वेश्मैत्यापृच्छन्नैमित्तिकोत्तमम्।
मृत्युर्माद्देवकीगर्भान्मुनिनोक्तं वृथाथ न॥

—त्रिषष्टि० ८।५।२००।२०१

(ख) भव-भावना २३४७ से २३५०

निमित्तज्ञ ने दृढ़ता के साथ कहा—राजन् ! मुनि का कथन कभी भी मिथ्या नहीं होता। वह पूर्ण सत्य है। तुम्हारा अन्त करने वाला, देवकी का सातवां गर्भ उत्पन्न हो गया है और वह किसी स्थान-विशेष पर अभिवृद्धि को प्राप्त हो रहा है। यदि तुम उसकी परीक्षा लेना चाहो तो जो अरिष्टनामक तुम्हारा शक्ति सम्पन्न वृषभ है, केशी नामक जो महान् अश्व है, दुर्दान्त खर और मेष हैं, उन्हें वृन्दावन में खुले छोड़ दो। जो इन चारों को क्रीड़ा करते-करते मार डाले उसे ही तुम देवकी का सातवां गर्भ समझना।[२५]

निमित्तज्ञ ने कुछ देर रुककर पुनः कहा—ज्ञानियों ने बताया है कि भुजा के बल में वासुदेव सामान्य व्यक्तियों से अधिक समर्थ होते हैं। आपका शत्रु वासुदेव है, वह महाक्रूर कालियनाग का दमन करेगा और तुम्हारे पद्मोत्तर व चम्पक नाम के बलिष्ठ हाथियों को भी मारेगा। वही व्यक्ति एक दिन तुम्हारे प्राणों का अन्त करेगा।[२६]

इस प्रकार निमित्तवेत्ता के कथन को श्रवण करते ही कंस के रोंगटे खड़े हो गये। साक्षात् मृत्यु उसकी आंखों के सामने नाचने

---

२५. (क) नैमित्तिकोऽप्यभाषिष्ट न मृषा ऋपिभाषितम्।
सप्तमो देवकी गर्भः क्वचिदस्ति तवांतकृत्॥
अरिष्टो यस्तवोक्षास्ति केशी नाम महाहयः।
खरमेषौ च दुर्दान्तौ मुंच वृन्दावनेऽथ तान्॥
गिरिसारानप्यमून् यस्तत्र क्रीडन् यदृच्छया।
हनिष्यति स हंता ते देवक्याः सप्तमः सुतः॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०२-२०४

(ख) भव-भावना २३५२ से २३५६

२६. (क) अन्यच्च यत्क्रमायातं शार्ङ्गं धन्वत्वदोकसि।
पूज्यमानं त्वज्जनन्या स एवारोपयिष्यति॥
आख्यातं ज्ञानिना यत्तद्भविष्यति भविष्यतः।
दोष्मतो वासुदेवस्य दुःस्पर्शमितरैर्जनैः॥
कालियाहेः स दमकश्चाणूरस्य च घातकः।
पद्मोत्तरं चंपकं च हनिष्यति तव द्विपौ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०५-२०७

(ख) भव-भावना गा० २३५७-२३५९

लगी। वह बुरी तरह घबरा गया। उसने उसी क्षण शत्रु का पता लगाने के लिए अरिष्ट आदि चारों बलवान् पशुओं को वृन्दावन में छोड़ दिया। चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानों को बुलाकर आदेश दिया कि प्रतिदिन व्यायाम आदि कर अपने शरीर को अत्यन्त पुष्ट बनावें।[२७]

अरिष्टनामक बैल ज्योंही वृन्दावन में पहुँचा त्योंही ग्रामवासियों को परेशान करने लगा। वह कभी गायों को त्रस्त करता कभी स्त्री-पुरुषों को। कभी किसी के घर में घुसकर वस्तुओं को हानि पहुँचाता, कभी दही दूध, और घी के बर्तनों को ही फोड़ देता! सभी लोग उसके उपद्रव से त्रस्त हो गये। सभी लोगों ने श्रीकृष्ण और बलराम से फरियाद की। श्रीकृष्ण उसे पकड़ने के लिए ज्योंही सामने गये त्योंही वह क्रोध से नथुने फुलाता हुआ कृष्ण को ही मारने दौड़ा! श्रीकृष्ण ने उसी क्षण दोनों सींग पकड़कर गला मरोड़ा और उसके जीवन का अन्त कर डाला। सारे गोकुलवासी प्रसन्नता से झूम उठे।[२८]

---

२७. (क) स्वारिं ज्ञातुमथो कंसोऽरिष्टादीनमुचद्वने।
चाणूरमुष्टिकौ मल्लावादिदेश श्रमाय च॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२०८

(ख) भव-भावना २३६०-२३६२

२८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२०९-२१६

(ख) कण्होऽवि रामसहिओ कीलंतो भमइ तम्मि गोट्ठम्मि।
अह अन्नया य सरओ समागओ परमरमणिज्जो॥
अह सो अरिट्ठवसहो अरिट्ठफलसन्निभोकसिणदेहो।
कालोव्व परिभमंतो समागओ तम्मि गोट्ठम्मि॥
मयमत्तो सो बलवं ढिक्कियसद्देण सयलगोवग्गं।
वित्तासइ गोवियणं मारइ गेहाइं भंजेइ।
इअ असमंजसकारी दिट्ठो कण्हेण सो महावसहो।
तो तयभिमुहो धावइ वारिज्जंतोऽवि गोवीहिं॥
जो कोडिसिलं उक्खिवइ तस्स किं गणणमेक्कगोमेत्ते
तो लीलाए सह तेण जुज्झए विविहभंगेहिं

कृष्ण का धनुष्य चढ़ाना :

एक दिन श्रीकृष्ण वृन्दावन में क्रीडा कर रहे थे। उस समय कंस का केशी नामक अश्व यमराज की तरह हिनहिनाता हुआ वहां पर आया। लोगों को वह मारने लगा। गर्भिणी गायों को नष्ट करने लगा। कृष्ण ने देखा वृन्दावनवासी उसके उपद्रवों से घबरा रहे हैं। श्रीकृष्ण ने उसे उसी क्षण मार दिया।[२९]

इसी तरह खर और मेंढा को भी उन्होंने समाप्त कर दिया।[३०] इन पशुओं को समाप्त क्या किया, मानो कंस को ही समाप्त कर दिया हो, इस प्रकार कंस को भय लगने लगा। तथापि अपने शत्रु की अच्छी तरह से परीक्षा लेने के लिए उसने शार्ङ्ग धनुष्य की पूजा का आयोजन किया। शार्ङ्ग धनुष्य के पास अपनी बहिन सत्यभामा को बिठलाया, साथ ही कंस ने यह उद्घोषणा की कि जो इस शार्ङ्ग धनुष्य को चढ़ाएगा, उसी के साथ सत्यभामा का पाणिग्रहण किया जायेगा।[३१] शार्ङ्ग धनुष्य के महोत्सव में अनेक राजा गण उपस्थित हुए।

वसुदेव की एक पत्नी मदनवेगा का पुत्र अनाधृष्टि भी उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए शौर्यपुर से मथुरा के लिए प्रस्थित

पुच्छे धरिऊण चिरं भामइ कोऊहलेण अह पच्छा।
कुच्छीए हओ मुट्ठीए तह इभो जह गओ निहणं॥
पीणपओहरवच्छत्थलाहिं हरिसागयाहिं गोवीहिं।
आलिंगिज्जइ कण्हो पुणो-पुणो पयडरागाहिं॥

—भव-भावना २३६८-२३७५

२९. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२१७-२२०
(ख) भव-भावना २३७६-२३७७

३०. (क) कंसस्य खरमेषौ तु तत्राटंतौ खरौजसौ।
अन्येद्युर्लीलया कृष्णो निजघान महाभुजः॥

—त्रिषष्टि० ८।४।२२१

(ख) भव-भावना २३८१

३१. त्रिषष्टि० ८।५।२२३-२२४

हुआ। वह सीधा ही गौकुल में आया। वहां बलराम और श्रीकृष्ण को देखकर एक रात्रि विश्रान्ति के लिए रुका। प्रातः मथुरा का मार्ग दिखाने के लिए श्रीकृष्ण को साथ लेकर रथ पर आरूढ़ हो चला। मार्ग वृक्षों से आक्रान्त था। उस संकरे रास्ते पर रथ बड़ी कठिनता से बढ़ रहा था। एक बड़े वृक्ष से रथ टकरा गया, और वहीं फंस गया। अनाधृष्टि ने पूरा जोर लगाया पर निकल न सका। उसके निराश हो जाने पर श्रीकृष्ण ने वृक्ष को सहज ही उखाड़कर एक तरफ फेंक दिया और रथ का मार्ग सुगम बना दिया। अनाधृष्टि श्रीकृष्ण के पराक्रम को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। रथ से नीचे उतरकर वह श्रीकृष्ण से प्रेमपूर्वक मिला। कृष्ण को साथ लेकर यमुना नदी में से होकर सीधे मथुरा में, जहां सभामण्डप था, पहुँचा। धनुष्य के पास अतिशय रूपवती सत्यभामा बैठी थी। अनाधृष्टि ने धनुष्य चढ़ाने के लिए बहुत श्रम किया, पर वह धनुष्य को चढ़ा न सका। उसी समय श्रीकृष्ण उठे और उन्होंने लीलामात्र से ही शार्ङ्ग धनुष्य चढ़ा दिया। वसुदेव के संकेत से अनाधृष्टि और श्रीकृष्ण शीघ्र ही वहां से रवाना हो गये।

सर्वत्र यह वार्ता प्रसारित हो गई कि नन्द के पुत्र ने शार्ङ्ग धनुष्य को चढ़ा दिया। कंस ने जब यह सुना तो उसे अपार दुःख हुआ।[३२]

प्रस्तुत प्रसंग जिनसेन के हरिवंशपुराण में अन्य रूप से चित्रित किया गया है। कंस गौकुल में गया, पर वहां उसे कृष्ण नहीं मिले तब वह मथुरा लौट आया। उसी समय यहां सिंहवाहिनी नागशय्या, अजितंजय नामक धनुष और पाञ्चजन्य नामक शंख ये तीन अद्‌भुत पदार्थ प्रकट हुए। कंस के ज्योतिषी ने बताया कि 'जो कोई नागशय्या पर चढ़कर धनुष पर डोरी चढ़ा दे और पांचजन्य शंख को फूंक दे वही तुम्हारा शत्रु है।' ज्योतिषी के कहे अनुसार कार्य करने वाले कंस ने अपने शत्रु की तलाश करने के लिए आत्मीय-जनों के द्वारा नगर में यह घोषणा करा दी कि जो कोई यहां आकर सिंहवाहिनी नागशय्या पर चढ़ेगा, अजितंजय धनुष पर डोरी

---

३२. (क) त्रिपष्टि० ८।५।२२३-२४२

(ख) भव-भावना गा० २३८५-२३६७

चढ़ाएगा और पाञ्चजन्य शंख को मुख से पूर्ण करेगा—फूँकेगा वह पुरुषों में उत्तम तथा सबके पराक्रम को पराजित करने वाला समझा जायेगा। पुरुषों के अन्तर को जानने वाला कंस उस पर बहुत प्रसन्न होगा, अपने आपको उसका मित्र समझेगा तथा उसके लिए अलभ्य इष्ट वस्तु देगा।

कंस की यह घोषणा सुनकर अनेक राजा मथुरा आये, नागशय्या पर चढ़ने का प्रयत्न किया परन्तु भयभीत हो, लज्जित हो चले गये। एक दिन कंस की स्त्री जीवयशा का भाई भानु किसी कार्य वश गोकुल गया। वहां कृष्ण का अद्भुत पराक्रम देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें अपने साथ मथुरा ले गया।

यहां, जिसके समीप का प्रदेश अत्यन्त सुसज्जित था, जिसका पृष्ठ भाग चन्द्रमा के समान उज्ज्वल था, एवं जिसके ऊपर भयंकर सर्पों के फण लहलहा रहे थे, ऐसी महानागशय्या पर कृष्ण साधारण शय्या की तरह शीघ्र चढ़ गए। तदनन्तर उन्होंने सांपों के द्वारा उगले हुए धूम को बिखेरने वाले धनुष्य को प्रत्यञ्चा से युक्त किया और अपनी घोर टंकार से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर देने वाले शंख को अनायास ही पूर्ण कर दिया। कृष्ण का अपार पराक्रम देख बलराम को शंका हुई और उन्होंने उसी समय अपने विश्वस्त व्यक्तियों के साथ श्रीकृष्ण को व्रज भेज दिया।[33]

कंस ने शार्ङ्ग धनुष के महोत्सव के बहाने पहलवानों के बाहु-युद्ध का आयोजन किया। वसुदेव ने कंस की दुर्भावना समझ ली। उन्होंने उसी समय अपने ज्येष्ठ बन्धुओं को तथा अक्रूर आदि सभी पुत्रों को वहां पर बुलाया। सभी का यथोचित सत्कार कर उन्हें योग्य आसन पर बिठाया।[34]

मल्लयुद्ध की वार्ता को सुनकर श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा—भैया! हम भी मथुरा चलें और मल्ल युद्ध देखें। बलराम ने यशोदा को स्नान के लिए पानी तैयार करने को कहा। पर यशोदा ने पानी तैयार नहीं किया। वह शान्त बैठी रही। तब बलराम ने

---

३३. हरिवंशपुराण ३५।७१-७९, पृ० ४५७-४५८

३४. त्रिषष्टि० ८।५।२४४-२४६

क्रोध से कहा—यशोदा ! क्या तू पूर्व के दासीभाव को भूल गई है जिससे हमारी आज्ञा का पालन करने में विलम्ब कर रही है ?'[३५]

वलभद्र की वात को सुनकर कृष्ण मुरझा गये। मन-ही-मन सोचने लगे कि भाई वलभद्र ने ऐसी वात कैसे कही ? इसी वीच वलभद्र ने कहा—अच्छा कृष्ण, चलो, हम यमुना में स्नान करने के लिए चलें। दोनों यमुना नदी पर पहुँचे, किन्तु कृष्ण का मुरझाया हुआ चेहरा देखकर वलभद्र ने पूछा—क्या वात है, इतने उदास क्यों हो गये हो ?'

कृष्ण—भाई वलभद्र ! तुमने मेरी मां को दासी कैसे कहा ?[३६]

वलभद्र ने आदि से अन्त तक सारी रामकहानी सुनादी कि तुम किनके पुत्र हो, और यहां पर किस कारण से गुप्त रूप से रहना पड़ रहा है। तब श्रीकृष्ण ने कंस को मारने की प्रतिज्ञा ग्रहण की।[३७]

कालिया नाग दमन :

श्रीकृष्ण ने ज्योंही स्नान करने के लिए यमुना नदी में प्रवेश किया, कालिया नाग श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा। उसकी मणि के प्रखर प्रकाश से सारा पानी प्रकाशित हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे कमल नाग की तरह पकड़ लिया, और उसकी नासिका नाथ कर

---

३५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२४८-२५१
(ख) भव-भावना २४०३-२४०५

३६. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२५२-२५४
(ख) भव-भावना २४०६

३७. (क) रामाभिरामं रामोऽपि निजगाद जनार्दनम्।
न ते यशोदा जननी नंदश्च जनको न च॥
किन्तु ते देवकी माता सा देवकनृपात्मजा।
विश्वैकवीरसुभगो वसुदेवश्च ते पिता॥
तच्छ्रुत्वा कुपितः कृष्णः कृष्णवर्त्मेव दारुणः।
प्रत्यज्ञासीत् कंसवधं नद्यां स्नातुं विवेश च॥
—त्रिषष्टि० ८।५।२५५-२६१
(ख) भव-भावना २४१८

उसके साथ क्रीडा करते रहे। कालिया नाग के उपद्रव को उन्होंने शान्त किया[३८] और स्नान करके मथुरा की ओर चले।

हरिवंशपुराण के अनुसार कृष्ण का अन्त करने की भावना से कंस ने कमल लाने के लिए समस्त गोपों के समूह को यमुना के उस ह्लद के सन्मुख भेजा जो प्राणियों के लिए अत्यन्त दुर्गम था, और जहां विषम सांप लहलहाते रहते थे।

अपनी भुजाओं के बल से सुशोभित कृष्ण अनायास ही उस ह्लद में घुस गये और कालिय नामक नाग का, जो कुपित होकर सामने आया था, महाभयंकर, फणपर स्थित मणियों की किरणों के समूह से अग्नि के स्फुलिंगों की शोभा को प्रकट रहा था, तथा अत्यन्त काला था, उन्होंने शीघ्र ही मर्दन कर डाला।[३९] नदी के किनारे पर गोप वाल जय जय कार करने लगे। श्रीकृष्ण कमल को तोड़कर वायु के समान शीघ्र ही तट पर आगए और वे कमल कंस के सामने उपस्थित किए गए। उन्हें देखकर कंस घबरा गया। उसने आज्ञा दी कि नन्द गोप के पुत्र सहित समस्त गोप अविलम्ब मल्लयुद्ध के लिए तैयार हो जावें।[४०]

वसुदेव ने कंस की दुष्ट भावना समझ ली थी। उन्होंने अपने बड़े भाइयों को शीघ्र ही मथुरा बुलाने का सन्देश भेज दिया, और वे सभी वहां आगए।[४१]

बलभद्र ने गौकुल जाकर श्रीकृष्ण के सामने ही यशोदा से कहा—जल्दी स्नान कर! क्यों इतना विलम्ब कर रही है। तू अपने शरीर को ही संभालने में भूली हुई है। अनेक बार कहने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ती!

चिरकाल तक साथ-साथ रहने पर भी बलभद्र ने यशोदा से ऐसे कटुवचन कभी नहीं कहे थे। इस कारण यह वचन सुनकर वह बहुत ही चकित और भयभीत हुई। उसने बलभद्र से कुछ भी नहीं कहा किन्तु उसके नेत्रों से आंसू निकल आये। वह चुपचाप शीघ्र स्नान कर भोजन बनाने लगी। इधर बलभद्र और श्रीकृष्ण दोनों स्नान के लिए नदी पर चले गये।[४२]

वहां श्रीकृष्ण के म्लान मुख को देखकर बलभद्र कारण पूछते हैं। तब कृष्ण कहते हैं—मेरी माता यशोदा को तुमने ऐसे कठोर शब्द क्यों कहे? प्रत्युत्तर में बलभद्र कृष्ण को माता पिता आदि का सम्पूर्ण परिचय देते हैं।[४३] स्नान कर पुनः घर आते हैं और भोजन कर वस्त्रादि पहन मथुरा जाते हैं।[४४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार कालिय नाग की घटना जिस दिन घटित होती है उसी दिन श्रीकृष्ण मथुरा जाते हैं। हरिवंशपुराण के अनुसार वह घटना पहले होती है। कंस की प्रेरणा से कमल के लिए कृष्ण के जाने की घटना भी त्रिषष्टिशलाकापुरुष में नहीं है।

पद्मोत्तर और चंपक वध :

श्रीकृष्ण और बलभद्र दोनों ही भाई गोप बालकों से घिरे हुए मथुरा नगरी के मुख्य द्वार पर पहुँचे। उस समय द्वार पर ही कंस ने पद्मोत्तर और चम्पक नामक हाथी तैयार करवा रखे थे। महावतों को आज्ञा दे रखी थी कि नन्द के पुत्र कृष्ण और बलभद्र ज्यों ही प्रवेश करें त्यों ही उन्हें हाथी से कुचलवा कर मार डालना। महावत की प्रेरणा से पद्मोत्तर नामक हाथी श्रीकृष्ण की ओर लपका।

---

४२. हरिवंशपुराण ३६-१६ से १८, पृ० ४६१

४३. हरिवंशपुराण ३६।१६ से २५, पृ० ४६२

४४. वहीं० ३६।२६ से ३०, पृ० ४६२

श्रीकृष्ण ने उछलकर उसके दांत पकड़े, और दांतों को खींचकर मुष्टि के प्रहार से उसे वहीं समाप्त कर दिया। चम्पक बलभद्र की ओर बढ़ा तो बलभद्र ने भी उसी प्रकार उसे मार डाला। दोनों के अतुल बल को देखकर नगरवासी आश्चर्य चकित रह गये।[४५] नगरवासी एक दूसरे को बताने लगे कि अरिष्ट आदि वृषभ को मारने वाले और पद्मोत्तर व चम्पक हाथी को मारने वाले ये नन्द के पुत्र कृष्ण और बलभद्र हैं। दोनों भाई जहां मल्लों का अखाड़ा था वहां पहुँचे और खाली आसन पर जाकर बैठ गये।[४६] बलभद्र ने संकेत मात्र से कृष्ण को सभी का परिचय दे दिया।[४७]

कंस वध :

कंस की आज्ञा से प्रथम अनेक मल्ल परस्पर युद्ध करने लगे। एक दूसरे को पराजित करने के लिए अनेक दावपेंच दिखलाते हुए जन-समूह का मनोरंजन करने लगे। अन्त में चाणूर मल्ल खड़ा हुआ। उसने सभी राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा किन्तु कोई भी राजा उससे युद्ध करने को प्रस्तुत नहीं हुआ। चाणूर ने दुबारा कहा—क्या कोई भी मेरे साथ मल्ल युद्ध करने को तैयार नहीं है? यह ललकार सुनते ही श्रीकृष्ण अखाड़े में उतर पड़े। लोगों ने आवाज लगाई—कहां चाणूर और कहां दूधमुंहा बच्चा? लोग इस विषम युद्ध का विरोध करने लगे। किन्तु उसी समय कंस गरजा—इन्हें यहां किसने बुलाया था। ये यहां आए ही क्यों? अब तो यह कुश्ती होगी ही।[४८]

कृष्ण ने लोगों से कहा—आप घबराइये नहीं। देखिए, अभी

---

४५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२६६-२६९
(ख) भव-भावना २४२५ से २४२९, पृ० १६२
(ग) हरिवंशपुराण ३६।३२-३५, पृ० ४६४

४६. भव-भावना गा० २४३१-२४३२

४७. (क) हरिवंशपुराण ३६।३६, पृ० ४६४
(ख) त्रिषष्टि० ८।५।२७२

४८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२७४-२८३
(ख) भव-भावना २४३५-२४४२, पृ० १६३

इसकी भुजाओं का मद उतारता हूँ। इतने में दूसरा मल्ल मुष्टिक भी अखाड़े में कूद पड़ा। तब उससे लड़ने के लिए वलराम अखाड़े में उतरे। दोनों में भयंकर मल्लयुद्ध हुआ। कृष्ण और वलराम ने क्रमशः चाणूर और मुष्टिक को तृण के ढेर की तरह उछालकर एक तरफ फेंक दिया। चाणूर उठा। उसने श्रीकृष्ण के उरुस्थल पर जोर से मुष्टि का प्रहार किया। मुष्टि के प्रहार से श्रीकृष्ण वेहोश हो गये।[४९] कृष्ण को वेहोश देखकर कंस प्रसन्न हुआ। उसने आंख से चाणूर को संकेत किया कि इसे मार डालो। वह श्रीकृष्ण को मारने के लिए उद्यत हुआ त्यों ही वलदेव ने उस पर ऐसा जोर का प्रहार किया कि चाणूर दूर जाकर गिर पड़ा। कुछ ही क्षणों में श्रीकृष्ण पुनः तैयार हो गये। उन्होंने चाणूर को फिर से ललकारा। दोनों भुजाओं के वीच में डालकर उसे ऐसा दवाया कि चाणूर को रक्त का वमन होने लगा। आंखें फिर गईं और कुछ ही क्षणों में वह निर्जीव हो गया।[५०]

चाणूर को मरा हुआ देखकर कंस चिल्ला उठा—इन अधम गोप वालकों को मार दो। इनका पोषण करने वाले नन्द को भी समाप्त कर दो। उसका सर्वस्व लूटकर यहां ले आओ और जो नन्द का पक्ष लें उन्हें भी मार डालो।[५१]

कंस की यह वात सुनते ही श्रीकृष्ण के नेत्र क्रोध से लाल सुर्ख हो गये। उनके रोम-रोम में से आग वरसने लगी। वे वोले—अरे नराधम! चाणूर मर गया तथापि तू अपने आपको मरा हुआ नहीं समझता है? मुझे मारने से पहले तू अपने प्राणों की रक्षा कर। इतना कहकर और सिंह की तरह उछलकर श्रीकृष्ण मंच पर चढ़

---

४९. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२८४-२९५
(ख) भव-भावना २४४३-२४५६
(ग) हरिवंशपुराण में कृष्ण के वेहोश होने का वर्णन नहीं है।
५०. (क) त्रिषष्टि० ८।५।२९६-३००
(ख) भव-भावना २४५७-२४६१
५१. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३०१-३०२
(ख) भव-भावना २४६२-२४६४

गये। केशों को पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया। उसका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा! कृष्ण बोले—अरे दुष्ट! तूने अपनी रक्षा के लिए व्यर्थ ही गर्भ-हत्याएं कीं, पर याद रख अब तू भी बचने वाला नहीं है।

उधर बलराम ने मुष्टिक को भी मार डाला था। कंस हताश था।

कंस की रक्षा के लिए उसके सैनिक हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर कृष्ण को मारने के लिए तैयार हुए कि बलराम ने मंच के एक खंभे को लेकर उन सभी को भगा दिया। उधर श्रीकृष्ण ने कंस के मस्तिष्क पर पैर रखा और उसे मार दिया। जैसे दूध में से मक्खी बाहर निकाल कर फेंक दी जाती है वैसे ही उसे मण्डप में से बाहर फेंक दिया।[५२] हरिवंशपुराण के अनुसार कंस स्वयं तलवार लेकर कृष्ण को मारने आता है तब कृष्ण ने उसकी तलवार छीन ली, और बाल पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़कर मार दिया।[५३]

कंस ने पहले से ही जरासंध के सैनिकों को अपनी रक्षा के लिए बुला रक्खा था। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि कंस की यह स्थिति हो गई। तब वे कृष्ण और बलराम को मारने के लिए आये। उसी समय समुद्रविजय आदि दशार्ह युद्ध करने के लिए कृष्ण की ओर से मैदान में कूद पड़े। समुद्रविजय आदि को देखकर जरासंध के सैनिक भाग गये।[५४]

समुद्रविजयजी की आज्ञा से अनाधृष्टि बलराम और श्रीकृष्ण को रथ में बैठाकर वसुदेव के घर पर लेकर आये। वसुदेव ने आधे

---

५२. (क) कृष्णोऽपि पादं शिरसि न्यस्य कंसं व्यपादयत्।
केशैः कृष्ट्वाक्षिपद्रंगाद्बहिस्तं दार्विवार्णवः॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३१३०

(ख) भव-भावना, २४६५-२४७७

५३. अभिपतदरिहस्तात्खड्गमाक्षिप्य केशे-
ष्वतिदृढमतिगृह्याहत्य भूमौ सरोषम्॥
विहितपरुपपादाकर्षणस्तं शिलायां।
तदुचितमिति मत्वा स्फाल्य हत्वा जहास॥
—हरिवंशपुराण ३६।४५, पृ० ४६५

आसन पर बलराम को और गोद में श्रीकृष्ण को बिठाया। प्यारे पुत्र के मिलन से वसुदेव के रोम-रोम में प्रसन्नता छलक रही थी। वसुदेव के अन्य ज्येष्ठ भ्राताओं ने पूछा—भाई, ये दोनों बालक कौन हैं ? वसुदेव ने अतिमुक्तकुमार की भविष्यवाणी आदि समग्र पूर्वकथा सुनादी।[५५]

यादवों ने कहा—अरे वसुदेव ! आप स्वयं महान् शक्तिसम्पन्न हैं, फिर आपके ही सामने आपके जनमते हुए बच्चों को कंस ने मार दिया ! यह सब आपने कैसे सहन किया।

वसुदेव—मैं जन्म से ही सत्यव्रत का पालक रहा हूं, उस व्रत की सुरक्षा के लिए मुझे यह सारा अत्याचार सहन करना पड़ा। देवकी के अत्याग्रह से मैं नन्द की लड़की यहां लाया, और कृष्ण को नन्द के घर छोड़ आया।[५६]

सभी यादवों की सम्मति से उग्रसेन को कारागृह से मुक्त कर दिया गया तथा कंस का अग्निसंस्कार किया गया।[५७]

कंस की पत्नी जीवयशा ने जब सुना कि उसके पति को कृष्ण ने मार डाला है तो वह आपे से बाहर हो गई। क्रोध से दांत पीसने लगी और मुंह से बड़बड़ाने लगी—"मैं यादव कुल का नाश कर दूंगी। मेरे पति की हत्या की गई है।" वह वहां से भागकर अपने पिता प्रतिवासुदेव जरासंध के पास पहुँची। रोते और विलखते हुए उसने

---

५४. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३१४-३१६
(ख) हरिवंशपुराण ३६।४६-४७, पृ० ४६६
(ग) भव-भावना २४७८-२४७९

५५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३१८-३२०
(ख) भव-भावना २४८०-२४८६

५६. वसुदेवोऽप्युवाचैवमाजन्म परिपालितम्।
सत्यव्रतं त्रातुमहं दुःकर्मेदं विसोढवान्।
देवक्याश्चाग्रहेणायं कृष्णः प्रक्षिप्य गोकुले।
यमारक्षि नंदसुतां संचार्येमां वराकिकाम्॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३२३-३२६

५७. त्रिषष्टि० ८।५।३२८-३२९

अपने पिता को सारी करुण-कहानी सुनाई। जरासंध ने कहा—अरे जीवयशा! कंस ने पहले ही गलती की। जब अतिमुक्त मुनि से उसे भविष्य मालूम हो गया था तब देवकी को ही समाप्त कर देना था। 'न बांस रहता और न बांसुरी बजती।' अब भी तू चिन्ता न कर। मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूंगा।[५८]

सत्यभामा के साथ पाणिग्रहण :

श्रीकृष्ण और बलदेव के कहने से समुद्रविजय जी ने उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया। उग्रसेन ने अपनी पुत्री सत्यभामा का पाणिग्रहण श्रीकृष्ण के साथ कर दिया।[५९] हरिवंशपुराण के अनुसार विद्याधरों के राजा सुकेतु ने अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ कृष्ण का विवाह किया।[६०]

सोमक का आगमन :

जीवयशा की प्रेरणा से जरासंध ने सोमक नामक राजा को बुलाया। उसे सारी स्थिति समझाते हुए कहा कि तुम समुद्रविजय जी के पास जाकर कहो कि कंस के शत्रु बलराम और श्रीकृष्ण को हमें सौंप दो। नहीं सौंपोगे तो तुम्हें जरासंध का कोपभाजन बनना पड़ेगा।

सोमक ने जाकर समुद्रविजय जी को जरासंध का सन्देश सुनाया।[६१]

उत्तर में समुद्रविजय जी ने कहा—कंस ने बलराम और कृष्ण के निरपराध भाइयों की हत्या की थी अतः भाइयों के वध के अपराधी कंस को यदि इन्होंने मारा तो इसमें कृष्ण और बलराम का क्या अपराध है? ये दोनों निर्दोष हैं।[६२]

---

५८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३३५-३३८
(ख) हरिवंशपुराण ३६।६५-६६

५९. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३३३-३४
(ख) भव-भावना

६०. हरिवंशपुराण ३६।५३-६१, पृ० ४६७-६८

६१. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३४०-३४३
(ख) भव-भावना २५००-२५०२

सोमक—स्वामी की आज्ञा का पालन करना आपका कर्त्तव्य है।

श्रीकृष्ण ने बीच में ही गरज कर कहा—जरासंध हमारा स्वामी नहीं है। आज तक हम उसकी आज्ञा स्नेह से मानते रहे, पर अब हम उसकी आज्ञा को नहीं मानेंगे। वह भी एक प्रकार से कंस का ही साथी है।[६३]

सोमक—समुद्रविजय ! तुम्हारा यह लड़का तो कुलांगार है ?

अनाधृष्टि ने बीच में ही उसकी बात को काटते हुए कहा—अरे सोमक ! हम तेरे अमर्यादित वचनों को कदापि सहन नहीं कर सकते। तू अहंकार से फूल रहा है। पर हम तेरा मिथ्या अहंकार एक क्षण में नष्ट कर देंगे।

तिरस्कृत किया हुआ सोमक वहां से उलटे पैरों लौट गया।[६४]

●●

---

६२. त्रिषष्टि० ८।५।३४४-३४७

६३. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३५१-५२

(ख) भव-भावना २५११

६४. त्रिषष्टि० ८।५।३५७

द्वारिका में श्रीकृष्ण

- मथुरा से प्रस्थान
- कालकुमार की मृत्यु
- द्वारिका का निर्माण
- कुबेर द्वारा कृष्ण को उपहार भेंट
- रुक्मिणी
- अग्रमहिषियां
- सत्यभामा
- पद्मावती
- गौरी
- गांधारी
- लक्ष्मणा
- सुसीमा
- जाम्बवती
- रुक्मिणी
- राधा
- प्रद्युम्न
- प्रद्युम्न का वैदर्भी से विवाह

द्वारिका में श्रीकृष्ण

●

मथुरा से प्रस्थान :

श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार दूसरे दिन समुद्रविजयजी ने अपने सभी भाइयों को बुलाया और परस्पर मंत्रणा की कि हमें अब क्या करना चाहिए ? जरासंध से हमने विग्रह किया है, उसका परिणाम शीघ्र आने वाला है।

परम हितैषी क्रोष्टुकी निमित्तज्ञ को बुलाकर उन्होंने अपने भविष्य के सम्बन्ध में पूछा कि जरासंध के साथ जो विग्रह प्रारंभ हुआ है उसका परिणाम क्या आयेगा ?[1]

क्रोष्टुकी ने कहा—कुछ समय के पश्चात् ये महान् पराक्रमी बलराम और श्रीकृष्ण जरासंध को मारकर तीन खण्ड के अधिपति होंगे, पर यहाँ रहना आप सभी के लिए हितावह नहीं है। इस समय आप पश्चिम दिशा के समुद्र की ओर जाओ। वहां जाते ही आपके शत्रुओं का नाश होगा, मार्ग में जाते-जाते जहां सत्यभामा दो पुत्रों को एक साथ जन्म दे, वहीं नगरी बसाकर रहना। वहां पर आपका कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा।[2]

---

१. त्रिषष्टि० ८।५।३५८-३५९

२. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३६०-६२

(ख) भव-भावना २५२०-२५२४

क्रोष्टुकी के कहने से समुद्रविजय ने उग्रसेन सहित मथुरा और सौर्यपुर छोड़कर विन्ध्याचल की ओर प्रस्थान किया।

इधर सोम राजा ने जरासंध को सारा वृत्तान्त सुनाया। कहा—यादव किसी भी प्रकार कृष्ण और बलराम को देंगे नहीं। वे आपको चुनौती देते हैं, कहते हैं—आप हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं? कंस की तरह हम जरासंध को भी यमधाम पहुँचा देंगे।

कालकुमार की मृत्यु :

जरासंध यादवों की उद्धतता को देखकर क्रोध से तिलमिला उठा। उसने मेघ-गंभीर गर्जना करते हुए कहा—यादव मेरे सामने किस बाग की मूली हैं। मैं उन्हें समाप्त कर दूंगा। उसने उसी समय अपने पुत्र कालकुमार को विराट् सेना के साथ रवाना किया। कालकुमार ने प्रतिज्ञा ग्रहण की कि चाहे यादव अग्नि में प्रवेश कर गये हों, या किसी पर्वत की गुफा में छिप गये हों, कहीं पर भी क्यों न हों, मैं उन्हें पकड़कर मार दूंगा।' कालकुमार यादवों का पीछा करता हुआ विन्ध्याचल की अटवी में पहुँच गया, जहां से यादव जा रहे थे। कालकुमार को सन्निकट आया हुआ जानकर श्रीकृष्ण के रक्षक देवों ने एक द्वार वाले विशाल दुर्ग का निर्माण किया, और

टिप्पणी—हरिवंशपुराण के अनुसार जीवयशा के द्वारा सूचना मिलते ही जरासंध ने यादवों को मारने के लिए अपने काल-यवन नामक पुत्र को भेजा, उसके साथ यादवों ने सत्तरह बार युद्ध किया। अन्त में अतुल मालावत पर्वत पर वह मर गया, उसके बाद जरासंध ने अपने भाई अपराजित को भेजा, उसने यादवों के साथ तीन सौ छयालीस बार युद्ध किया। अन्त में वह भी कृष्ण के बाणों से मारा गया। कृष्ण और बलभद्र आनन्द-पूर्वक मथुरा में वास करते रहे। अपराजित के निधन के समाचार सुनकर जरासंध युद्ध के लिए प्रस्थान करता है तब पाण्डव मथुरा छोड़कर द्वारिका की ओर जाते हैं। देखो—हरिवंशपुराण सर्ग ३६।६५-७५ और सर्ग ४०।१-२३

उसमें स्थान-स्थान पर चिताएं जलती हुई दिखाई गईं। एक वृद्धा रोती हुई वहां पर खड़ी थी। कालकुमार ने पूछा—यह क्या है? वृद्धा ने आंसू बहाते हुए कहा—कालकुमार के भय से बलराम, श्रीकृष्ण और दशार्ह सभी इसमें जलकर मर गये। मैं भी अब इस चिता में जलकर मर जाऊंगी।[3]

उस बुढ़िया से कालकुमार ने कहा—मैंने पिताजी व बहिन जीवयशा के सामने प्रतिज्ञा ग्रहण की है कि यदि वे अग्नि में जल गये होंगे तो भी मैं उसमें से निकाल दूंगा, उन्हें नष्ट करूंगा। मैं सत्यप्रतिज्ञ हूं, अतः यादवों को मारने के लिए अग्नि में प्रवेश करता हूँ। यह कहकर वह जलती हुई चिता में कूद पड़ा।[४] सेनापति के अभाव में सेना असहाय हो गई। वह उलटे पैरों लौटकर पुनः जरासंध के पास आयी। जरासंध पुत्र के निधन के समाचार को सुनकर चिन्तातुर हो गया। सैनिकों ने जरासंध को यह भी बताया कि हमारे देखते ही देखते वह दुर्ग एवं चिताएं सभी विलीन हो गई।[५]

यादव दल ने आगे बढ़ते हुए जब कालकुमार की बात सुनी तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए। यादवों ने एक स्थान पर डेरा डाला। उस समय वहां पर अतिमुक्त नामक चारण मुनि आये। समुद्रविजय जी ने भक्तिभाव से मुनि को नमन किया और विनम्रतापूर्वक पूछा—भगवन्! इस विपत्ति में हमारा क्या होगा?[६]

---

३. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३६७-३७६
(ख) भव-भावना २५२६-२५३५

४. त्रिषष्टि० ८।५।३७८-३८०

नोट—हरिवंशपुराण के अनुसार स्वयं जरासंध ही युद्ध के लिए आता है पर इस प्रकार दृश्य देखकर शत्रु के नष्ट होने से उसके मन में सन्तोष होता है और वह पुनः राजगृह लौट जाता है। देखिए—

—हरिवंशपुराण ४०।२८-४३, पृ० ४६६-६७

५. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३८२-३८४
(ख) भव-भावना २५३६

६. त्रिषष्टि० ८।५।३८६-३८७

मुनि ने कहा—राजन् ! तुम्हें किञ्चित् मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे पुत्र अरिष्टनेमि बावीसवें तीर्थंकर हैं जो महान् पराक्रमी व भाग्यशाली हैं। बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः बलदेव और वासुदेव है। वे द्वारिका नगरी बसाएँगे, और जरासंध का वध कर तीन खण्ड के अधिपति होंगे। यह सुनकर सभी यादव प्रसन्न हुए। मुनि वहां से अन्यत्र चले गये।[७]

द्वारिका का निर्माण :

वहां से समुद्रविजय सौराष्ट्र में आये। रैवतक गिरि की वायव्य दिशा में यादवों ने अपनी छावनी डाली। वहां पर सत्यभामा के भानु और भामर दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो तेज से सम्पन्न थे। फिर कोष्टुकी के कहने से शुभ दिवस में अष्टम भक्त तप किया। तप के प्रभाव से सुस्थित देव आया। उसने श्रीकृष्ण को पाञ्चजन्य शंख, और बलराम को सुघोष नामक शंख दिया और अन्य दिव्य रत्न, मालाएं व वस्त्रादि अर्पित किये[८], फिर पूछा—आपने मुझे क्यों स्मरण किया है ?

श्रीकृष्ण—देव ! सुना है पहले वासुदेव की यहां पर द्वारिका नगरी थी, जिसे तुमने समुद्र में डुबा दी है। अतः मेरे लिए वैसी ही द्वारिका नगरी बसाओ। देव ने कहा—बहुत अच्छा।

देव ने इन्द्र से निवेदन किया, इन्द्र ने कुबेर को आदेश दिया, और वहां पर द्वारिका नगरी का निर्माण किया गया।[९] द्वारिका की अवस्थिति के सम्बन्ध में हमने परिशिष्ट में विस्तार से चर्चा की है।

---

७. (क) ऋषिर्बभाषे मा भैषीर्द्वाविंशो ह्येष तीर्थकृत्।
कुमारोऽरिष्टनेमिस्ते त्रैलोक्याद्वैतपौरुषः ॥
रामकृष्णौ बलविष्णू द्वारकास्थाविमौ पुनः।
जरासंधवधादर्धभरतेशौ भविष्यतः ॥
—त्रिषष्टि० ८।५।३८८-३८९

(ख) भव-भावना २५५८

८. (क) त्रिषष्टि० ८।५।३९१-९५
(ख) भव-भावना २५६५

कुवेर द्वारा कृष्ण को उपहार भेंट :

कुवेर ने दो पीताम्वर वस्त्र, नक्षत्रमाला, हार, मुकुट, कौस्तुभ मणि, शार्ङ्ग धनुष, अक्षय वाण वाले तरकस, नन्दक नामक खड्ग, कौमुदी गदा, और गरुडध्वज रथ आदि श्रीकृष्ण को समर्पित किये। वलराम को वनमाला, मुसल, दो, नीले वस्त्र, तालध्वज रथ, अक्षय तरकस, धनुष और हल प्रदान किये।

श्रीकृष्ण के पूजनीय होने से दशार्हों को भी बहुमूल्य रत्नप्रदान किये। फिर वे सभी रथ में वैठकर द्वारिका में प्रविष्ट हुए।[१०]

रुक्मिणी :

द्वारिका में श्रीकृष्ण आनन्द से रहने लगे। श्रीकृष्ण के राज्य में प्रजा वहुत प्रसन्न थी। एक दिन नारद ऋषि द्वारिका में आये। उनकी इच्छा हुई कि मैं श्रीकृष्ण का अन्तःपुर देखूं। कृष्ण की तरह कृष्ण की रानियां भी विनय व विवेक से सम्पन्न हैं या नहीं? नारद अन्तःपुर में गये, उस समय सत्यभामा शृङ्गारप्रसाधन में लीन थी, दर्पण में अपना प्रतिविम्व देख रही थी। उसे नारद ऋषि के आने तक का पता न चला। कृष्ण की अन्य रानियों ने नारद का सत्कार-सन्मान किया पर सत्यभामा नारद का सत्कार न कर सकी। नारद ने मन में सोचा—रूप के गर्व से उन्मत्त वनी हुई सत्यभामा सोचती है कि मैं कृष्ण की पट्टरानी हूँ! इसका गर्व नष्ट होगा तभी

९. (क) उवाच कृष्णस्तं देवं या पूर्वं पूर्वशार्ङ्गिणाम्।
पूर्यत्र द्वारकेत्यासीत् पिहिता सा त्वयांभसा॥
ममापि हि निवासाय तस्याः स्थानं प्रकाशय।
तथा कृत्वा सोऽपि देवो गत्वेन्द्राय व्यजिज्ञपत्॥
शक्राज्ञया वैश्रवणश्चक्रे रत्नमयीं पुरीम्।
द्वादशयोजनायामां नवयोजनविस्तृताम्॥
—त्रिषष्टि० ८।५

(ख) भव-भावना २५७१-२५९८

(ग) हरिवंशपुराण ४१।१५ से ३२

१०. (क) त्रिषष्टि० ८।५।४१९-२४

(ख) हरिवंशपुराण ४१।३२-३७, पृ० ५०१

यह समझेगी कि नारद ऋषि की उपेक्षा करने का क्या फल होता है। ऐसा विचार कर नारद ऋषि अन्तःपुर से लौट गये।[११]

नारद ऋषि अन्य ग्राम-नगरों में फिरते-फिरते कुण्डिनपुर पहुंचे। वहां भीष्मक राजा की पुत्री रुक्मिणी को देखा जो रूप में अप्सरा की तरह थी। रुक्मिणी ने नारद ऋषि को नमस्कार किया। नारद ने आशीर्वाद देते हुए कहा—अर्ध भरत क्षेत्र के अधिपति श्रीकृष्ण तुम्हारे पति होंगे?[१२]

रुक्मिणी ने पूछा—ऋषिवर! श्रीकृष्ण कौन हैं?

नारद ने विस्तार के साथ श्रीकृष्ण के रूप, ऐश्वर्य और शौर्य का वर्णन करते हुए कहा—वे एक महान् शक्तिसम्पन्न पुरुष हैं, उनके जैसा वीर एवं बलवान् अन्य कोई व्यक्ति नहीं है।

श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर रुक्मिणी मन ही मन कृष्ण के प्रति अनुरक्त हुई और उसने प्रतिज्ञा की कि इस भव में मैं कृष्ण को ही अपना पति बनाऊंगी।

नारद ऋषि वहां से अपने स्थान पर आये और उन्होंने रुक्मिणी का एक सुन्दरतम रूप चित्रित किया। फिर वह चित्रपट लेकर नारद द्वारिका गये। अद्भुत चित्रपट को देखकर कृष्ण चित्रलिखित से रह गये। श्रीकृष्ण ने चित्र में चित्रित सुन्दरी का परिचय पूछा। नारद ने रुक्मिणी का विस्तार से परिचय दिया। श्रीकृष्ण ने पत्र देकर एक दूत भेजा। पत्र पढ़कर रुक्मिणी के भाई रुक्मि ने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—मैं अपनी बहिन ग्वाले को न देकर दमघोष के पुत्र शिशुपाल को दूंगा।[१३]

---

११. (क) त्रिषष्टि० ८।६।७-६
(ख) भव-भावना २६३८-३६
(ग) हरिवंशपुराण ४२।२४-२६

१२. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१०-१३
(ख) भव-भावना २६४०-४२
(ग) हरिवंशपुराण ४२।३०-४२, पृ० ५०७

१३. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१४-२१
(ख) भव-भावना २६४३-४४
(ग) हरिवंशपुराण ४२।४३-४८

रुक्मिणी की धात्री ने भी एक दिन प्रसंगवश रुक्मिणी से कहा—जब तू बहुत ही छोटी थी उस समय अतिमुक्त मुनि, जो लब्धिधारी थे, यहां आये थे। हमारे पूछने पर उन्होंने कहा था कि यह श्रीकृष्ण की पट्टरानी होगी।[१४] पर आज तुम्हारे भाई ने कृष्ण के दूत का अपमान किया है और दूत को लौटा दिया है ?

रुक्मिणी ने पूछा—क्या कभी मुनि की भविष्यवाणी मिथ्या हुई है ? धात्री ने कहा – "नहीं !"

रुक्मिणी की अभिलाषा जानकर उसकी धात्री (फुइबा) ने एक गुप्त दूत श्रीकृष्ण के पास भिजवाया। पत्र में श्रीकृष्ण को लिखा 'माघ मास की शुक्ल अष्टमी को नाग पूजा के बहाने मैं रुक्मिणी को लेकर नगर के बाहर उद्यान में जाऊंगी। हे कृष्ण ! तुम्हें रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो उस समय तुम वहां पर आ जाना, अन्यथा वह तो शिशुपाल के फंदे में फंस जाएगी।'[१५]

दूत ने वह संदेश श्रीकृष्ण को दिया। इधर रुक्मिणी के भाई ने रुक्मिणी से विवाह करने के लिए शिशुपाल को आमंत्रित किया।

शिशुपाल सेना सहित वहां आ पहुँचा। श्रीकृष्ण और बलभद्र भी अपने-अपने रथ में बैठकर पूर्वनिश्चित स्थान पर आये।

धात्री सखियों के साथ रुक्मिणी को लेकर नाग पूजा के बहाने उद्यान में आयी। श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम धात्री का अभिवादन किया। फिर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से अपने रथ में बैठने को कहा। धात्री के आदेश से वह श्रीकृष्ण के रथ में बैठ गई।

जब श्रीकृष्ण कुछ दूर निकल गये तब धात्री व दासियाँ जोर से चिल्लाईं कि रुक्मिणी को हरकर श्रीकृष्ण ले गये हैं। पकड़ो; रुक्मिणी को बचाओ।[१६]

---

१४. (क) त्रिषष्टि० ८।६।२४
(ख) हरिवंशपुराण ४२।४९-५६

१५. (क) त्रिषष्टि० ८।६।२८-३०
(ख) हरिवंशपुराण ४२।५७-६४
(ग) प्रद्युम्नचरित्र-महाकाव्यम् सर्ग २, श्लोक ७३

१६. (क) त्रिषष्टि० ८।६।३१-३९
(ख) हरिवंशपुराण ४२।६५-७७

श्रीकृष्ण ने भी कुछ दूर जाकर पांचजन्य शंख को और बलराम ने सुघोषा शंख को फूंका। उसके गंभीर रव को सुनकर सभी लोग चकित हो गये।

रुक्मि और शिशुपाल विराट् सेना लेकर श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े। अपने पीछे सेना आती देखकर रुक्मिणी घबराई। वह बोली—मेरा भाई और शिशुपाल गजब के बहादुर हैं और अन्य बहुत से वीर भी उनके साथ आ रहे हैं। अब क्या होगा?

रुक्मिणी को आश्वासन देने के लिए श्रीकृष्ण ने एक ही बाण से कमल पत्रों की तरह ताड वृक्षों की पंक्ति का छेदन कर दिया और अपनी मुद्रिका में रहे हुए हीरे को मसूर की दाल की तरह चूर दिया। श्रीकृष्ण की अद्भुत वीरता देखकर वह बहुत ही सन्तुष्ट हुई।

श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा—इस वधू को आप आगे ले जावें और मैं पीछे आने वाले रुक्मि आदि को संभाल लेता हूँ।[१७]

बलराम ने कहा - कृष्ण! तुम जाओ। मैं अकेला ही रुक्मि आदि को यमलोक पहुँचा दूंगा।

यह सुनकर रुक्मिणी के हृदय को गहरा आघात लगा। उसने प्रार्थना की कि मेरे भाई का वध न करें। श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर आगे चल दिये।[१८]

पीछे रहे बलराम ने शत्रु के सैन्य पर मुसल उठाकर मंथनकर दिया और हल से सभी शत्रुओं को भगा दिया। युद्ध भूमि में केवल रुक्मि रहा। बलराम ने बाणों की ऐसी वर्षा की कि उसका रथ

(ग) वसुदेवहिण्डी

(घ) प्रद्युम्न चरित्र सर्ग ३-४

१७. (क) त्रिषष्टि० ८।६।४०-४८

(ख) हरिवंशपुराण ४२।७८-८६, पृ० ५१०

१८. नोट—हरिवंशपुराण में बलराम को छोड़कर कृष्ण जाते न किन्तु वहीं पर रहकर युद्ध करते हैं—देखो—हरि ४२।९०-९५, साथ ही शिशुपाल के वध का वर्णन किय. ., पर वह त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में नहीं है।

तोड़ दिया, कवच को छेद दिया, घोड़ों को समाप्त कर दिया। अन्त में उसकी दाढ़ी मूछों को नौंचकर कहा—तू मेरे लघुभ्राता की पत्नी का भाई है अतः मैं तुझे नहीं मारता। ऐसा कहकर उसे छोड़ दिया।[19] रुक्मि लज्जा के कारण कुंडिलपुर नहीं लौटा, उसने वहीं भोजकट नगर बसाया और उसमें रहने लगा।[20]

श्रीकृष्ण द्वारिका लौटे। रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह किया[21] और सत्यभामा के सन्निकट का आवास उसे रहने के लिए दिया। रुक्मिणी द्वारिका के वैभव को देखकर मुग्ध हो गई। उसे कृष्ण ने पट्टरानी का गौरव प्रदान किया।

इस प्रकार सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्ववती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती, गांधारी, ये आठों कृष्ण की पट्टरानियाँ हुई।[22]

अग्रमहिषियाँ :

जैन दृष्टि से कृष्ण की आठों अग्रमहिषियों का संक्षिप्त में परिचय इस प्रकार है :—

(१) सत्यभामा :

यह महाराजा उग्रसेन की पुत्री थी। जिस प्रकार शची इन्द्र को प्रिय है वैसे ही वह कृष्ण को प्रिय थी।[23]

---

१९. त्रिषष्टि० ८।८।५०-५७

२०. एवमुक्तश्च मुक्तश्च ह्रिया नेयाय कुंडिनम्।
रुक्म्यस्थात् किं तु तत्रैव न्यस्य भोजकटं पुरम्॥

—त्रिषष्टि० ८।६।५८

२१. गांधर्वेण विवाहेन परिणीयाथ रुक्मिणीम्।
स्वच्छंदं रमयामास रजनीं तां जनार्दनः॥

—त्रिषष्टि० ८।६।६४

२२. (क) त्रिषष्टि० ८।६।८५-१०६

(ख) कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा भवेत्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणाओ। तं जहा— पउमावई, य गोरी गंधारी लक्खणा सुसीमा य जंबवई सच्चभामा रुप्पिणी कण्हअग्गमहिसीओ।—स्थानाङ्ग ८।७९३, पृ० २९०

(२) पद्मावती :

यह रिष्टपुर नगर के रुधिर राजा की देवी श्री की पुत्री थी।[२४] इसका रूप भी अत्यन्त सुन्दर था। पिता ने उसके लिए स्वयंवर की योजना की। वह सजधज कर स्वयं में जा रही थी। उस युग में अपहरण कर उसके साथ विवाह करना वीरता मानी जाती थी। श्रीकृष्ण की दृष्टि पद्मावती पर गिरी, और पद्मावती की श्रीकृष्ण पर, दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गए। अतः श्रीकृष्ण ने उसकी इच्छा से अपहरण किया, और पांचजन्य शंख फूंककर सभी को यह सूचना दी। स्वयं पद्मावती के साथ द्वारिका आये। उसके बाद राजा रुधिर ने भी धन और दासियां भेजी।[२५]

(३) गौरी :

यह सिंध के वीतभय नगर के राजा मेरु की पत्नी चन्द्रावती की पुत्री थी,[२६] राजा मेरु ने दशार्हों को कहलाया कि वह अपनी पुत्री श्रीकृष्ण को अर्पित करना चाहता है, दशार्हों ने अभिचन्द्र को भेजा, उसने उनके साथ अपार धन एवं गौरी को भेजी, गौरी का श्रीकृष्ण के साथ पाणिग्रहण हुआ।[२७]

(४) गांधारी :

यह गांधार जनपद के पुष्कलावती नगर के राजा नग्नजित की पुत्री थी। उसकी माता का नाम मरुमती था। उसके भाई का नाम विश्वसेन था। यह रूप में ही नहीं, संगीत और चित्रकला में भी पूर्ण निपुण थी।[२७] उसके साथ श्रीकृष्ण का पाणिग्रहण हुआ।[२९]

---

२३. कण्हस्स उग्गसेणस्स दुहिया सच्चभामा णाम सची विव सक्कस्स वहुमया।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८, भा० १

२४. रिट्ठपुरे य रुहिरस्स रण्णो देवी सिरी, तीसे दुहिया पउमावती।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८

२५. वहीं० पृ० ७८

२६. सिंधुविसए वीइभयं नगरं। तत्थ य मेरु राया, चंदमती देवी, तीसे दुहिया गोरी।

—वसुदेवहिण्डी ७८

(५) लक्ष्मणा :

यह सिंहलद्वीप के राजा हिरण्यलोम की पुत्री थी। उसकी माता का नाम सुकुमारा था और भाई का नाम द्रुमसेन था।[30] श्रीकृष्ण ने रूप की प्रशंसा सुनकर अपना दूत सिंहलद्वीप भेजा। दूत ने जाकर सन्देश दिया कि लक्ष्मणा अत्यन्त रूपवती है।[31] वह दक्षिण समुद्र के किनारे स्नानादि के लिए अपने भाई के साथ एक महीने तक रुकेगी। श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई वहां पर गये। द्रुमसेन ने प्रतिरोध किया, तो कृष्ण उसे मारकर लक्ष्मणा को लेकर द्वारिका आये। हिरण्यलोम राजा को ज्ञात होने पर उसने कहलाया कि मेरा पूर्व चिन्तित-मनोरथ पूर्ण हुआ है, मैं प्रसन्न हूँ अतः विराट् सम्पत्ति प्रेषित कर रहा हूँ, व आपका अनुयायी हूँ।[32]

(६) सुसीमा :

यह अराक्षरी नगरी के राष्ट्रवर्धन राजा की पत्नी विनयवती की पुत्री थी। उसका भाई नमुची युवराज था। एक समय वह सौराष्ट्र के प्रभास स्थल पर अपने भाई के साथ स्नान करने के लिए

---

२७. वहीं० पृ० ७८

२८. गंधारजणवए पोक्खलावईनगरीए नग्गई नाम राया, देवी य मरुमती, तीसे वीससेणो पुत्तो जुवराया, तस्स भगिणी गंधारी रूववती रूवगए गंधव्वे य परिणिट्ठिया।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७८

२९. वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३०. सिंहलदीवे राया हिरण्णलोमो, तस्स देवी सुकुमाला नाम, तेसिं दुहिया लक्खणलया लक्खणा णामं, पुत्तो य तस्स रण्णो जुवराया दुमसेणो।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३१. दूओ य पेसिओ कण्हेण सिंहलदीवं, सो आगतो कहेइ—देव! हिरण्णलोमस्स रण्णो दुहिया देवया विव रूवस्सिणी, सा तुम्ह जोग्गा।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३२ वहीं० पृ० ७९

आयी। श्रीकृष्ण को ये समाचार मिले, उसके भाई नमुची को युद्ध में मार कर उसे द्वारवती लेकर आये।[33]

(७) जाम्बवती :

गगननन्दन में जाम्ववान नामक विद्याधर राजा था। उसकी पत्नी श्रीमती थी। उसकी पुत्री जाम्ववती थी। उसका भाई दुष्प्रसह था।[३४] जाम्बवती भी रूप में अप्सरा के समान थी। एक समय किसी चारण मुनि ने कहा यह कन्या अर्धभरतेश्वर की पत्नी होगी। जाम्बवान् उसके पति की अन्वेषणा करने के लिए गंगा के किनारे पडाव डालकर रहा। जाम्ववती भी गंगा में स्नान करने के लिए वहां पर पुनः पुनः आया करती थी।[३५] श्रीकृष्ण को यह सूचना मिली। श्रीकृष्ण अपने भाई अनाधृष्टि के साथ वहां गये, और कन्या का अपहरण किया, यह सूचना जाम्ववान को मिलते ही वहां पर आया और अनाधृष्टि के साथ युद्ध करने लगा। अनाधृष्टि ने कहा—तुम्हें स्वयं को चाहिए था कि वासुदेव श्रीकृष्ण को कन्या देते, किन्तु अपरहृण करने पर तुम लड़ना चाहते हो यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है।[३६]

जाम्ववान ने जब यह सुना तब वह शान्त हो गया। उसने कहा-चारण श्रमण के कथन को प्रमाणभूत मानता हुआ मैं भी यही इच्छा करता था। मेरी भावना पूर्ण हो गई है, अतः अब मैं तपोवन में जाकर तप की आराधना करूंगा। आप इसके भाई दुष्प्रसह को

---

३३. वसुदेव हिण्डी पृ० ७९ प्र० भाग

३४. गगणनंदणे नयरे जंववंतो राया विज्जाहरो, तस्स य भज्जा सिरि-मई, पुत्तो जुवराया दुप्परुहो नामा, धूया य से जंववती।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३५. सा चारणसमणेण अद्धभरहाहिवभज्जा भविस्सइ त्ति आदिट्ठा। ततो सो जंववंतविज्जाहरराया 'तं गवसिस्सामि' त्ति गंगातीरे सन्निवेसे सन्निविट्ठो। सा य कुमारी अभिक्ख गंगानदिं मज्जिउं एइ सपरिवारा।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ७९

३६. वहीं० पृ० ७९

रक्षा करें। अज्ञान के कारण मेरे द्वारा किये गये अपराध को क्षमा करें।

उसके पश्चात् धृति नामक देवकन्या के समान जाम्बवती को लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका आये।

जाम्बवती का भाई दुष्प्रसहकुमार भी विराट् सम्पत्ति के साथ जाम्बवती की दासियों को लेकर द्वारिका आया। श्रीकृष्ण ने प्रेम से उसका स्वागत किया। जाम्बवती को पृथक् महल प्रदान किया।[३७]

(८) **रुक्मिणी** :

विदर्भ जनपद के कुण्डिनपुर नगर का भेषक राजा था। रुक्मिणी उसकी लड़की थी। नारद ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के अनुपम रूप के सम्बन्ध में बताया।[३८] श्रीकृष्ण वहां जाते हैं और उनके साथ विवाह करते हैं। पूर्व इस सम्बन्ध में विस्तार से परिचय दिया गया है।

आगम साहित्य में यों श्रीकृष्ण के सोलह हजार रानियों का भी उल्लेख मिलता है।[३९] पर उनमें आठ प्रमुख थीं। शेष रानियों के नाम और परिचय प्राप्त नहीं हैं।

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों में भी श्रीकृष्ण के सोलह हजार एक सौ एक स्त्रियां होने का वर्णन है।[४०] किन्तु उनमें विष्णुपुराण के अनुसार रुक्मिणी के अतिरिक्त—१ कालिन्दी, २ मित्रविन्दा, ३ नग्नजित् की पुत्री सत्या, ४ जाम्बूवती ५ रोहिणी ६ मद्रराज की

---

३७. वसुदेवहिण्डी पृ० ८०

३८. वियब्भाजणवए कुंडिणिपुरं नाम नयरं। तत्थ भेसगो राया, विज्जुमती देवी, तेसिं पुत्तो रूप्पी कुमारो, रुप्पिणी य दुहिया। सा य वासुदेवस्स नारएण निवेदिता।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ८० प्र० भाग

३९. (क) अन्तगडदशाओ वर्ग १, अ० १

(ख) प्रश्नव्याकरण अधर्मद्वार

४०. भगवतोऽप्यत्र मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तरशतानि स्त्रीणामभवत्।

—विष्णुपुराण

पुत्री सुशीला ७ सत्राजित की कन्या सत्यभामा ८ लक्ष्मणा ये प्रमुख थीं।[४१]

महाभारत के अनुसार—रुक्मिणी, सत्यभामा, गांधारी, शैव्या, हैमवती, जाम्बुवती ये श्रीकृष्ण की मुख्य पत्नियां थीं।[४२]

हरिवंशपुराण के अनुसार लक्ष्मणा ही जालहासिनी है। इस दृष्टि से १ कालिन्दी, २ मित्रवृन्दा ३ सत्या, ४ जाम्बवान् की कन्या ५ रोहिणी ६ माद्री सुशीला, ७ सत्राजित् की कन्या सत्यभामा ८ जालहासिनी लक्ष्मणा ९ शैव्या।[४३]

श्रीकृष्ण की बहुपत्नियों के सम्बन्ध में कृष्ण चरित्र में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने[४४] तथा कृष्णावतार में कन्हैयालाल माणकलाल

---

४१. (क) कालिन्दी मित्रविन्दा च सत्या नाग्नजिती तथा।
देवी जाम्बवती चापि रोहिणी कामरूपिणी॥
मद्रराजसुता चान्या सुशीला शीतमण्डना।
सात्राजिती सत्यभामा लक्ष्मणा चारुहासिनी॥
—विष्णुपुराण ५।२८

(ख) तासाञ्च रुक्मिणी सत्यभामा जाम्बवती।
जालहासिनी-प्रमुखा अष्टौ पत्न्यः प्रधानाः॥
—वहीं० ४।१५

४२. रुक्मिणी त्वथ गांधारी शैब्या हेमवतीत्यपि।
देवी जाम्बवती चैव विविशुर्जातवेदसम्॥
—मौसलपर्व ३, अ०

४३. महिषीः सप्त कल्याणीस्ततोऽन्या मधुसूदनः।
उपयेमे महाबाहुर्गुणोपेताः कुलोद्गताः।
कालिंदीं मित्रविंदा च सत्यां नाग्नजितीं तथा।
सुतां जाम्बवतश्चापि रोहिणीं कामरूपिणीम्॥
मद्रराजसुतां चापि सुशीलां भद्रलोचनाम्॥
सात्राजितीं सत्यभामां लक्ष्मणां जालहासिनीम्।
शैव्यस्य च सुतां तन्वीं रूपेणाप्सरसां समा॥
—हरिवंश पुराण १५ अ० ६७ श्लोक

४४. (क) कृष्णचरित्र हिन्दी पृ० २३० से २४५
(ख) कृष्ण चरित्र गुजराती अनुवाद पृ० १७९-१८८

मुंशी ने "रुक्मिणी आने शैव्या विशे नोंध"[४५] में कुछ चर्चाएं की हैं। जिज्ञासु पाठकों को वहां देखना चाहिए।

जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य का पर्यवेक्षण करने से ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन युग में बहुविवाह की प्रथाएं थीं अतः श्रीकृष्ण के आठ से भी अधिक पत्नियां हों उसमें बाधा जैसी बात नहीं है। हमारी दृष्टि से भी यही बात उचित लगती है।

राधा :

आगम व आगमेतर जैन साहित्य में राधा का कहीं भी उल्लेख नहीं है। राधा कौन थी और उसका श्रीकृष्ण के साथ क्या सम्बन्ध था, आदि प्रश्नों के सम्बन्ध में किञ्चित् मात्र भी चर्चा नहीं है।

वैदिक विद्वानों ने राधा के सम्बन्ध में गंभीर अन्वेषणा की है। राधा भक्त विद्वानों की मान्यता है कि राधा का नाम बहुत पुराना है। वेदों से लेकर अर्वाचीन साहित्य तक में राधा का उल्लेख है। उनकी शोध का संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है—

ऋग्वेद में राधा का नाम मिलता है।[४६] सामवेद[४७] और अथर्ववेद[४८] में भी राधा शब्द आया है। बृहद्ब्रह्म संहिता में राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना गया है।[४९] जो कृष्ण है सोई राधा है जो राधा है सोई कृष्ण है। सनत्कुमार संहिता में भी कृष्ण और राधा में अभिन्नता स्थापित की गई है।[५०] कृष्णोपनिषद्[५१] व कठवल्ली[५२] उपनिषद्कार ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

---

४५. कृष्णावतार भाग—२, परिशिष्ट पृ० ५६१-५६४

४६. (क) ऋग्वेद १।३०।५

(ख) ऋग्वेद ३।५१।१०

४७. सामवेद १६५, ७२७

४८. अथर्ववेद २०।४५।२

४९. यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव सः।

५०. राधाकृष्णेति संज्ञाद्यं राधिकारूप मंगलम्।

५१. वामाङ्गसहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी।
सुन्दरी नागरी गौरी, कृष्णहृद्भृङ्गमंजरी॥

५२. "यदापश्यः पश्यन्ति रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्"।

राधिकोपनिषद[५३] में राधिका की महिमा प्रतिपादित की गई है। पद्मपुराण[५४] में राधा का उल्लेख है और उसका महत्त्व बताया गया है। शिवपुराणकार[५५] ने ब्रह्मा जी के द्वारा यह उद्घोषणा कराई है कि राधा साक्षात् गोलोक में निवास करने वाली गुप्त स्नेह में निवद्ध हुई कृष्ण की पत्नी होगी। नारदपुराण[५६] में नारद ने राधिकानाथ कहकर कृष्ण की स्तुति की है। ब्रह्मवैवर्तपुराण[५७] में राधा-कृष्ण की लीला का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। मत्स्य-पुराण[५८] एवं ब्रह्माण्डपुराण[५९] में भी राधा का उल्लेख हुआ है।

---

५३. राधिकोपनिषद्,

५४. देवी कृष्णमयी प्रोक्ता, राधिका परमदेवता।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥५३॥
बहूना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किंचन।
चिदचित्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥५७॥

—पद्मपुराण पातालखण्ड ५०।५३-५७

५५. कलावती सुता राधा साक्षात् गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ॥४०॥

—शिवपुराण, रुद्र संहिता २, पार्वती खण्ड ३ अ० २

५६. तवास्मि राधिकानाथ ! कर्मणाः मनसा गिरा।
कृष्ण कान्तेति चैवास्ति युवामेव गतिर्मम ॥

—नारदपुराण, पूर्वार्ध अ० ८२। श्लोक २६

५७. आविर्बभूव कन्यैका कृष्णास्य वामपार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ॥२५॥
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥२६॥

—ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड अ० ५

५८. रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने।

—आनन्दाश्रम सं० १३-३८

५९. (क) राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
(ख) जिह्वा राधा स्तुतो राधा नेत्रे राधा हृदिस्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया ॥

—ब्रह्माण्डपुराण

देवी भागवत[60] में राधिका को श्रीकृष्ण के वामाङ्ग से उत्पन्न हुई बताया है। भविष्यपुराण[61] और आदिपुराण[62] में भी राधा के सम्बन्ध में वर्णन है। इनके अतिरिक्त भी राधा का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। राधा के बिना कृष्ण का नाम ही आधा है।

श्री मद्‌भागवत महापुराण में स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण का विशद चित्रण श्रीमद्भागवत में हुआ है। उसमें राधा का वर्णन न होने से राधा की प्राचीनता के सम्बन्ध में विद्वानों को सन्देह उत्पन्न होता है। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वान् राधा को ईश्वी शताब्दी के बाद की कल्पना मानते हैं। डाक्टर हरवंशलाल का अभिमत है कि यद्यपि पौराणिक पण्डित राधा का सम्बन्ध वेदों से लगाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधा को वेदों तक घसीटना असंगत ही प्रतीत होता है। गोपालकृष्ण की कथाओं से परिपूर्ण भागवत, हरिवंश और विष्णुपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में राधा का अभाव अनेक प्रकार के सन्देहों को जन्म देता है।[63]

पं० बलदेव उपाध्याय लिखते हैं 'मेरी दृष्टि में 'राधः' तथा 'राधा' दोनों की उत्पत्ति "राध वृद्धौ" धातु से है, जिसमें 'आ' उपसर्ग जोड़ने पर आराध्यति धातुपद बनता है। फलतः इन दोनों शब्दों का समान अर्थ है—आराधना, अर्चना, अर्चा। 'राधा' इस

---

६०. (क) गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टि विधौ प्रकृतिः पंचधास्मृता॥
—नवमस्कंध अ० १ श्लोक १

(ख) देवीभागवत-९।१।४४-से ५०

(ग) देवी भागवत ९।५०।१०-११

६१. तदव्ययात्समुद्‌भूतोराधाकृष्णः सनातनः।
एकीभूतं द्वयोरंगं राधाकृष्णो बुधे स्मृतः॥
—भविष्यपुराण १५६

६२. अथापरा राधिकायाः सख्यः शश्वन्मनोरमाः।
विमला राधिका भृङ्गी निभृताऽभिमता परा॥
—आदिपुराण ४१ (वैदिक)

६३. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा पृ० २६५

प्रकार वैदिक राधः या रांधा का व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना का प्रतीक है। 'आराधना की उदात्तता उसके प्रेम पूर्ण होने में है। जिस आराधना या अर्चना में विशुद्ध प्रेम नहीं झलकता, जो उदात्त प्रेम के साथ नहीं सम्पन्न की जाती, क्या वह कभी सच्ची आराधना कहलाने की अधिकारिणी होती है? कभी नहीं। इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम के प्राचुर्य का, भक्ति की विपुलता का, भाव की महनीयता का सम्बन्ध कालान्तर में जुड़ता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप में साहित्य और धर्म में प्रतिष्ठित हो गई।[६४]

जैन और वैदिक ग्रन्थों में श्रीकृष्ण की मुख्य आठ पत्नियों के नाम आये हैं। उनमें कहीं भी राधा का नाम नहीं है। यदि राधा के साथ कृष्ण का गहरा सम्बन्ध होता तो पत्नी के रूप में अवश्य ही उसका उल्लेख मिलता। हमारी अपनी दृष्टि से भी राधा की कल्पना बाद के कवियों ने की है।

प्रद्युम्न :

एक समय अतिमुक्त मुनि रुक्मिणी के महल में पधारे। उसी समय सत्यभामा भी वहीं पहुँच गयी। रुक्मिणी ने मुनिराज से पूछा—क्या कभी मातृत्व का गौरव मुझे भी प्राप्त होगा?

मुनि विशिष्ट ज्ञानी थे। उन्होंने कहा—हाँ, तुम्हारे श्रीकृष्ण जैसा पुत्र होगा।[६५] इतना कहकर मुनि वहां से चल दिये। सत्यभामा बोली—मुनि ने मुझे लक्ष्य करके भविष्यवाणी की है। रुक्मिणी ने उसका प्रतिवाद किया और कहा—कि मुझे कहा है। दोनों निर्णय करने के लिए श्रीकृष्ण के पास आयीं। उस समय वहां दुर्योधन भी आया हुआ था। कृष्ण उससे वार्तालाप कर रहे थे। सत्यभामा ने

---

६४. भारतीय वाङ्मय में श्री राधा—पं० बलदेव उपाध्याय पृ० ३१

६५. रुक्मिण्याश्च गृहेऽन्येद्यु रतिमुक्तर्षिरागतः।
तं दृष्ट्वा सत्यभामापि तत्रैवाशु समाययौ॥
रुक्मिण्याप्रच्छि स मुनिः किं मे स्यात्तनयो न वा।
भावी कृष्णसमः पुत्रस्तवेत्युक्त्वा ययौ च सः॥
—त्रिषष्टि० ८।६।११०-११

कहा—यदि मेरे पुत्र होगा तो हे दुर्योधन, वह तुम्हारा जामाता होगा। रुक्मिणी ने कहा—मेरा पुत्र तुम्हारा जामाता होगा।

दुर्योधन ने कहा—अच्छा ! तुम दोनों में से जिसके पुत्र होगा उसे मैं अपनी पुत्री दूंगा।

सत्यभामा ने कहा—अच्छा तो यह शर्त रही कि जिसका पुत्र प्रथम विवाह करे, उसके विवाह में दूसरे को अपने शिर के केश देने होंगे। रुक्मिणी ने यह शर्त स्वीकार करली—बलराम, कृष्ण और दुर्योधन इसके साक्षी नियुक्त किये गये।[६६]

वसुदेव हिण्डी के अनुसार रुक्मिणी सिंह का स्वप्न देखती है।[A] और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के अनुसार एक दिन रुक्मिणी ने स्वप्न देखा 'कि वह एक श्वेत वृषभ के ऊपर रहे हुए विमान पर बैठी है।' यह देखकर वह शीघ्र ही जागृत हो गई। उस समय एक महर्द्धिक देव महाशुक्र देवलोक से च्यवकर उसके उदर में आया। प्रातःकाल श्रीकृष्ण को स्वप्न की बात कही।[६७]

सत्यभामा को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने भी एक कल्पित स्वप्न की बात कही। दोनों गर्भवती हुईं। रुक्मिणी के गर्भ में पुण्यवान् जीव आने से वह गूढ गर्भा थी, पर सत्यभामा के उदर में

साधारण जीव के आने से उसका उदर अभिवृद्धि को प्राप्त होने लगा। एक ही दिन दोनों के पुत्र हुए। रुक्मिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न रखा गया और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानुक।[६८]

श्रीकृष्ण प्रद्युम्न कुमार को खिला रहे थे। उस समय रुक्मिणी के पूर्व भव का वैरी देव धूमकेतु वहां पर आया, और रुक्मिणी का रूप बनाकर कृष्ण के हाथ में से प्रद्युम्न कुमार को लेकर चल दिया। वह देव उसे वैताढ्यगिरि पर लाया, और एक शिला पर उसे रखकर चला गया। उस समय कालसंवर नामक एक विद्याधर अग्निज्वाल नगर से अपने नगर जा रहा था। उसने उस तेजस्वी बालक को देखा। सोचा—अरे, यहां पर किसने छोड़ा है इसे। वह उसे लेकर सीधा अपने घर आया, और अपनी पत्नी कनकमाला को पुत्र रूप में अर्पित किया। नगर में यह चर्चा फैलादी गई कि मेरी रानी गूढ गर्भा थी, उसने पुत्र का प्रसव किया है। पुत्रोत्सव उत्साह के साथ मनाया गया।

कुछ समय के पश्चात् रुक्मिणी ने आकर कृष्ण से पुत्र की याचना की। कृष्ण ने कहा—अभी तो तुम ले गई थीं।

रुक्मिणी—नहीं पतिदेव ! मैं तो नहीं ले गई, तब कृष्ण ने उसकी सर्वत्र तलाश की, पर प्रद्युम्न कहीं पर नहीं मिला। कृष्ण और रुक्मिणी अत्यन्त चिन्तातुर हो गये।[६९]

कुछ दिनों के पश्चात् नारद ऋषि वहां पर आये। नारद से श्रीकृष्ण ने पूछा—बतलाइये महाराज, हमारा पुत्र प्रद्युम्न कहां गया ? कौन उसे हरण करके ले गया ?

---

६८. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१२७-१२९

(ख) भव-भावना २६४६

६९. वसुदेव हिण्डी के अनुसार रुक्मिणी के वहां कृष्ण देखने जाते हैं तभी कोई देव उसे हरण कर जाता है—

रुप्पिणी य पुण्णे पसवणसमए पसूया पुत्तं। कयजायकम्मस्स य से बद्धा मुद्दा वासुदेवनामंकिया, निवेदितं च परिचारियाहिं कुमार-जम्मं कण्हस्स। सो रयणदीविकादेसियमग्गो अइगतो रुप्पिणिभवणं। चक्खुविसयपडिओ य से कुमारो देवेण अक्खित्तो।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ८३ पंढिया

नारद ने कहा - महाज्ञानी अतिमुक्तकुमार मुक्त हो गये हैं। आप चिन्ता न करें, मैं आपके प्रश्न का उत्तर महाविदेह क्षेत्र में विराजित सीमंधर स्वामी से पूछकर कहूँगा।

नारद ऋषि सीधे सीमंधर स्वामी के पास गये। उन्होंने प्रश्न किया। उत्तर में सीमंधर स्वामी ने फरमाया—वह कालसंवर नामक विद्याधर के घर मेघकूट नगर में है और वहां पर वह सोलह वर्ष तक रहेगा। पूर्वबद्ध कर्म के कारण सोलह वर्ष का विरह रहेगा। भगवान् की वाणी को श्रवण कर नारद बहुत प्रसन्न हुए, और जहां प्रद्युम्न कुमार था वहां पहुँचे। रुक्मिणी की तरह ही प्रद्युम्नकुमार का रूप निहारकर नारद ऋषि मन ही मन प्रसन्न हुए। वहां से वे शीघ्र द्वारिका आये और कृष्ण व रुक्मिणी को सारी बात बताई।

कालसंवर विद्याधर के वहां प्रद्युम्नकुमार बड़े होने लगे। विद्याधर से सभी विद्याओं में उसने निपुणता प्राप्त की। प्रद्युम्न के अतिशय सुन्दर रूप को निहार कर काल संवर विद्याधर की पत्नी कनकमाला उस पर मुग्ध हो गई। एक दिन एकान्त में कुवंर को लेजाकर कनकमाला ने कहा—अरे प्रद्युम्न ! अब तुम्हारी युवावस्था आ रही है, मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हूँ, मैं तुम्हारी जन्मदात्री माता नहीं हूँ। मैंने तो केवल पालन-पोषण किया है अतः मेरे साथ स्वेच्छा से आनन्दक्रीडा करो।

प्रद्युम्न—आपकी बात तो ठीक है, पर कालसंवर विद्याधर और उनके पुत्र मेरे साथ युद्ध करेंगे तो मैं उनसे किस प्रकार जीत सकूँगा ?

कनकमाला—प्रद्युम्न ! तुम इस बात से क्यों डरते हो ? मेरे पास गौरी और प्रज्ञप्ति नामक दो महान् विद्याएं हैं। जिनसे तुम सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त कर सकते हो। मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हूँ, इसलिए ये विद्याएं तुम्हें देती हूँ।

प्रद्युम्न ने वे दोनों विद्याएं ग्रहण की और कुछ ही समय में उन दोनों विद्याओं को सिद्ध कर लिया। उसने देखा, मधुर बोलने से मुझे दोनों महान् विद्याएं मिल गईं।

रानी कनकमाला ने कुछ दिनों के पश्चात् पुनः स्वेच्छा पूर्वक क्रीडा करने की अभ्यर्थना की।

प्रार्थना के उत्तर में प्रद्युम्न ने स्पष्ट कहा—माता ! तुम्हारे मुंह से इस प्रकार के शब्द शोभा नहीं देते। प्रथम तो तुम मेरा लालन-पालन करने के कारण मेरी माता हो, फिर विद्यादान देकर भी माता हुई। दो दृष्टियों से तुम मेरी माता हो, फिर ऐसी अनुचित बात क्यों कहती हो ?

कनकमाला ने प्रत्येक दृष्टि से प्रार्थना की पर कुंवर ने उसकी सभी प्रार्थनाएं ठुकरा दीं और वह वहां से चल दिया। कुंवर के जाने के पश्चात् कनकमाला ने त्रियाचरित्र कर अपने पुत्र और पति को बताया कि प्रद्युम्न ने मेरे शीलव्रत को खण्डित कर दिया है। रानी की यह बात सुनते ही कालसंवर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने उसी समय अपने पुत्रों को साथ लेकर प्रद्युम्न पर हमला किया। पर प्रद्युम्न को कोई भी जीत न सका, सभी उससे पराजित हो गये। राजा ने रानी से विद्या मांगी, पर वह दे न सकी क्योंकि वह तो प्रद्युम्न को दे चुकी थी। राजा रानी के दुराचार को समझ गया। उसके बाद वह कुंवर से मिला, उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। इतने में नारद ऋषि वहां पर पहुँच गये। प्रज्ञप्ति विद्या से उसने नारद ऋषि को पहचान लिया, अतः कालसंवर विद्याधर से आज्ञा लेकर वह सीधा नारद ऋषि के साथ द्वारिका जाने के लिए प्रस्थित हुआ।[७०]

नारद ऋषि के साथ प्रद्युम्नकुमार द्वारिका पहुँचा। मार्ग में उसने नारद ऋषि से सारी बातें जान ली कि जब तुम गर्भ में थे तब ही सत्यभामा और तुम्हारी माता रुक्मिणी के बीच शर्त हुई थी। प्रद्युम्न ने देखा—द्वारिका में आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। समस्त द्वारिकावासी प्रसन्नता से फूले नहीं समा रहे हैं क्योंकि श्रीकृष्ण के पुत्र और सत्यभामा के अंगजात भामह का विवाह प्रसंग है। पर रुक्मिणी की आंखों से आंसुओं की धारा छूट रही है। वह अपने

---

७०. (क) त्रिषष्टि० ८।६।१३० से ४०४
(ख) प्रद्युम्नचरित्र—ले० महासेनाचार्य
(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्य-सर्ग-५-८ तक पृ० १०४ ले० रत्नचन्द्रगणी
(घ) प्रद्युम्नचरित्र-अनुवाद-चारित्र विजय पृ० १४५ तक

पुत्र प्रद्युम्न कुमार की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। वह अब तक क्यों नहीं आया! यदि सत्यभामा के पुत्र का विवाह प्रथम हो जायेगा तो शर्त के अनुसार मुझे अपने सिर के केश कटवाने पड़ेंगे। मैं पुत्र व पति के होते हुए भी कुरूप बन जाऊंगी। वह चिन्तातुर बैठी ही थी कि उसी समय विद्या के बल से प्रद्युम्न कुमार ने एक लघु मुनि का रूप बनाया और रुक्मिणी के महल में प्रवेश किया। कहा—अरी श्राविका! क्यों इतनी चिन्तामग्न है? मैं सोलह वर्ष का दीर्घ तपस्वी हूँ, मुझे आहारदान दे। रुक्मिणी ने मुनि का अभिवादन करते हुए कहा मुनिवर! मैंने एक वर्ष का तप सुना है, पर आप सोलह वर्ष के तपस्वी हैं, यह जानकर आश्चर्य होता है। अस्तु, जो भी हो, परन्तु महाराज! इस समय सिंह केसरिया मोदक के अतिरिक्त कुछ भी खाद्य वस्तु तैयार नहीं है, और ये मोदक श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य को हजम नहीं होते हैं।

मुनि ने कहा—तुम चिन्ता न करो, तप के दिव्य प्रभाव से वे सभी हजम हो जायेंगे।

रुक्मिणी ने मुनिराज को लड्डू दिये। मुनि ने वहीं बैठकर सारे लड्डू खा लिये।[७१]

उसी समय सत्यभामा की दासियां रुक्मिणी के केशों को काटने के लिए वहां पर आगईं और बोलीं—महारानी, हमें सत्यभामा ने भेजा है।

प्रद्युम्न ने जो विद्या के बल से मुनि बना हुआ था, विद्या के प्रभाव से सत्यभामा और उसकी दासियों के ही केश काट दिये।

---

७१. वसुदेवहिण्डी में मुनि खीर का भोजन मांगते हैं उसमें मोदक बहराने का प्रसंग नहीं है—सो वासुदेवसीहासणे उवविट्ठो। भणिओ य रुप्पिणीए— खुड्डग! एयमासणं देवयापरिग्गहियं, मा ते को वि उवघातो भविस्सति अण्णम्मि आसणे णिसीयं त्ति। सो भणइ—अम्हं तवस्सीणं ण पभवति देवता। आणत्ता य चेडीओ देवीए—णिग्घं पायसं साहेइ, मा किलम्मउ तवस्सी। पज्जुण्णेण य अग्गी थंभिओ न तप्पती खीरं।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ९५ प्र० भाग

वे सभी श्रीकृष्ण के पास पहुंची, और कहा कि उस दिन की शर्त के अनुसार रुक्मिणी के बाल दिलाओ।

श्रीकृष्ण ने मजाक करते हुए कहा—तुम उसे मुण्डित बनाना चाहती थी पर स्वयं ही मुण्डित क्यों हो गईं ?

सत्यभामा के अत्याग्रह पर बलराम को सत्यभामा के साथ रुक्मिणी के बाल लेने के लिए श्रीकृष्ण ने भेजा, पर आगे देखा तो रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण स्वयं बैठे हुए हैं। वे लज्जा से पुनः लौट गये। पीछे लौटकर आने पर उन्हें श्रीकृष्ण से ज्ञात हुआ कि वह कोई मायावी था।

नारद ने रुक्मिणी को बताया कि यह मुनि नहीं, तेरा ही पुत्र प्रद्युम्न है। रुक्मिणी पुत्र को पाकर बहुत ही प्रसन्न हुई। नारद ने कहा—इसने भानुकुवंर का विवाह जिस कन्या के साथ होने वाला है उसका अपहरण कर लिया है। इसी ने अन्य अनेक चमत्कार सत्यभामा आदि को दिखाये हैं।

प्रद्युम्न ने माता से कहा—जब तक मैं अपने पिता श्रीकृष्ण को चमत्कार न दिखाऊं तब तक मुझे प्रकट नहीं होना है।

प्रद्युम्न ने शीघ्र ही अपनी माता रुक्मिणी को रथ में बिठाकर बहुत ही तीव्रस्वर में श्रीकृष्ण को चुनौती दी—मैं रुक्मिणी को हरण कर ले जारहा हूँ, यदि तुम में शक्ति हो तो लेने के लिए आओ।

श्रीकृष्ण ने जब यह सुना तो वे पीछे दौड़े। युद्ध हुआ। प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को शस्त्ररहित कर दिया। श्रीकृष्ण की सेना भी प्रद्युम्न के सामने टिक न सकी। उसी समय श्रीकृष्ण का दाक्षिणात्य नेत्र-स्फुरित हुआ और नारद ने आकर कहा—कृष्ण! जिसके साथ तुम युद्ध कर रहे हो वह देव या विद्याधर नहीं, अपितु तुम्हारा ही पुत्र प्रद्युम्न है। इसने तुम्हें बता दिया कि पिता से पुत्र सवाया है।

पिता-पुत्र का वह अपूर्व प्रेम-मिलन सभी के लिए आह्लाद-कर था।[७२]

दुर्योधन ने राजसभा में आकर श्रीकृष्ण से निवेदन किया—हे स्वामी! मेरी और तुम्हारी दोनों की लाज जाती है। लग्न के

---

७२. त्रिषष्टि० ८।६।४८६-४७२

अवसर पर ही मेरी पुत्री और तुम्हारी पुत्रवधू को कोई अपहरण कर ले गया है?

कृष्ण ने कहा—मैं क्या करूं—प्रद्युम्न का भी सोलह वर्ष तक विरह सहन किया है? मैं कोई सर्वज्ञ थोड़े ही हूँ।

प्रद्युम्न ने कहा—आप आदेश दें तो मैं प्रज्ञप्ति विद्या से उस कन्या को शीघ्र हो यहां ले आऊं। ऐसा कहकर उसने उसी समय कन्या उपस्थित की और भानु के साथ उसका पाणिग्रहण करवा दिया।[७३] प्रद्युम्न को कृष्ण ने अनेक राजकन्याएं परणाईं।[७४]

प्रद्युम्न का वैदर्भी से विवाह :

श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी जाम्बवती के शांब नामक महापराक्रमी पुत्र हुआ। वह प्रद्युम्न के समान वीर था। सत्यभामा के दूसरा पुत्र भानुककुमार हुआ, पर स्वभाव से वह कायर था।

एक दिन रुक्मिणी के अन्तर्मानस में विचार आया कि मेरे भाई रुक्मि की पुत्री वैदर्भी रूप में अत्यन्त सुन्दर है। यदि उसके साथ मेरे पुत्र प्रद्युम्न का पाणिग्रहण हो तो कितना सुन्दर रहे। उस युग में मामा की पुत्री के साथ विवाह करने की परम्परा थी, और उस विवाह को उचित माना जाता था। उसने एक दूत को अपने भाई के पास भेजा। रुक्मि ने स्पष्ट इन्कार करते हुए कहा—'मैं अपनी पुत्री वैदर्भी को चाण्डाल को देना पसन्द करता हूँ पर कृष्ण वासुदेव के कुल में देना योग्य नहीं समझता।'

जब यह समाचार दूत ने रुक्मिणी को कहा तो उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ कि मैंने सन्देश भेजकर उचित नहीं किया। भाई के अपमान से रुक्मिणी का मुख म्लान हो गया। प्रद्युम्नकुमार ने

---

७३. त्रिषष्टि० ८।७।१—५

७४. (क) त्रिषष्टि० ८।७।६-७

(ख) कण्हेण वि अणिच्छंतो वि परं पीइमुव्वहंतेण विज्जाहर-धरणिगोयरपत्थिवकण्णाणं सरिसजोव्वणगुणाणं पाणि गाहिओ पासायगतो दोगुंदुगदेवो इव भोए भुंजमाणो निरुव्विग्गो विहरइ।

—वसुदेवहिण्डी पृ० ९७

माता से पूछा—मां तुम क्यों मुरझा गई हो ? मुझे कारण बताओ, मैं तुम्हारी भावना पूर्ण करूंगा। माता रुक्मिणी ने उसे सारी बात सुनादी।

प्रद्युम्न ने कहा—माता, आप चिन्ता न करें। मैं आपकी इच्छा को पूर्ण करूंगा। प्रद्युम्न शांबकुमार को साथ लेकर भोजकट नगर गया। एक ने किन्नर का और दूसरे ने चाण्डाल का रूप धारण किया। संगीत कला के द्वारा नगर निवासियों के मन को उन्होंने मुग्ध कर दिया। रुक्मि राजा ने जब उनके मधुर गायन की प्रशंसा सुनी तब उन्हें अपने पास बुलाया। संगीत की सुमधुर स्वरलहरी पर वह भी झूम उठा। उस समय उसकी लड़की वैदर्भी भी वहां आगई और पिता की गोद में बैठ गई। उसने भी उनका गायन सुना। गायन पूर्ण होने पर राजा रुक्मि ने उन्हें विराट् सम्पत्ति दी और पूछा आप कहां से आ रहे हैं ? उन्होंने बताया कि हम स्वर्ग से द्वारिका आये, जहां वासुदेव श्रीकृष्ण राज्य कर रहे हैं। उसी समय वैदर्भी ने पूछा– कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का प्रद्युम्न नामक पुत्र है, क्या तुम उनको जानते हो ?

शांव ने कहा—जो रूप में कामदेव के सदृश है, जो पृथ्वी का शृंगार है ऐसे महापराक्रमी प्रद्युम्न को कौन नहीं जानता ?

यह सुन वैदर्भी के मानस में प्रद्युम्न के प्रति प्रेम पैदा हुआ। उसी समय राजा का हाथी उन्मत्त होकर अपने स्थान को छोड़कर भाग गया। वह नगर में उपद्रव करने लगा। कोई भी महावत उसे वश में न कर सका। उसने उपद्रव से तंग आकर नगर में यह उद्-घोषणा करवाई कि जो कोई भी हाथी को वश में कर लेगा उसे राजा मनोवांच्छित वस्तुएं प्रदान करेगा। किसी ने भी उस उद्-घोषणा को स्वीकार नहीं किया, अन्त में प्रद्युम्न और शांव ने उद्-घोषणा स्वीकार की। उन्होंने उसी समय संगीत की सुमधुर लहरी से हाथी को वश में कर लिया और उसी हाथी पर आरूढ़ होकर मस्ती में झूमते हुए हस्तिशाला में आये। हाथी वहां बांध दिया। राजा ने प्रसन्नता से दोनों को बुलाया और कहा—तुम्हें जो चाहिए सो मांगलो।

उन्होंने कहा—राजन् ! हमारे यहाँ भोजन बनाने वाला कोई नहीं है, अतः आप अपनी पुत्री वैदर्भी को हमें देदें। वैदर्भी का नाम

सुनते ही राजा एकदम क्रुद्ध हुआ। उसने उसी समय उन्हें बाहर निकाल दिया। दोनों नगर के बाहर पहुँचे। शांब ने कहा—भाई! माता रुक्मिणी दुःखी होती होगी अतः विवाह का कार्य शीघ्र संपन्न कर हमें द्वारिका जाना चाहिए।

प्रद्युम्न अर्धरात्रि में वैदर्भी के शयनगृह में विद्यावल से पहुँचा। वैदर्भी को जगाकर उसके हाथ में माता रुक्मिणी का पत्र दिया और कहा—मैं रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहता हूँ। वैदर्भी की इच्छा से प्रद्युम्न ने उसी समय गांधर्वविवाह कर लिया। रात्रि भर वहां रह कर प्रातःकाल शीघ्र ही वह वहां से चल दिया। चलते समय उसने कहा—कोई तुमसे मेरा नाम पूछे तो बतलाना मत। मैंने मंत्र शक्ति से तुम्हारे शरीर को मंत्रित कर दिया है। कोई तुम्हें कष्ट नहीं दे सकता।

रात्रि भर जागरण के कारण प्रातःकाल वैदर्भी को गहरी निद्रा आगयी। प्रातःकाल धायमाता आयी और उसने वैदर्भी के हाथों में कंकण आदि विवाह चिह्न देखे तो चकित रह गई। वैदर्भी को जगाकर पूछने पर भी उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। धाय माता ने जाकर रुक्मि राजा को सारी बात कह दी। रुक्मि राजा न भी पूछा, पर उत्तर न मिलने से उसे क्रोध आया। अनुचर को भेजकर प्रद्युम्न और शांब को जो चण्डाल के वेश में थे, बुलाया और वैदर्भी को देते हुए कहा—इस कन्या को ग्रहण करो, और ऐसे स्थान पर चले जाओ जहां मैं तुम्हें बारह वर्ष तक भी न देख सकूं।

प्रद्युम्न ने कहा—राजपुत्री! क्या तुम हमारे साथ चलना पसन्द करती हो?

राजपुत्री वैदर्भी ने स्वीकृति दी और वे वैदर्भी को लेकर चल दिये।

राजा रुक्मि राजसभा में आया। उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ कि मैं जोश में होश को भूल गया और वैदर्भी को चण्डाल को सौंप दी।

राजा उदास मन से राजसभा में बैठा। उसे रह रह कर अपने दुष्टकृत्य पर विचार आने लगा। उसी समय उसके कानों में वाद्यों

की मधुर ध्वनि आयी। उसने सभासदों से पूछा—यह ध्वनि कहां से आ रही है। मगर किसी को उसका पता नहीं था। अनुचरों को भेजकर तलाश की गई, उन्होंने आकर निवेदन किया—नगर के बाहर एक भव्य-भवन में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शांब ठहरे हुए हैं। उनके साथ वैदर्भी भी है। राजा को समझने में देर न लगी कि यह सारी करामात प्रद्युम्न की है। राजा ने अपने भागिनेय और जामाता प्रद्युम्न को बुलाया, और उत्सवपूर्वक वैदर्भी का प्रद्युम्न के साथ पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न किया। फिर वैदर्भी को लेकर प्रद्युम्न द्वारिका आया, माता रुक्मिणी अत्यधिक प्रसन्न हुई।[७५]

●●

७५. (क) त्रिषष्टि० ८।७।३८-८६
(ख) प्रद्युम्नचरितम्—महासेनाचार्य, सर्ग ८, ९ पृ० ८९-१७४
(ग) प्रद्युम्न चरित्र—रत्नचन्द्र गणी
(घ) वसुदेवहिण्डी—पृ० ९८-१००, में प्रस्तुत कथा अन्य रूप से आयी है। विस्तार भय से उसे न लिखकर मूल ग्रन्थ अवलोकन की सूचना करता हूँ।

—लेखक

जरासंध का युद्ध

- जरासंध का युद्ध के लिए प्रस्थान
- अरिष्टनेमि की स्वीकृति
- श्रीकृष्ण का द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थान
- जरासंध के साथ युद्ध
- जरासंध की मृत्यु
- वासुदेव श्रीकृष्ण
- महाभारत में जरासंध-युद्ध का वर्णन
- समीक्षा

जरासंध का युद्ध

जरासंध का युद्ध के लिए प्रस्थान :

आचार्य हेमचन्द्र रचित त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र,[1] एवं आचार्य मलधारी हेमचन्द्र रचित भव-भावना[2] व यति रत्नसुन्दर रचित अमम स्वामी चरित्र के अनुसार कितने ही व्यापारी व्यापारार्थ यवन द्वीप से समुद्र के रास्ते द्वारिका नगरी में आये। द्वारिका के वैभव को देखकर वे चकित हो गये। रत्नकम्बल के अतिरिक्त वे जितनी भी वस्तुएं लाये थे, सभी उन्होंने द्वारिका में बेच दी। रत्न-कम्बलों को लेकर वे राजगृह नगर पहुँचे। वे रत्नकम्बल उन्होंने जीवयशा को बताईं। जीवयशा को कम्बल पसन्द आए और उसने उन्हें आधी कीमत में लेना चाहा। व्यापारियों ने मुँह मचकाते हुए कहा—यदि हमें इतने कम मूल्य में देने होते तो द्वारिका में ही क्यों न बेच देते, जहाँ पर इससे दुगुनी कीमत आ रही थी।

जीवयशा ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि द्वारिका नगरी कहाँ है? उसके राजा कौन हैं?

---

१. त्रिषष्टि ८।७।१३४-१४८।

२. भव-भावना गा. २६५९-२६६५, पृ० १७६-१७७।

व्यापारी—द्वारिका समुद्र के किनारे है और वहाँ पर वसुदेव के पुत्र श्री कृष्ण राज्य कर रहे हैं। उनके भाई बलराम है। नगरी क्या है, स्वर्ग की अलकापुरी है।

यह सुनते ही जीवयशा चौंकी। उसके आश्चर्य का पार न रहा। क्या मेरे पति कंस को मारनेवाला श्रीकृष्ण अभीतक जीवित है? वह मरा नहीं है? वह रोने लगी तो जरासंध ने कहा—पुत्री रो मत! मैं अभी जाता हूँ और यादव कुल का समूल नाश कर देता हूँ। यह आश्वासन देकर और विराट् सेना लेकर जरासंध युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ। अपशकुन होने पर भी वह आगे से आगे बढ़ता रहा।

---

३. विभिन्न ग्रन्थों में प्रस्तुत वर्णन प्रकारान्तर से आया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

उत्तरपुराण के अनुसार यह कथा इस प्रकार है—

कुछ व्यापारी जलमार्ग से व्यापार करते हुए भूल से द्वारवती नगरी पहुँचे, वहां की विभूति को निहार कर वे आश्चर्यचकित हुए, उन्होंने द्वारवती नगरी से बहुत से श्रेष्ठ रत्न खरीदे। और उन्होंने वे रत्न राजगृह नगरी में जरासंध को अर्पित किये, बहुमूल्य-रत्नों को देखकर जरासंध ने चकित होकर पूछा—कहां से लाये? उन्होंने द्वारवती का विस्तार से वर्णन किया?

—उत्तरपुराण—७१।५२-६४ पृ० ३७८-९।

हरिवंशपुराण के अनुसार जरासंध राजा के पास अमूल्य मणिराशियों के विक्रयार्थ एक वणिक पहुँचा। —५०, १-४।

शुभचन्द्राचार्य प्रणीत पाण्डव-पुराण में एक समय किसी विद्वान् पुरुष ने राजगृह नगर पहुँच कर जरासंध राजा को उत्तम रत्न अर्पित किये; राजा के पूछने पर उसने बताया कि मैं द्वारिकापुरी से आया हूँ। वहां भगवान् नेमिनाथ के साथ कृष्ण राज्य करते हैं। इस प्रकार उसके कथन से द्वारिका में यादवों के स्थित होने के समाचार को जानकरके जरासंध को उन पर बहुत ही क्रोध हुआ। वह उनके ऊपर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा।

—पाण्डवपुराणम् १९।८।११, पृ० ३९०।

अरिष्टनेमि की स्वीकृति :

शुभचन्द्राचार्य ने पाण्डव-पुराण में लिखा है—जरासंध विराट् सेना लेकर युद्ध के लिए आ रहा है, नारद से यह समाचार जानकर श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार से अपनी विजय के सम्बन्ध में पूछा। नेमीश्वर ने मन्दहास्यपूर्वक 'ओम्' कहकर इस युद्ध में प्राप्त होने वाली विजय की सूचना दी। श्री कृष्ण युद्ध के लिए समुद्यत हो गये।[४] किन्तु प्रस्तुत वर्णन, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, भव-भावना, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण आदि अन्य ग्रन्थों में नहीं है। श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार तो नेमिनाथ उस समय गृहस्थाश्रम में थे, वे उस युद्ध में साथ रहे हैं, अतः उनके द्वारा स्वीकृति देना संभव हो सकता है, क्योंकि वे गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान के धारक थे। वे यह भी जानते थे कि प्रतिवासुदेव के साथ वासुदेव का युद्ध अनिवार्य रूप से होता ही है। प्रतिवासुदेव पराजित होते हैं और वासुदेव की विजय होती है।

श्री कृष्ण का द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थान :

श्रीकृष्ण भी बलराम, अरिष्टनेमि, व अपने अन्य परिजनों के साथ द्वारिका से युद्ध के लिए प्रस्थित हुए।[५] उन्होंने द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली में पड़ाव डाला।[६] उससमय विद्याधर आदि आये और उन्होंने समुद्र विजय अदि से प्रार्थना की कि हम आपके साथ

---

४. निर्हेतुसमरप्रीतो माधवं नारदोऽब्रवीत्।
जरासंधमहाक्षोभं वैरिविध्वंसकारकम्॥
मुरारिरपि नेमीशमभ्येत्य पुरतः स्थितः।
अप्राक्षीत्क्षिप्रमात्मीयं जयं शत्रुक्षयोद्भवम्॥
नेमिर्नम्रामराधीशो विष्णुमोमित्यभाषत।
स्मिताद्यैः स्वजयं ज्ञात्वा योद्धुं विष्णुः समुद्ययौ॥
—पाण्डव पुराणम् १९।१२-१४, पृ० ३९०-३९१

५. त्रिषष्टि० ८।७।१५७-१९५

६. पंचचत्वारिंशतं तु योजनानि निजात् पुरात्।
गत्वा तस्थौ सेनपल्यां ग्रामे संग्रामकोविदः॥
—त्रिषष्टि० ८।७।१९६

मिलना चाहते हैं, भविष्य में हम आपके नेतृत्व में रहेंगे। यद्यपि आपके कुल में श्री कृष्ण जैसे बलिष्ट महापुरुष हैं जो अकेले ही जरासंध को जीतने में समर्थ हैं और भगवान् अरिष्टनेमि भी आपके कुल में हैं। यद्यपि आपको किसी अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जरासंध की सहायता में कुछ बलवान् खेचर-विद्याधर आने वाले हैं अतः उन्हें रोकने के लिए वसुदेव के नेतृत्व में प्रद्युम्न व शाम्बकुमार आदि को हमारे साथ भेजिए, जिससे उनमें से एक भी यहाँ तक न आसके। यह सुनकर समुद्रविजय ने वैसा ही किया।[७] अरिष्टनेमि ने उस समय अपनी भुजा पर जन्मस्नात्र के समय देवताओं ने जो अस्त्रवारिणी औषधि बाँधी थी वह वसुदेव को दी।[८]

जरासंध के साथ युद्ध :

उस समय मगधपति जरासंध को उसके मंत्री हंसक ने निवेदन किया—हे राजन्! पूर्व में कंस ने बिना विचारे कार्य किया जिसका कटु परिणाम हम लोगों को भोगना पड़ा है। श्रीकृष्ण की सेना में स्वयं कृष्ण के अतिरिक्त नेमिनाथ, बलराम, दशार्ह, व पाण्डव आदि महान् योद्धा हैं, पर हमारी सेना में आपके अतिरिक्त कौन वीर है जो उन वीरों से जूझ सके? अतः हम मन्त्रियों की नम्र प्रार्थना है कि कृष्ण के साथ युद्ध न किया जाय।[९]

जरासंध ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा—ज्ञात होता है कि कृष्ण ने तुझे रिश्वत दी है। इसी कारण तू ऐसा बोल रहा है।[१०]

हंसक व अन्य मन्त्रियों के समझाने पर भी जरासंध न समझ सका। उसने अपने सैन्य को चक्र-व्यूह रचने का आदेश दिया।[११]

श्रीकृष्ण ने गरुड़व्यूह की रचना की।[१२] भ्रातृस्नेह से उत्प्रेरित होकर अरिष्टनेमि युद्ध स्थल पर साथ में आये हैं, यह जानकर

---

७. त्रिषष्टि० ८। ७। १९७-२०५

८. त्रिषष्टि० ८। ७। २०६

९. त्रिषष्टि० ८। ७। २०७-२२५

१०. त्रिषष्टि० ८। ७। २२६

११. त्रिषष्टि० ८। ७। २२७-२३२-२४१

१२. त्रिषष्टि० ८। ७ २४२-२६०

शकेन्द्र ने मातली नामक सारथी के साथ अपना रथ उनके लिए भेजा।[13] दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों ओर के सैनिक अपनी वीरता दिखलाने लगे। बाणों की वर्षा होने लगी। जरासंध के पराक्रमी योद्धाओं ने जब वीरता दिखलायी तो यादव भी पीछे न रहे। उन्होंने भी जरासंध की सेना को तितर-वितर कर दिया। जब जरासंध की सेना भागने लगी तब स्वयं जरासंध युद्ध के मैदान में आया, और उसने समुद्रविजय जी के कई पुत्रों को मार दिया। उस समय उसका रूप साक्षात् काल के समान था। यादव सेना इधर उधर भागने लगी। तब बलराम ने जरासंध के अट्ठाइस पुत्रों को मार दिया। यह देख जरासंध ने बलराम पर गदा का प्रहार किया। जिससे रक्त का वमन करते हुए बलराम भूमि पर गिर पड़े। उस समय यादव सेना में हाहाकार मच गया। पुनः जरासंध बलराम पर प्रहार करने को आ रहा था कि वीर अर्जुन ने जरासंध को बीच में ही रोक लिया। इस बीच श्री कृष्ण ने जरासंध के अन्य उनहत्तर (६९) पुत्रों को भी मार डाला। अपने पुत्रों को दनादन मारते हुए देखकर जरासंध कृष्ण पर लपका। उस समय चारों ओर यह आवाज फैल गई कि 'कृष्ण मर गये हैं।' यह सुनते ही मातली सारथी ने अरिष्टनेमि से नम्र निवेदन किया—प्रभु! आपके सामने जरासंध की क्या हिम्मत है, स्वामी! यदि आपने इस समय जरा भी उपेक्षा की तो यह यादव कुल नष्ट हो जाएगा। यद्यपि आप सावद्य कर्म से विमुख हैं, तथापि लीला बताये बिना इस समय गति नहीं है। यह सुनते ही अरिष्टनेमि ने कोप किये बिना ही पौरंदर नामक शंख बजाया। शंखनाद को सुनते ही यादव सेना स्थिर हो गई[14] और शत्रु सेना क्षोभ को प्राप्त हुई। फिर अरिष्टनेमि के संकेत से मातली सारथी ने उस रथ को युद्ध के मैदान में घुमाया। अरिष्टनेमि ने

---

१३. भ्रातृस्नेहाद्युयुत्सुं च शक्रो विज्ञाय नेमिनम्।
प्रैषीद्रथं मातलिना जैत्रशस्त्रांचितं निजम्॥
—त्रिषष्टि ८।७ २६०-६१

१४. त्रिषष्टि ८।७ ४२०-४२६

हजारों बाणों की वृष्टि की। उन बाणों की वृष्टि ने किसी के रथ, किसी के मुकुट, किसी की ध्वजा छेद दी, किन्तु किसी भी शत्रु की शक्ति अरिष्टनेमि के सामने युद्ध करने की नहीं हुई। प्रतिवासुदेव को वासुदेव ही नष्ट करता है, यह एक मर्यादा थी। अतः अरिष्ट-नेमि ने जरासंध को मारा नहीं।[१५] अपितु जरासंध के सैनिक दल को कुछ समय तक रोक दिया। तब तक बलदेव और श्रीकृष्ण स्वस्थ होगये। यादव सेना भी पुनः लड़ने को तैयार होगई।

जरासंध ने पुनः युद्ध के मैदान में आते ही कृष्ण से कहा—अरे कृष्ण! तू कपट मूर्ति है। आज दिन तक तू कपट से जीवित रहा है, पर आज मैं तुझे छोड़नेवाला नही हूँ। तूने कपट से ही कंस को मारा है, कपट से ही कालकुमार को मारा है। तूने अस्त्र-विद्या का तो कभी अभ्यास ही नहीं किया है। पर आज तेरी माया का अन्त लाऊँगा और मेरी पुत्री जीवयशा की प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा।[१६]

कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा– अरे जरासंध! तू इस प्रकार वृथा अहंकार के वचन किसलिए बोलता है? वाक्चातुर्य न दिखाकर शक्ति दिखा। मैं शस्त्रविद्या भले नहीं सीखा तथापि तुम्हारी पुत्री जीवयशा की अग्नि प्रवेश की प्रतिज्ञा को मैं अवश्य पूर्ण करूंगा।"

जरासंध की मृत्यु :

फिर दोनों युद्ध के मैदान में ऐसे कूदे कि देखने वाले अवाक् रह गये। उनकी आँखें ठगी सी रह गई। धनुष की टंकार से आकाश गूंजने लगा। पर्वत भी मानों कांपने लगे। जरासंध बाणों की वर्षा करने लगा पर श्रीकृष्ण उन सभी बाणों का भेदन छेदन करने

---

१५. प्रतिविष्णुर्विष्णुनैव वध्य इत्यनुपालयन्।
स्वामी त्रैलोक्यनाथोऽपि जरासंधं जघान न ॥
—त्रिषष्टि ८। ७। ४३२

१६. तव प्राणैः सहैवाद्य माया पर्यतयाम्यरे!
एषोऽद्य जीवयशसः प्रतिज्ञां पूरयामि च ॥
—त्रिषष्टि ८। ७। ४३६-४३८

लगे। जब जरासंध के पास सभी अन्यान्य शस्त्र और अस्त्र समाप्त हो गये तब उसने अन्तिम शस्त्र के रूप में चक्र शस्त्र को हाथ लगाया। उसे आकाश में घुमाकर ज्यों ही श्रीकृष्ण पर चक्र का प्रहार किया कि एक क्षण के लिए दर्शक स्तम्भित हो गये! किन्तु चक्र श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उन्हें बिना कष्ट दिये उनके पास अवस्थित हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने हाथ में ले लिया। उसी समय 'नौवां वासुदेव उत्पन्न हो गया है' ऐसी उद्-घोषणा हुई।[१७]

श्री कृष्ण ने दया लाकर जरासंध से कहा—अरे मूर्ख! क्या यह भी मेरी माया है। अभी भी तू जीवित घर चला जा, मेरी आज्ञा का पालन कर और व्यर्थ के श्रम को छोड़कर अपनी सम्पत्ति भोग। वृद्ध अवस्था आने पर भी जीवित रह।

जरासंध ने कहा--कृष्ण! यह चक्र मेरे सामने कुछ भी नहीं है। मैंने इसके साथ अनेक बार क्रीड़ा की है, यह तो लघु पौधे की तरह उखाड़ कर फेंका जा सकता है। तू चाहे तो चक्र को फेंक सकता है। फिर श्री कृष्ण ने वह चक्र छोड़ा। पुण्य की प्रबलता से दूसरों के शस्त्र भी स्वयं के बन जाते हैं। चक्र ने जाकर जरासंध का मस्तिष्क छेदन कर दिया। जरासंध मरकर चतुर्थ नरक में गया। श्री कृष्ण का सर्वत्र जय जयकार होने लगा।[१८]

वासुदेव श्रीकृष्ण :

जरासंध की मृत्यु होगई, यह जानकर श्रीकृष्ण के जो शत्रु राजा थे, जिनका निरोध अरिष्टनेमि ने कर रखा था, उनको अरिष्टनेमि

---

१७. (क) जाते सर्वास्त्रवैफल्ये वैलक्ष्यामर्षपूरितः।
चक्रं सस्मार दुर्वारमन्यास्त्रैर्मगधेश्वरः॥
····नवमो वासुदेवोऽयमुत्पन्न इति घोषिणः।
गंधांबुकुसुमवृष्टिं कृष्णे व्योम्नोऽमुचत्सुराः॥
—त्रिषष्टि ८। ७। ४४६-४५७
(ख) हरिवंश पुराण ५२। ६७। ६०१।

१८. (क) त्रिषष्टि ८। ७। ४५३-४५७
(ख) हरिवंश पुराण ५२। ८३-८४, पृ० ६०२

ने मुक्त कर दिया। वे सभी राजा अरिष्टनेमि के चरणारविन्दों में आकर प्रार्थना करने लगे—भगवन् ! आपने हमें उसी समय जीत लिया। अकेले वासुदेव ही प्रतिवासुदेव को हनन करने में समर्थ हैं फिर उनकी सहायता के लिए आप जैसे लोकोत्तर पुरुष हों तो कहना ही क्या है ? भवितव्यता से जो कुछ भी हुआ है उसके लिए हम हृदय से क्षमाप्रार्थी हैं, हम आपकी शरण में आये हैं।[१९]

सभी राजाओं को साथ लेकर अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि का हृदय से स्वागत किया, और दोनों परस्पर प्रेमपूर्वक मिले। अरिष्टनेमि के कहने से तथा समुद्रविजयजी की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने उन राजाओं का तथा जरासंध के बचे हुए पुत्रों का सत्कार किया।[२०] जरासंध के पुत्र सहदेव को मगध देश के चतुर्थ भाग का राजा बनाया।[२१] समुद्रविजयजी के पुत्र महानेमि को शौर्यपुर का राज्य दिया। हिरण्यनाभ के पुत्र रुक्मनाभ को कौशल देश का राज्य दिया।[२२] उग्रसेन के 'धर' नामक पुत्र को मथुरा का राज्य दिया।[२३] अरिष्टनेमि की आज्ञा से मातली नामक सारथी भी रथ को लेकर शक्रेन्द्र के पास चला गया। अन्य राजागण भी अपनी छावनी में चले गये।[२४]

दूसरे दिन समुद्रविजय और कृष्ण वासुदेव, प्रद्युम्न, शाम्बकुमार सहित वसुदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे विद्याधरों पर

---

१९. त्रिषष्टि ८।८।१-४

२०. त्रिषष्टि ८।८।५-७

२१. (क) त्रिषष्टि ८।८।८
(ख) हरिवंश पुराण—५३।४४।६०७

२२. त्रिषष्टि ८।८।९

२३. त्रिषष्टि ८।८।१०

२४. (क) त्रिषष्टि ८।८।११
(ख) गतो मातलिरापृच्छ्य सेवेयं स्वामिनोऽन्तिकम्।
यादवाः शिविरस्थानं निजं जग्मुः सपार्थिवाः ॥
—हरिवंशपुराण ५२।६१।६०३

विजय पताका फहरा कर वहां आये। जरासंध के पुत्र सहदेव ने जरासंध का अग्निसंस्कार किया। जीवयशा ने अपने पिता की मृत्यु जानकर अग्नि में प्रवेश कर अपने जीवन को समाप्त किया।[२५] यादवों ने उसका उत्सव मनाया। उस स्थान का नाम सिनपल्ली के स्थान पर आनन्दपुर रखा।[२६]

श्रीकृष्ण ने कुछ समय में तीन खण्ड की साधना की और सर्वत्र विजय वैजयन्ती लहरा कर द्वारिका आये। वहां पर आनन्दपूर्वक रहकर तीन खण्ड का राज्य करने लगे।[२७]

महाभारत में जरासंध युद्ध वर्णन :

जैन साहित्य में जैसा जरासंध युद्ध का वर्णन मिलता है, वैसा महाभारत में नहीं है। वह बिल्कुल ही पृथक् ढंग का है। वह वर्णन इस प्रकार है—

महाभारत के अनुसार भी जरासंध एक महान् पराक्रमी सम्राट् था। उसका एकच्छत्र साम्राज्य था। जब कृष्ण ने कंस को मार डाला और जरासंध की कन्या विधवा हो गई तब श्रीकृष्ण के साथ जरासंध की शत्रुता हो गई। जरासंध ने वैर का बदला लेने के लिए अपनी राजधानी से ही एक बड़ी भारी गदा निन्यानवे बार घुमाकर जोर से फेंकी। वह गदा निन्यानवे योजन दूर मथुरा के पास गिरी।

---

२५. पत्युः पितुश्च संहारं सकुलस्यापि वीक्ष्य सा।
स्वजीवितं जीवयशा जहौ ज्वलनसाधनात् ॥२६॥

२६. (क) चुस्कुन्दिरे यथानन्दं यदवस्तज्जनार्दनः।
तत्रानन्दपुरं चक्रे सिनपल्लीपदे पुरम् ॥२७॥
—त्रिषष्टि ८।८।

(ख) आनन्दं ननृतुर्यत्र यादवा मागधे हते।
आनन्दपुरमित्यासीत्तत्र जैनालयाकुलम् ॥
—हरिवंशपुराण ५३।३०।६०६

२७. (क) त्रिषष्टि ८।८।२८
(ख) हरिवंशपुराण ५३।४१-४२। पृ० ६०६

उस समय श्री कृष्ण मथुरा में ही थे, पर वह गदा उनकी कुछ भी हानि न कर सकी।[२८]

जरासंध के हंस और डिम्भक नामक सेनापति बड़े बहादुर थे, अतः यादवों ने उनके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं समझा।[२९] जब वे यमुना में डूबकर मर गये तब श्रीकृष्ण ने विचारा कि जरासंध को युद्ध में मारना कठिन ही नहीं, कठिनतर है अतः उसे द्वन्द्व युद्ध में ही हराया व मारा जाय।[३०] इसलिए श्रीकृष्ण भीमसेन व अर्जुन के साथ ब्राह्मणों के वेश में मगध की ओर चल दिये। वे जरासंध के वहाँ पर पहुँचे। उन्हें देखते ही जरासंध आसन से उठकर खड़ा हुआ। उनका आदर सत्कार कर कुशल प्रश्न पूछे। भीमसेन और अर्जुन मौन रहे। बुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्! ये इस समय मौनी हैं इसीलिए नहीं बोलेंगे। आधी रात्रि के पश्चात् ये आपसे बातचीत करेंगे।[३१]

तीनों वीरों को यज्ञशाला में ठहराकर जरासंध अपने रनवास में चला गया। अर्धरात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह फिर उनके पास आया। उनके अपूर्व वेश को देखकर जरासंध को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मचारियों की वेशभूषा से विरुद्ध तीनों की वेशभूषा को देखकर जरासंध ने कहा—हे स्नातक ब्राह्मणों! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थाश्रम में जाने से पहले न तो कभी माला पहनते हैं और न चन्दन आदि लगाते हैं। तुम अपने को ब्राह्मण बता चुके हो, पर मुझे तुम में क्षत्रियों के भाव दीख पड़ते हैं। तुम्हारे चेहरे पर क्षत्रियों का तेज साफ झलक रहा है। सत्य कहो तुम कौन हो?[३२]

श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया और साथ ही भीम व अर्जुन का भी। अपने आने का प्रयोजन बतलाते हुए उन्होंने कहा—तुमने

---

२८. महाभारत, सभापर्व, अ० १९, श्लोक १९-२५

२९. महाभारत, सभापर्व, अ० १९ श्लोक २७-२८

३०. वहीं, सभापर्व, अ० २० श्लोक १-२

३१. वहीं, सभापर्व, अ० २१ श्लोक ३०-३४

३२. महाभारत, सभापर्व, अ० २१, श्लोक ३५-४८

बलपूर्वक बहुत से राजाओं को हराकर, बलिदान की इच्छा, से अपने यहाँ कैद कर रखा है। ऐसा अति कुटिल दोष करके भी तुम अपने को निर्दोष समझ रहे हो ! कौन पुरुष, बिना किसी अपराध के अपने सजातीय भाइयों की हत्या करना चाहेगा ? फिर तुम तो नृपति हो ! क्या समझ कर उन राजाओं को पकड़कर महादेव के आगे उनका बलिदान करना चाहते हो ? हम लोग धर्म का आचरण करने वाले और धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं। इस कारण यदि हम तुम्हारे इस क्रूर कार्य में हस्तक्षेप न करें तो हमें भी तुम्हारे किए पाप का भागी बनना पड़ेगा। हमने कभी और कहीं मनुष्य बलि होते नहीं देखी है, न सुनी ही है। फिर तुम मनुष्यों के बलिदान से क्यों देवता को सन्तुष्ट करना चाहते हो ? हे जरासंध ! तुम क्षत्रिय होकर पशुओं की जगह क्षत्रियों की बलि देना चाहते हो ! तुम्हारे सिवाय कौन मूढ ऐसा करने का विचार करेगा ? तुम्हें उन कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। तुम अपनी जाति का विनाश करते हो और हम लोग पीड़ितों की सहायता करते हैं।[33]

---

३३. त्वया चोपहृता राजन् ! क्षत्रिया लोकवासिनः
तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम् ।
राजा राज्ञः कथं साधून्हिंस्यान्नृपतिसत्तम !
तद्राज्ञः संनिगृह्य त्वं रुद्रायोपहिजीर्षसि ।।
अस्मांस्तदेनोपगच्छेत्कृतं बार्हद्रथ ! त्वया ।
वयं हि शक्ता धर्मस्य रक्षणे धर्मचारिणः ।।
मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्टः कदाचन ।
स कथं मानुषैर्देवं यष्टुमिच्छसि शंकरम् ।।
सवर्णो हि सवर्णानां पशुसंज्ञा करिष्यसि ।
कोऽन्य एवं यथा हि त्वं जरासंध ! वृथामतिः ।।
यस्यां यस्यामवस्थायां यद्यत्कर्म करोति यः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समवाप्नुयात् ।।
ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्तानुसारिणः ।
ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहाऽऽगताः ।।

— महाभारत, सभापर्व, अ० २२, श्लो० ८ से १४

उठाकर भीमसेन ने जरासंध को पृथ्वी पर पटका और घुटना मारकर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ डाली। फिर गरजते हुए भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर खूब रगड़ चुकने के पश्चात् बीच से उसकी टाँगें चीर डालीं।[४१]

तत्पश्चात् तीनों वीर जरासंध के पताका युक्त रथ में बैठकर वहाँ पहुँचे जहाँ जरासंध ने राजाओं को कैद कर रखा था। उनको बन्धन से मुक्त कर श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन उन राजाओं के साथ गिरिव्रज से बाहर निकले।[४२]

श्री कृष्ण ने जरासंध के लड़के सहदेव को मगध देश की राजगद्दी देकर राज्याभिषेक कर दिया।[४३] श्रीकृष्ण वहाँ से लौटकर इन्द्रप्रस्थ चले आये।

समीक्षा

महाभारत के अनुसार जरासंध वध कौरवों और पाण्डवों के युद्ध से पहले हुआ। कौरव-पाण्डव युद्ध के समय जरासंध विद्यमान नहीं था।[४४]

महाभारत के प्रस्तुत प्रसंग में श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ब्राह्मण स्नातक का वेश धारण करके जरासंध के पास जाते हैं, पर यह समझ में नहीं आता कि उनके गुप्त वेश धारण करने का क्या प्रयोजन था ?

दूसरी बात, जरासंध की राजसभा में भीमसेन और अर्जुन मौन हो जाते हैं। तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि इन लोगों ने मौनव्रत ग्रहण कर रखा है, एतदर्थ ये अभी आपसे वार्तालाप नहीं करेंगे। आधी रात के पश्चात् ये बोलेंगे। फिर आधी रात में जरासंध उनके पास आता है।

इस कथन में भी एक प्रकार का कला-कौशल दिखलाया गया है, पर यह स्पष्ट है कि यह कला-कौशल महापुरुष के योग्य नहीं

---

४१. वहीं, सभापर्व २४, श्लो० ५-६

४२. वहीं, सभापर्व २४, श्लो० १०-१३

४३. वहीं, श्लो० ४०-४३

४४. महाभारत देखिए—

था। महाभारत का पर्यवेक्षण करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि कृष्ण का उद्देश्य जरासंध पर आधी रात में हमला कर उसका वध कर देने का नहीं था। उन्होंने ऐसा किया भी नहीं। युद्ध उस रात्रि में नहीं, किन्तु दूसरे दिन चालू होता है। बाबू बंकिमचन्द्र ने अपने कृष्ण चरित्र में इस सम्बन्ध में काफी ऊहापोह किया और वे अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रस्तुत प्रसंग महाभारत में बाद में प्रक्षिप्त किया गया है या लेखक की असावधानी से यह भूल हो गई है।[४५]

●●

४५. श्रीकृष्णचरित्र—बाबू बंकिमचन्द्र, पृ० २२७-२२९ गुजराती अनुवाद।

द्रौपदी का स्वयंवर और अपहरण

- द्रौपदी के स्वयंवर में श्रीकृष्ण
- द्रौपदी का अपहरण
- द्रौपदी का उद्धार
- शंख-शब्द का मिलाप
- पाण्डवों का निर्वासन
- पाण्डु मथुरा की स्थापना

द्रौपदी का स्वयंवर और अपहरण

●

द्रौपदी के स्वयंवर में श्रीकृष्ण :

सतीशिरोमणि द्रौपदी पाञ्चाल जनपद के अधिपति द्रुपद राजा की पुत्री थी। उसकी माता का नाम चूलनी था।[1] उसका रूप सुन्दर ही नहीं, सुन्दरतम था। ज्यों-ज्यों युवावस्था आती गई त्यों-त्यों रूप भी निखरता गया। एक दिन स्नान आदि से निवृत्त होकर, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह अपने पिता द्रुपद राजा को नमस्कार करने गई। पिता ने बड़े प्यार से उसे अपनी गोद में बिठाया। उस दिन द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को निहार कर राजा आश्चर्य चकित रह गया। उसने उसे स्नेह-स्निग्ध शब्दों में सम्बोधित करते हुए कहा—पुत्री ! यदि मैं किसी राजा या युवराज को तुझे भार्या के रूप में अर्पित करूं तो संभव है तू सन्तुष्ट हो या न भी हो। इससे मेरे अन्तर्मानस में जीवन पर्यन्त सन्ताप बना रह सकता है अतः श्रेयस्कर यही है कि मैं स्वयंवर की रचना करूं और

---

१. (क) पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नामं नगरे होत्था····तत्थणं दुवए नामं राया····तस्स णं चुल्लणी देवी।

—ज्ञातासूत्र० अ० १६

(ख) त्रिपष्टि० ८।१०

तू स्वेच्छा से जिस राजा या युवराज का वरण करे वही तेरा पति हो।

इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने अपने नगर कंपिलपुर में स्वयंवर के लिए भिन्न-भिन्न देशों के राजाओं को आमंत्रित किया। उन्होंने सर्वप्रथम निमंत्रण कृष्ण वासुदेव और उनके दशार्ह आदि राजपरिवार को दिया।[२]

दूत द्वारा स्वयंवर में उपस्थित होने के निमंत्रण को जानकर कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और आदेश दिया कि सुधर्मा सभा में जाकर सामुदायिक भेरी बजाओ। दूत ने महोद्घोष से भेरी बजायी। भेरी की ध्वनि को श्रवण करते ही समुद्रविजय प्रमुख दश दशार्ह यावत् महासेन प्रमुख छप्पन हजार बलवर्ग स्नानकर विभूषित हो, वैभव, ऋद्धि व सत्कार के साथ कोई घोड़े पर बैठकर, कोई पैदल, श्रीकृष्ण वासुदेव के पास आये।

कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषों को आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार करने का आदेश दिया। स्वयं स्नानादि से निवृत्त हो, वस्त्रालंकार से विभूषित हो, समस्त परिवार के साथ पाञ्चाल जनपद के काम्पिल्य-नगर की सीमा पर पहुँचे। स्थान-स्थान पर अनेकानेक सहस्र नृप उपस्थित हुए। राजा द्रुपद ने कृष्ण वासुदेव आदि सभी राजाओं का कंपिलपुर से बाहर जा अर्घ्य और पाद्य से सत्कार सन्मान किया। सभी अपने अपने लिए नियत आवास में उतरे। द्रुपद के कौटुम्बिक पुरुषों ने अशनादि से उनकी अभ्यर्थना की।[३]

काम्पिल्य नगर के बाहर गंगा महानदी के सन्निकट एक विशाल स्वयंवर-मण्डप बनाया गया, स्वयंवर में रखे हुए आसनों पर राजाओं

---

२. (क) ज्ञातासूत्र अ० १६
(ख) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग ४

३. तए णं दुवए राया वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमं जाणेत्ता पत्तेयं पत्तेयं हत्थिखंध जाव परिवुडे अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ....जेणेव ते वासुदेव पामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ....सक्कारेइ, सम्माणेइ....

—ज्ञातासूत्र १६

के नाम अंकित कर दिये गये। स्वयंवर के दिन कृष्ण आदि सभी राजा अपने-अपने आसनों पर आसीन हुए। राजा द्रुपद ने पुनः सभी अतिथियों का स्वागत किया और श्रीकृष्ण वासुदेव के पास खड़े होकर श्वेत चंवर ढोरने लगे। द्रौपदी पूर्वभव में निदानकृत थी अतः उसने पाँच पाण्डवों के गले में माला डाली और बोली—मैंने पाँच पाण्डवों का वरण किया है। कृष्ण वासुदेव प्रमुख सभी राजाओं ने महान् शब्द से उद्घोष किया—नृपवर! कन्या द्रौपदी ने पाण्डवों का वरण किया, सो अच्छा किया। इसके पश्चात् राजा द्रुपद ने पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण कर दिया।[४] राजा पाण्डु के आमंत्रण पर कृष्ण वासुदेव प्रमुख राजागण हस्तिनापुर पहुँचे। सभी पाण्डव तथा द्रौपदी देवी के कल्याण महोत्सव में सम्मिलित हुए।

प्रस्तुत प्रसंग में श्रीकृष्ण वासुदेव को सभी राजाओं का प्रमुख बताया गया है। प्रथम दूत राजा द्रुपद ने उन्हीं के पास भेजा था। राजा द्रुपद श्रीकृष्ण वासुदेव के ऊपर चंवर ढोरने लगा, आदि बातें सिद्ध करती हैं कि श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व महान् था। वे अपने समय के एक विशिष्ट राजा थे।

वैदिक परम्परा के ग्रन्थों के अनुसार स्वयंवर में राधावेध[५] की कसौटी रखी गई थी। वीर अर्जुन ने वह राधावेध किया जिससे द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली। माता गांधारी को यह

——

बात ज्ञात नहीं थी। अर्जुन ने माता गांधारी से कहा—माता! मैं एक वस्तु लेकर आया हूँ। माता गांधारी ने सहज रूप से कह दिया अच्छा, तुम पाँचों भाई बाँट कर लेलो। माता की आज्ञा का पालन करने के लिए पाँचों भाइयों के साथ द्रौपदी का पाणिग्रहण हुआ।

द्रौपदी का अपहरण :

एक दिन पाण्डुराज पाँच पाण्डवों, कुन्ती देवी, द्रौपदी देवी और अन्तःपुर के अन्य परिजनों से संवृत सिंहासनासीन थे। उस समय कच्छुल्ल नारद जो बाहर से भद्र व विनीत प्रकृति के लगते थे, पर अन्तरंग से कलुषितहृदय वाले थे[६], घूमते-घामते हस्तिनापुर नगर में आये और शीघ्र गति से पाण्डुराज के भवन में प्रविष्ट हुए।

नारद ऋषि को आते देखकर पाण्डु राजा ने पाँच पाण्डवों व कुन्ती देवी सहित आसन से उठकर, सात-आठ कदम सन्मुख जाकर तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा कर वन्दन व नमस्कार किया, और योग्य आसन पर बैठने के लिए आमंत्रित किया।

नारदऋषि ने आसन भूमि पर पानी के छींटे दिये, दर्भ बिछाया, उस पर आसन डाला तथा शान्ति से बैठे। उन्होंने पाण्डुराज से राज्य के सम्बन्ध में तथा अन्य अनेक समाचार पूछे।

पाण्डुराज, कुन्ती देवी, और पाँच पाण्डवों ने नारद ऋषि का सत्कार-सन्मान किया पर द्रौपदी ने नारद को असंयत, अविरत, अप्रतिहत प्रत्याख्यात-पापकर्मा जानकर उनका आदर-सत्कार नहीं किया, और न उनकी पर्युपासना ही की।[७]

नारद मन ही मन सोचने लगे—द्रौपदी अपने रूप-लावण्य के कारण और पाँचों पाण्डवों को पतिरूप में पाकर गर्विष्ठा हो गई है,

---

६. इमं च णं कच्छुल्लणारए दंसणेणं इअभद्दए विणीए अंतो अंतो य कलुसहिए।

—ज्ञाताधर्म अ० १६, पृ० ४६१

७. (क) तए णं सा दोवई देवी कच्छुल्लनारयं असंजयं अविरयं अप्पडिहयपच्चक्खायपावकम्मं ति कट्टु नो आढाइ नो परियाणाइ, नो अब्भुट्ठेइ, नो पज्जुवासइ।

—ज्ञाताधर्म अ० १६, पृ० ४६४

इसी कारण यह मेरा आदर नहीं कर रही है। इसका अप्रिय करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।[८]

इस प्रकार विचार कर वे वहाँ से चल दिये। आकाश मार्ग से उड़ते हुए धातकीखण्ड द्वीप के भरतक्षेत्र की अमरकंका नगरी में पहुँचे। वहाँ का राजा पद्मनाभ था, जो उस समय अपनी सातसौ रानियों के साथ अन्त:पुर में बैठा था। नारद सीधे उसके पास पहुँचे। राजा पद्मनाभ ने उनका आदर-सत्कार किया। नारद ने भी उनके कुशल समाचार पूछे।

राजा पद्मनाभ अपनी रानियों को असाधारण एवं अनुपम सौन्दर्यशालिनी मानता था। उसने नारद से पूछा—हे देवानुप्रिय! आप अनेक ग्रामों नगरों यावत् घरों में प्रवेश करते हैं। मेरी रानियों का जैसा परिवार है, क्या आपने ऐसा परिवार अन्यत्र कहीं देखा है?[१]

नारद, पद्मनाभ की बात सुनकर खिल-खिलाकर हँस पड़े। बोले—पद्मनाभ! तू कूपमण्डूक सदृश है। हे देवानुप्रिय! जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में हस्तिनापुर नगर है। वहाँ द्रुपदराजा की पुत्री चूलनी देवी की आत्मजा, पाण्डुराजा की पुत्रवधू, और पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी देवी है। वह रूप लावण्य में उत्कृष्ट है। तेरा यह

(ख) त्रिषष्टि० ८।१०।२

(ग) हरिवंश पुराण के अनुसार द्रौपदी आभूषण धारण करने में व्यस्त थी अत: उसने नारद की ओर देखा नहीं।

—देखिए ५४।५, पृ० ६०६

८. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) भाविनी दु:खभागेषा कथं न्विति विचिन्तयन्।
निर्ययौ तद्गृहात् क्रुद्धो विरुद्धो नारदो मुनि: ।।

—त्रिषष्टि० ८।१०।३

(ग) हरिवंशपुराण ५४।६-७

९. (क) त्रिषष्टि० ८।१०।५-६

(ख) हरिवंशपुराण ५४।८-६

रानीसमूह उसके छेदे हुए अंगूठे के सौवें हिस्से की बराबरी करने के योग्य भी नहीं है।

नारद ऋषि राजा पद्मनाभ की अनुमति लेकर वहाँ से चल दिये।

नारद के मुंह से द्रौपदी की प्रशंसा सुनकर पद्मनाभ द्रौपदी के प्रति आसक्त हो गया। उसने अपने इष्टदेव का स्मरण किया। देव के उपस्थित होने पर राजा ने द्रौपदी को ले आने का अनुरोध किया। देव, सोई हुई दौपदी देवी को उठाकर राजा पद्मनाभ की अशोक वाटिका में ले आया। निद्राभंग होने पर नवीन वातावरण और स्थान देखकर द्रौपदी विमूढ़-सी हो गई। उसी समय पद्मनाभ ने आकर कहा—हे देवानुप्रिये ! तुम मन में संकल्प-विकल्प न करो। किसी भी प्रकार की चिन्ता न करो और मेरे साथ आनन्दपूर्वक विपुल काम भोगों को भोगती हुई रहो।"

द्रौपदी आये हुए संकट की गंभीरता को समझ गई। उसने कौशल से काम लेने का निश्चय करके कहा—देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की द्वारवती नगरी में मेरे पति के भाई कृष्ण वासुदेव रहते हैं। यदि वे छहमास के अन्दर मेरे उद्धार के लिए नहीं आयेंगे तो मैं आप देवानुप्रिय जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगी। आपकी आज्ञा, उपाय, वचन तथा निर्देशन के अनुसार चलूंगी।[१०]

राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी की बात मान ली और उसे कन्याओं के अन्तःपुर में रखा। द्रौपदी निरन्तर षष्ठ-षष्ठ आयंबिल तपः कर्म से अपनी आत्मा को भावित करती हुई रहने लगी।

---

१०. (क) तए णं सा दोवई देवी पउमणाभं एवं वयासी— एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवेदीवेभारहेवासे बारवइए नयरीए कण्हे णामं वासुदेवे ममप्पियभाउए परिवसइ, तं जइ णं से **छण्हं मासाणं** ममं कूवं नो हव्वमागच्छइ। —ज्ञातासूत्र १६

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (८।१०।२०) और हरिवंश में १ माह का उल्लेख है—न भोक्ष्ये **मासपर्यन्तेऽप्यहं** पतिं विना कृता।

(ग) **मासस्याभ्यन्तरे** भूप यदीह स्वजना मम।
नागच्छन्ति तदा त्वं मे कुरुष्व यदभीप्सितम्॥
—हरिवंशपुराण ५४।३६

पाण्डुराज जब किसी भी प्रकार द्रौपदी का पता न लगा सके, तब उन्होंने कुन्ती देवी को बुलाया और कहा—हे देवानुप्रिये ! तुम शीघ्र ही द्वारवती नगरी जाओ, और कृष्ण वासुदेव से स्वयं द्रौपदी की गवेषणा करने के लिए अभ्यर्थना करो।"

कुन्ती देवी श्रेष्ठ हस्ती पर आरूढ़ होकर जहाँ सौराष्ट्र जनपद था, जहाँ द्वारवती नगरी थी, जहाँ श्रेष्ठ उद्यान था, वहाँ पहुँची। वहाँ हाथी से नीचे उतर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर बोली—देवानुप्रियो ! तुम द्वारवती नगरी में प्रवेश करो और श्रीकृष्ण वासुदेव से हाथ जोड़कर कहो—स्वामी ! आपके पिता की बहन—बुआ कुन्ती देवी हस्तिनापुर से शीघ्र ही यहाँ आयी है और आपका दर्शन करना चाहती है।[११]

कौटुम्बिक पुरुषों से कुन्ती देवी के आगमन की बात सुनकर वासुदेव श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हस्ती पर आरूढ़ हुए, और सेना लेकर द्वारवती के मध्य में होकर जहाँ पर कुन्तीदेवी थीं वहाँ पर आये। उन्होंने हाथी से उतरकर कुन्ती के चरण ग्रहण किये, फिर कुन्तीदेवी के साथ हाथी पर आरूढ़ हो अपने राजभवन आये।

भोजन के पश्चात् कुन्ती देवी से श्रीकृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा। कुन्ती बोली—'पुत्र युधिष्ठिर द्रौपदीदेवी के साथ सुखपूर्वक सो रहा था। जागने पर द्रोपदी दिखलाई नहीं दी। न मालूम किस देव, दानव, किंपुरुष, किन्नर या गन्धर्व ने उसका अपहरण किया है। पुत्र ! मेरी यही अन्तरेच्छा है कि तुम स्वयं द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा करो। अन्यथा उसका पता लगना असम्भव है।"

यह सुन कृष्ण बोले—आप चिन्ता न करें। मैं द्रौपदीदेवी का पता लगाऊँगा। उसकी श्रुति, क्षुति, प्रवृत्ति का पता लगते ही पाताल से, भवन से, अर्द्ध भारत के किसी भी स्थल से उसे स्वयं अपने हाथों से ले आऊँगा। इस प्रकार कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती देवी को आश्वासन दिया, उनका सत्कार-सन्मान किया और यथासमय उन्हें विदा किया।

उसके पश्चात् कृष्ण ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और आदेश देते हुए कहा—देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही द्वारवती नगरी के छोटे-

---

११. ज्ञातासूत्र १६ के आधार से

बड़े सभी मार्गों में उच्च स्वर से यह उद्घोषणा करो—युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजभवन में आकाशतल पर सुखपूर्वक सो रहे थे। उनके पास से किसी ने सोई हुई द्रोपदी का अपहरण किया है। जो द्रोपदी का पता लगा देगा उसे श्रीकृष्ण वासुदेव विपुल अर्थदान देंगे।

कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही किया पर द्रौपदी का कहीं पर भी पता न लगा।

द्रौपदी का उद्धार :

एक दिन श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी रानियों के साथ बैठे हुए थे। इतने में कच्छुल नारद वहाँ पर आये। श्रीकृष्ण ने उनसे प्रश्न किया —ऋषिवर ! आप अनेक ग्रामों, नगरों यावत् घरों में जाते हैं, क्या आपने कहीं द्रौपदी की भी बात सुनी है ?

नारद ने उत्तर देते हुए कहा—मैं एक बार धातकीखण्ड की पूर्व दिशा में दक्षिणार्द्ध भरत क्षेत्र में अमरकंका राजधानी गया था। वहाँ पर राजा पद्मनाभ के राजभवन में द्रौपदी जैसी एक नारी देखी है।

कृष्ण ने मजाक करते हुए कहा—"लगता है यह आप देवानुप्रिय की ही करतूत है ?" नारद सुनी-अनसुनी कर चल दिये।

कृष्ण ने दूत को बुलाकर कहा—तुम हस्तिनापुर जाकर पाण्डुराजा से यह प्रार्थना करो कि द्रौपदी का पता लग गया है। पाँचों पाण्डव चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत हो पूर्व दिशा के वैतालिक समुद्र के किनारे मेरी प्रतीक्षा करते हुए उपस्थित रहें।

तत्पश्चात् श्री कृष्ण ने सन्नाहिका भेरी बजवायी। उसका शब्द श्रवण करते ही समुद्रविजय आदि दश दशार्ह, यावत् छप्पन हजार बलवान योद्धागण तैयार हुए। वे अपने-अपने आयुधों को लेकर कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर, सवार हो सुभटों के साथ श्री कृष्ण की सुधर्मा सभा में कृष्ण वासुदेव के निकट आये। जय-विजय के शब्दों से उनकी स्तुति की।

श्रीकृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ़ हुए। कोरंट फूलों की माला वाला छत्र धारण किया। उन पर श्वेत चँवर डुलाया जाने लगा। इस प्रकार घोड़े, हाथियों, भटों, सुभटों के परिवार से सुपरिवृत हो श्रीकृष्ण द्वारवती नगरी के मध्य में होकर जहाँ पूर्व दिशा का

वैतालिक समुद्र था वहाँ पहुँचे और पाण्डवों से मिले। वहीं छावनी डाली।

श्रीकृष्ण ने चतुरंगिणी सेना को विसर्जित किया। अष्टम तप कर सुस्थित देव को बुलाया और उसे अमरकंका राजधानी जाकर द्रौपदी देवी की अन्वेषणा का प्रयोजन बताया।

सुस्थित देव ने कहा—देवानुप्रिय! जिस प्रकार राजा पद्मनाभ ने पूर्व सांगतिक देव द्वारा उसका अपहरण किया, उसी प्रकार चाहो तो मैं भी द्रौपदी देवी को धातकीखण्ड द्वीप की अमरकंका राजधानी से उठाकर हस्तिनापुर में रख दूँ। अथवा चाहो तो उस पद्मनाभ को उसके पुर, बल, वाहन सहित लवण समुद्र में डुबा दूँ।

कृष्ण—तुम संहरण न करो, हम छहों के रथों को लवणसमुद्र में जाने का मार्ग दो। सुस्थित देव ने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार कह सुस्थित देव ने समुद्र के बीच जाने के लिए रास्ता दिया। कृष्ण पाँच पाण्डवों के साथ छह रथों में बैठकर लवणसमुद्र के मध्य में होते हुए आगे बढ़े और जहाँ अमरकंका नगरी का उद्यान था वहाँ पर जाकर रथों को ठहराया।

फिर श्रीकृष्ण ने दारुक सारथी को कहा—जाओ अमरकंका नगरी में प्रवेश करो। राजा पद्मनाभ के पास जाकर दायें पैर से उसके पादपीठ को ठुकराना और भाले के अग्रभाग से उसे यह लेख देना। नेत्रों को लाल कर, रुष्ट, क्रुद्ध कुपित और प्रचण्ड होकर इस प्रकार कहना 'हे पद्मनाभ! अप्रार्थित (मौत) की प्रार्थना करने वाले! दुरन्त और प्रान्त लक्षण वाले! हीनपुण्य चतुर्दशी को जन्मे! श्री, ह्री और बुद्धि से रहित! आज तू जीवित नहीं रह सकता। क्या तुझे यह ज्ञात नहीं कि तूने कृष्ण वासुदेव की बहन द्रौपदी का अपहरण किया है? तथापि यदि तू जीवित रहना चाहता है तो द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव के हाथ सौंप दें। अन्यथा युद्ध के लिए तैयार होकर बाहर निकल। स्वयं कृष्ण वासुदेव और पाँचों पाण्डव द्रौपदी के त्राण के लिए आये हुए हैं।[१२]

---

१२. एवं वदह—हं भो पउमणाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसा! सिरिहिरिधीपरिवज्जिया! अज्ज ण भवसि, किं णं तुमं ण जाणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वं आणमाणे? तं एवमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं

कृष्ण की आज्ञा से दारुक सारथी राजा पद्मनाभ के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर उसे जय विजय के शब्दों से मांगलिक देता हुआ बोला—स्वामी यह मेरी निजी विनय-प्रतिपत्ति है। अन्य अब मेरे स्वामी के मुंह से निकली हुई आज्ञप्ति है। इस प्रकार कहकर दारुक ने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार उनका सन्देश राजा पद्मनाभ को सुनाया।

पद्मनाभ सुनते ही क्रोध से रक्त नेत्र वाला हो गया और भृकुटि चढ़ाकर दारुक से बोला—मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी नहीं दूँगा। जाकर कह दो कि मैं स्वयं युद्ध के लिए सज्जित होकर आ रहा हूँ।

उसके बाद उसने दारुक का बिना सत्कार किये उसे अपद्वार (पिछले द्वार) से बाहर निकाल दिया। दारुक ने घटित घटनाएँ श्रीकृष्ण से निवेदन कीं।

राजा पद्मनाभ शस्त्रों से सुसज्जित हो, चतुरंगिणी सेना के साथ कृष्ण वासुदेव की ओर रवाना हुआ।

पद्मनाभ को निहार कर श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से कहा—तुम युद्ध करोगे या मैं स्वयं करूँ?

पाण्डवों ने निवेदन किया—स्वामी! हम युद्ध करेंगे, आप दूर रहकर हमारे युद्ध को देखें।

तदनन्तर पाँचों पाण्डव कवच पहनकर शस्त्रों से सुसज्जित होकर, रथ पर आरूढ़ हुए और जहां पर राजा पद्मनाभ था वहाँ पर आये। आकर—'आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है'[13] ऐसा कहकर पाण्डव पद्मनाभ के साथ युद्ध करने लगे।

देविं कण्हस्स वासुदेवस्स, अहवा णं जुद्धसज्जे णिग्गच्छाहि, एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं अप्पछट्ठे दोवई देवीए कूवं हव्वमागए।

—ज्ञाताधर्म कथा १६

१३. तए णं पंच पंडवे सन्नद्धजाव पहरणा रहे दुरूहंति दुरूहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी 'अम्हे पउमणाभे वा राया' त्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था॥

—ज्ञाताधर्म कथा अ० १६, पृ० ५११

राजा पद्मनाभ ने पाँचों पाण्डवों पर शस्त्रों का प्रहार किया। उनके अहंकार को नष्ट कर दिया। ध्वजादि चिह्नों को नीचे गिरा दिया। और इधर-उधर भगा दिया।

पाँचों पाण्डव शत्रु की सैन्य-शक्ति को सहन करने में असमर्थ हो गये। वे सभी भागकर कृष्ण वासुदेव के पास पहुँचे।

कृष्ण वासुदेव ने पूछा—पाण्डवो! तुमने पद्मनाभ को क्या कहकर युद्ध प्रारंभ किया था? पाण्डवों ने कहा—स्वामी! हमने कहा— या तो हम ही रहेंगे या राजा पद्मनाभ?'

कृष्ण—देवानुप्रियो! तुम यह कहकर युद्ध प्रारंभ करते कि—'हम राजा हैं, पद्मनाभ नहीं' तो तुम्हारी ऐसी गति नहीं होती। अच्छा लो, 'मैं राजा हूँ, पद्मनाभ नहीं' ऐसी प्रतिज्ञा कर मैं युद्ध करता हूँ। मेरी विजय निश्चित है। तुम लोग दूर रहकर देखो।[१४]

उसके बाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आरूढ़ होकर राजा पद्मनाभ के सामने गये। स्वयं के सैन्य को आनन्दित करने वाले और शत्रु की सेना को क्षुब्ध करने वाले पाँचजन्य शंख को ग्रहण कर उसे मुख-वायु से पूरित किया। शंख के शब्द से राजा पद्मनाभ के सैन्य का तृतीय भाग हत हो गया।

उसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने सारंग नामक धनुष को हाथ में लिया, उस पर प्रत्यंचा चढ़ा भयंकर टंकार किया। धनुष के शब्द से शत्रु-सैन्य का दूसरा एक तिहाई भाग हत, मथित हो भाग निकला।

सेना का मात्र एक तिहाई भाग शेष रह जाने से राजा पद्मनाभ सामर्थ्य, बल, वीर्य, पराक्रम, पुरुषार्थ से रहित हो गया। अपने को असमर्थ जानकर वह अत्यन्त शीघ्रता से अमरकंका राजधानी की ओर बढ़ा। नगर में प्रवेश कर उसने दरवाजे बंद करवा दिये।

कृष्ण वासुदेव पीछा करते हुए अमरकंका आये। रथ को खड़ा किया। रथ से नीचे उतरकर वैक्रियलब्धि से एक विशाल नरसिंह के रूप को विकुर्वित किया और वे महाशब्द के साथ पृथ्वीपर पद-

---

१४. राजाहमेव नो पद्म इत्युदित्वा जनार्दनः।
युधि चचाल दध्मौ च पांचजन्यं महास्वनम्॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।५१

प्रहार करने लगे। अमरकंका नगरी के प्राकार, गोपुर, अट्टालिकाएँ चरिया, तोरण, आदि सभी भूमिसात् होने लगे। उसके श्रेष्ठ महल और श्रीगृह चारों ओर से ध्वस्त हो धराशायी हो गये।[१५]

राजा पद्मनाभ का कलेजा कांपने लगा। वह भयभीत बना हुआ, द्रौपदी के पास गया और उसके चरणों में गिर पड़ा।

द्रौपदी ने कहा—क्या तुम यह जान गये कि कृष्ण वासुदेव जैसे उत्तम पुरुष का अप्रिय करके मुझे यहां लाने का क्या परिणाम है? अस्तु, अब भी शीघ्र जाओ, स्नानकर, गीले वस्त्र पहन, वस्त्र का एक पल्ला खुला छोड़, अन्तःपुर की रानियों के साथ श्रेष्ठ रत्नों की भेंट ले और मुझे आगे रखकर कृष्ण वासुदेव को हाथ जोड़ उनके चरणों में झुककर उनकी शरण ग्रहण करो।

पद्मनाभ द्रौपदी के कथनानुसार कृष्ण वासुदेव का शरणागत हुआ। दोनों हाथ जोड़कर पैरों पर गिर पड़ा और निवेदन करने लगा—'हे देवानुप्रिय! मैं आपके अपार पराक्रम को देख चुका। मैं आपसे क्षमा याचना करता हूँ। मुझे क्षमा करें, मैं पुनः ऐसा कार्य कभी नहीं करूंगा।' ऐसा कह उसने द्रौपदी देवी को कृष्ण वासुदेव को सौंप दिया।

कृष्ण बोले—हे अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले पद्मनाभ! तू मेरी बहिन द्रौपदी को यहाँ लाया है तथापि अब तुझे मुझसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

कृष्ण द्रौपदी को साथ ले, रथ पर आसीन हो, जहां पर पाँचों पाण्डव थे वहाँ गये और अपने हाथों से पाण्डवों को द्रौपदी सौंपी।[१६]

---

१५. समुद्घातेन जज्ञे च नरसिंहवपुर्हरिः।
क्रुद्धोऽन्तक इव व्यात्ताननदंष्ट्राभयंकरः॥
नर्दन्नत्यूर्जितं सोऽथ विदधे पाददर्दरम्।
चकंपे वसुधा तेन हृदयेन सह द्विषाम्॥
प्राकाराग्राणि बभ्रंसुः पेतुर्देवकुलान्यापि।
कुट्टिमानि व्यशीर्यन्त शार्ङ्गिणः पाददर्दरैः॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।५६-५८

शंख-शब्द का मिलाप :

राजा पद्मनाभ से युद्ध प्रारंभ करते समय श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शंख पूरित किया था। उसकी ध्वनि धातकीखण्ड द्वीप के चम्पा-नगरी के पूर्ण भद्र उद्यान में, अर्हत् मुनिसुव्रत के पावन-प्रवचन को श्रवण करते हुए कपिल नामक वासुदेव ने सुनी। शंख-शब्द को श्रवण करते ही कपिल वासुदेव के मन में विचार हुआ "क्या यह मानलूं कि धातकीखण्डद्वीप के भरतक्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है, जिसके शंख का यह शब्द मेरे ही मुख से पूरित शंख के शब्द की भाँति विलास पा रहा है ? क्या यह किसी अन्य वासुदेव का शंखनाद नहीं है ?"[१७]

अर्हत् मुनिसुव्रत ने कपिल के मन का समाधान करते हुए कहा—कपिल वासुदेव ! तुम्हारे अन्तर्मानस में इस प्रकार विचार उद्बुद्ध हुए हैं। 'क्या मैं यह मानूं कि भरतक्षेत्र में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है, जिसका यह शंख शब्द सुनाई दे रहा है, क्या यह सत्य है ?

कपिल वासुदेव—हाँ भगवन् ! आपने जो कहा वह ठीक है।

अर्हत्मुनि सुव्रत ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—निश्चयतः न कभी भूतकाल में ऐसा हुआ है न वर्तमान में हो रहा है और न भविष्य में होगा ही कि एक ही युग में, एक ही समय में, दो अरिहंत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव, दो वासुदेव हुए हों, होते हों, या होंगे।" यह

---

१६. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) क्षम्यतां देवि रक्षास्मादन्तकादिव शार्ङ्गिणः।
इति जल्पन् ययौ पद्मः शरणं द्रुपदात्मजाम् ॥
साप्यूचे मां पुरस्कृत्य स्त्रीवेशं विरचय्य च।
प्रयाहि शरणं कृष्णं तथा जीवसि नान्यथा ॥

—त्रिषष्टि० ८।१०।६०-६३

(ग) पाण्डवचरित्र सर्ग १९, पृ० ५३७-५४६

(घ) हरिवंशपुराण ५४।४२-५१, पृ० ६१२

१७. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ० १६

(ख) त्रिषष्टि० ८।१०।६५-६६

बताकर उन्होंने द्रौपदी के अपहरण व उद्धार की कहानी सुनाते हुए कहा—'कृष्ण वासुदेव ने राजा पद्मनाभ के साथ युद्ध करते समय जो शंख फूंका उसी का शब्द तू ने सुना है। वह तुम्हारे मुख से पूरित शंख-शब्द के समान इष्ट और कान्त था, तथा उसी तरह विलास पा रहा था।"

यह सुनते ही कपिल वासुदेव उठे और भगवान् को वन्दन-नमस्कार कर बोले—भगवन् मैं जाता हूँ उस उत्तम पुरुष कष्ण वासुदेव को देखूंगा।

अर्हत् मुनिसुव्रत ने फरमाया—देवानुप्रिय ! यह न कभी हुआ है, न होता है और न होगा ही कि एक अर्हत् दूसरे अर्हत् को देखें, एक चक्रवर्ती दूसरे चक्रवर्ती को देखें, एक बलदेव दूसरे बलदेव को देखें, या एक वासुदेव दूसरे वासुदेव को देखं। तथापि तुम लवणसमुद्र के बीचोबीच जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेतपीत ध्वजा का अग्र भाग देख सकोगे।"

कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत को पुनः वन्दन नमस्कार किया और हस्ती पर आरूढ़ हो, शीघ्रातिशीघ्र वेलाकूल पहुंचे। उन्होंने भगवान् के कहे अनुसार कृष्ण वासुदेव की श्वेतपीत ध्वजा के अग्रभाग को देखा और बोले—" यह मेरे समान उत्तम पुरुष कृष्ण वासुदेव हैं जो लवणसमुद्र के बीचोंबीच में होकर जा रहे हैं। ऐसा कहकर उन्होंने उसी समय पाञ्चजन्य शंख को हाथ में ले मुख को वायु से पूरित किया।

कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख शब्द को सुना। उन्होंने भी अपने पांचजन्य शंख को मुंह की हवा से पूरित कर बजाया। इस प्रकार दोनों वासुदेवों के शंख शब्द का मिलाप हुआ।[१८] जो जैन परम्परा में एक आश्चर्य जनक घटना मानी गयी है।

उसके पश्चात् कपिल वासुदेव अमरकंका नगरी पहुंचे। उन्होंने पद्मनाभ का भर्त्सना की। उसे निर्वासित कर उसके स्थान पर उसके पुत्र को राज्य दिया।[१९]

---

१८. त्रिषष्टि० ८।१०।६८-७३

१९. (क) त्रिषष्टि० ८।१०।७४-७५

(ख) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग १७

पाण्डवों का निर्वासन :

द्रौपदी के उद्धार के पश्चात् श्रीकृष्ण और पाँचों पाण्डव रथों पर आरूढ़ हो लवण समुद्र के मध्य में होते हुए जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ओर आगे बढ़े। जब गंगामहानदी के समीप पहुंचे तब श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से कहा—तुम लोग गंगानदी को पार करो, मैं इस बीच लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिलकर आता हूँ।

पाँचों पाण्डवों ने एक लघु नौका की अन्वेषणा की और उसमें बैठ महानदी गंगा को पार किया। गंगा से उतरने के बाद उन्होंने आपस में वार्तालाप किया कि कृष्ण वासुदेव भुजा से गंगा महानदी को पार करने में समर्थ हैं या नहीं, यह देखना चाहिए। ऐसा सोचकर उन्होंने नौका को छिपा दिया और श्रीकृष्ण वासुदेव की राह देखने लगे।[20]

कृष्ण सुस्थित देव से मिलकर गंगा महानदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने नौका तलाश की, पर नौका दिखलाई नहीं दी। श्रीकृष्ण ने अपने एक हाथ में घोड़े और सारथी सहित रथ को ग्रहण किया और दूसरे हाथ से गंगा महानदी को पार करने लगे। जब वे गंगा महानदी के मध्यभाग में पहुँचे तो थक गये। उन्हें थका हुआ देखकर गंगा देवी ने जल का स्थल (स्ताघ) बना दिया। श्रीकृष्ण ने वहाँ एक मूहूर्त विश्राम किया, फिर गंगा महानदी को भुजा से पारकर जहां पाण्डव थे वहाँ पहुँचे। श्रीकृष्ण ने कहा—देवानुप्रियो ! तुम बड़े बलवान् हो, क्योंकि तुमने गंगा महानदी को भुजाओं से पार किया। जान पड़ता है कि तुमने जानबूझ कर ही राजा पद्मनाभ को पराजित नहीं किया था।[21]

---

२०. (क) द्रक्ष्यामोऽद्य बलं विष्णोर्नौरत्रैव विधार्यताम्।
विना नावं कथं गंगाश्रोतोऽसावुत्तरिष्यति ॥
एवं ते कृतसंकेता निलीयास्थुर्नदीतटे।
इतश्च कृतकृत्यः सन् कृष्णोऽप्यागात्सरिद्वराम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।१०।७७-८०

(ख) ज्ञातासूत्र अ० १६

२१. (क) त्रिषष्टि० ८।१०।८१-८४

(ख) पाण्डव चरित्र सर्ग १७

महाभारत का युद्ध

●

- पाण्डवों की द्यूत में पराजय
- कृष्ण का दूत भेजना
- संजय का आगमन
- कृष्ण का शान्तिदूत बनकर जाना
- कृष्ण का पुण्य-प्रकोप
- सारथी बनूँगा
- महाभारत में
- कृष्ण युद्ध के प्रेरक नहीं
- कर्ण को समझाना
- दुर्योधन की दुर्बुद्धि
- दूषित अन्न नहीं खाऊँगा
- धृतराष्ट्र को समझाना
- क्या महाभारत का युद्ध ही जरासंध का युद्ध है?
- महाभारत का युद्ध और उसका दुष्परिणाम

महाभारत का युद्ध

●

पाण्डवों की द्यूत में पराजय :

देवप्रभसूरि के पाण्डवचरित्र के अनुसार युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँचों पण्डु राजा के पुत्र होने से पाण्डव के नाम से प्रसिद्ध थे। पाण्डवों की माता कुन्ती थी, जो वासुदेव श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव की सहोदरा बहिन थी। पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण का पारिवारिक सम्बन्ध होने से सहज अनुराग था। पाण्डव हस्तिनापुर के अधिपति थे[1]।

पण्डुराजा के लघुभ्राता धृतराष्ट्र थे। उनके दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ पुत्र हुए। वे 'कौरव' नाम से विश्रुत थे। दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ का अधिनायक था। युधिष्ठिर और दुर्योधन के स्वभाव में दिन रात का अन्तर था। युधिष्ठिर नम्र, सरल, और मधुर प्रकृति के धनी थे तो दुर्योधन मायावी, ईर्ष्यालु और क्रोधी था। पाण्डवों के विराट् वैभव को देखकर दुर्योधन ईर्ष्या से जलता रहता था। उसने उनके वैभव को हस्तगत करने की इच्छा से युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ बुलाया, और उनके साथ छल से द्यूत खेल उन्हें पराजित करके उनका वैभव छीन लिया। यहाँ तक कि दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन पाण्डवों की

---

१. पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि।

पत्नी द्रौपदी को पकड़कर भरी सभा में लाया। द्रौपदी को दुर्योधन ने अपनी जंघा पर बैठने के लिए कहा और दुःशासन उसके दुकूल को खींचकर उसे नग्न करने का प्रयास करने लगा। जितने भी राजागण सभा में बैठे थे वे मौन रहकर यह अत्याचार देखते रहे। उस समय भीम ने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की, कि मैं दुर्योधन की जंघा को चीरूँगा और दुःशासन की बाहु का भेदन करूंगा। युधिष्ठिर सत्यप्रतिज्ञ थे अतः वे धर्मराज के नाम से भी विश्रुत थे। द्यूत में पराजित होने से बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पाण्डवों ने स्वीकार किया। दुर्योधन इस अवधि में भी पाण्डवों को मारने के अनेक उपाय करता रहा। पाण्डवों ने वनवास और अज्ञातवास में अनेक कष्ट सहन किये। चौदहवें वर्ष में वे विराट् नगर में प्रकट हुए। श्रीकृष्ण को ज्ञात होने पर वे पाण्डवों को द्वारिका लाने के लिए विराट् नगर जाते हैं। श्रीकृष्ण के प्रेम भरे आग्रह को सन्मान देकर पाण्डव द्वारिका आते हैं। द्वारिका निवासी माता कुन्ती के साथ पाण्डवों का व द्रौपदी का भव्य स्वागत करते हैं।[२] श्रीकृष्ण के पूछने पर पाण्डवों ने बताया कि दुर्योधन ने हमारे साथ कितने अमानुषिक व्यवहार किये हैं। हमारा वध करने के लिए कितने-कितने उपक्रम किये हैं। दुर्योधन के भयंकर अत्याचार को सुनकर श्रीकृष्ण का खून खौल उठा। उन्होंने उसी समय चतुर, बुद्धिमान एवं भाषणकला में दक्ष द्रुपद राजा के पुरोहित को सन्देश देकर दुर्योधन के पास हस्तिनापुर भेजा।[3]

कृष्ण का दूत भेजना :

दूत हस्तिनापुर पहुँचा। उस समय दुर्योधन राजसभा में द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, भीष्मपितामह, शल्य, जयद्रथ, कृपाचार्य, कृतवर्मा, भगदत्त, कर्ण, विकर्ण, सुशर्मा, शकुनि, भूरिश्रवा, चेदिराज,

---

२. महाभारत के अनुसार आरण्यवास में कुन्ती साथ नहीं गई, पर जैन-ग्रन्थों के अनुसार गई थी।

३. महाभारत के अनुसार कृष्ण के संकेत से राजा द्रुपद अपना दूत कौरवों की सभा में भेजता है—देखो महाभारत—उद्योगपर्व अ० २० वां, सचित्र महाभारत पृ० ३२९५।

दु:शासन आदि वीरों के साथ बैठा हुआ था। दूत ने नमस्कार कर कहा—श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्नेह से निम्न समाचार आपको कहने के लिए मुझे यहां पर भेजा है—"आप लोगों के समक्ष युधिष्ठिर ने बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें का अज्ञातवास स्वीकार किया था। अवधिपूर्ण होने पर अब वे प्रकट हुए हैं। विराट् राजा ने अपनी लड़की उत्तरा का पाणिग्रहण अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ किया। उस अवसर पर मैं वहां पर गया। मैंने अनुभव किया कि पाण्डवों का तुम्हारे प्रति गहरा अनुराग है। वे तुम्हारे विरह से व्यथित, हैं किन्तु तुम लोगों को किसी भी प्रकार का कष्ट अनुभव न हो, एतदर्थ वे सीधे हस्तिनापुर नहीं आये। अब धर्मराज की सत्यप्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है। वे मेरे साथ द्वारिका आये हैं, अतः दुर्योधन! मेरा नम्र अनुरोध है कि तुम अपने भाइयों को स्नेह से हस्तिनापुर बुलालो। मैं नहीं चाहता कि भाइयों में बिना कारण विरोध रहे। सम्पत्ति और अधिकार के कारण भाइयों में वैमनस्य होना उचित नहीं है। यदि तुम न भी बुलाओगे तो भी धर्मराज के लघुभ्राता उनको हस्तिनापुर लाएंगे और अपनी भुजा के सामर्थ्य से तुम्हारे भाग की भी भूमि को प्राप्त करेंगे। संभव है, युद्ध के मैदान में तुम्हारी भी मृत्यु हो जाय, या तुम्हें भी पाण्डवों की तरह एक जंगल से दूसरे जंगल में भटकना पड़े। अतः ऐसी स्थिति आने से पूर्व ही विवेक से कार्य किया जाय जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े। यदि तुम यह समझते हो कि पाण्डव असहाय हैं तो यह भ्रम है। जहां धर्म है वहां विजय निश्चित है, अतः मेरी बात पर गहराई से चिन्तन करना।"

दूत के सन्देश को सुनकर दुर्योधन अपने आपे से बाहर होगया। उसने कहा—"दूत! तुम्हारी वाणी तो बैर के समान है—प्रारम्भ में मधुर, अन्त में कठोर। मैं नहीं समझता कि मेरे प्रबल पराक्रम के सामने कृष्ण का क्या सामर्थ्य है? और पाण्डव किस बाग की मूली हैं? सूर्य के चमचमाते प्रकाश के सामने चाँद और अन्य ग्रह निःसत्व हैं, वैसे ही मेरे सामने कृष्ण और पाण्डव हैं। लोग कहते हैं कि युद्ध-भूमि में श्रीकृष्ण सिंह की तरह जूझते हैं पर मेरे तीक्ष्ण बाणों से बिंधकर वे शृगालवत् हो जायेंगे। मेरे बाणों से वे इस प्रकार

घायल हो जायेंगे कि पक्षिगण और कुत्ते उनको नोंच-नोंचकर खा जाएंगे।"

दूत ने दुर्योधन की बात को बीच में ही काटते हुए कहा—"दुर्योधन ! तू निरर्थक मिथ्या अहंकार कर रहा है। तू कृष्ण रूपी सूर्य के सामने जुगनू की तरह है। क्या तुझे श्रीकृष्ण के सामर्थ्य का पता नहीं है, जिसने अरिष्टासुर, केशी, चाणूर और कंस आदि अनेक महान् योद्धाओं को समाप्त किया है ? कृष्ण की तो बात ही जाने दो, क्या पाण्डव भी वीरता में कम हैं ? अरे ! धर्मराज तो धर्म के साक्षात् अवतार हैं। भीम का महान् बल किससे अज्ञात है जिसने अपने बाहुबल से हेडंब, किर्म्मीर, बक, और कीचकादि अनेकों का हनन किया है ? वीर अर्जुन का तो कहना ही क्या है, जिसने तेरी पत्नी भानुमती को रोती-चिल्लाती देखकर युधिष्ठिर की आज्ञा से तुझे चित्रांगद विद्याधर के शिकंजे से मुक्त किया था। जिस समय तू विराट् राजा की गायों को चुरा रहा था उस समय उसने तेरे वस्त्र, और अस्त्र छीन लिये थे। उस समय बता तेरा अतुल बल कहां गया था ? स्मरण रखना, नकुल और सहदेव भी कम बलवान् नहीं हैं।"

दुर्योधन का धैर्य ध्वस्त होगया। वह चिल्ला उठा—"अरे दूत ! अवध्य होने से मैं तुझे छोड़ देता हूँ। नहीं तो यह तलवार तेरे टुकड़े-टुकड़े कर देती। मैं चुनौती देता हूँ कि पाण्डवों में और श्रीकृष्ण में यदि शक्ति है तो वे अपनी शक्ति कुरुक्षेत्र के मैदान में बताएँ। मैं उनके साथ युद्ध करने को प्रस्तुत हूँ।"

दूत ने लौटकर श्रीकृष्ण से निवेदन किया—"भगवन् ! जंगल में भयंकर आग लगी हो, सारा वन प्रान्त उस आग से धू-धूकर सुलग रहा हो तो क्या एक घड़ा पानी उस विराट् आग को बुझा सकता है ? नहीं ! वैसे ही दुर्योधन को आपका मधुर उपदेश निरर्थक लगा, क्योंकि सभी राजा और अभिभावकों ने उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर रखी है। उसने उनको अपने वश में कर रखा है। इस कारण वह आपको तथा पाण्डवों को तृण-तुल्य मानता है। वे राजा भी आंख मूंदकर उसके लिए प्राण देने को तैयार हैं। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि भीष्मपितामह जैसे महान् व्यक्ति भी यह न कह सके कि पाण्डवों को उनके अधिकार की भूमि देनी चाहिए। यद्यपि

भीष्मपितामह का पाण्डवों पर स्नेह है पर इस समय वे दुर्योधन के ऐसे वशवर्ती हो चुके हैं कि उसका ही जय-जयकार चाहते हैं। दुर्योधन पाण्डवों को भूमि देना नहीं चाहता। वह युद्ध करने को उद्यत है। उसने युद्ध के लिए सेना तैयार कर रखी है और युद्ध के लिए आपको चुनौती दी है। यदि आप युद्ध भूमि में जीतकर भूमि लेना चाहें तो मिल सकती है अन्यथा संभव नहीं है।"

कृष्ण ने दूत से कहा—"द्विजश्रेष्ठ! मैं तो पहले ही जानता था कि यह कार्य बिना दण्ड के संभव नहीं है, तथापि लोकापवाद के भय से मैंने आपको उसके पास प्रेषित किया था।"

संजय का आगमन :

दूसरे ही दिन धृतराष्ट्र की ओर से सारथी संजय दूत बनकर श्रीकृष्ण की राजसभा में आया।[४] उसने धृतराष्ट्र का सन्देश धर्मराज को सुनाते हुए कहा—धर्मराज! वस्तुतः तुम धर्म के साक्षात् अवतार ही हो। मैंने विविध प्रकार से दुर्योधन को समझाया पर वह समझता नहीं है। तुम जानते हो कि दुष्ट और शिष्ट में यही अन्तर है कि दुष्ट धर्म को छोड़कर लोभ को अपनाता है और शिष्ट धर्म के लिए लोभ छोड़ देता है। वह अपने भाइयों की घात करने की अपेक्षा भयंकर जंगलों में भटकते रहना, भीख मांगकर खा लेना और भूखे पड़े रहना अच्छा समझता है। वह पहले अपने भाइयों को महत्त्व देता है। यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध में कौन विजय को वरण करेगा? कभी-कभी दुर्बल व्यक्ति भी युद्ध में जीत जाता है और बलवान् भी हार जाता है। सम्पत्ति नाशवान् है, वह आज है कल नहीं, अतः धर्मराज, तुम्हें गहराई से विचार करना है कि कौन-सा कार्य उचित है? और कौन-सा नहीं?

धर्मराज ने मुस्कराते हुए कहा—पिता धृतराष्ट्र ने धर्म क्या है, न्याय क्या है, शिष्ट के क्या कर्तव्य हैं, आदि बातें गंभीर

---

४. महाभारत के अनुसार संजय दूत बनकर पाण्डवों के पास जाता है। उसमें धृतराष्ट्र संजय को जो सन्देश देते हैं उसमें धृतराष्ट्र का आन्तरिक प्रेम पाण्डवों के प्रति झलक रहा है—देखो महाभारत—उद्योगपर्व अ० २२ वां।

चिंतन-मनन के पश्चात् कही हैं। पर वे भूल गये हैं। उन्होंने यह नहीं बताया कि अन्याय का प्रतीकार कैसे करना चाहिए ? एक ओर से शांति धारण की जाय और दूसरी ओर से अन्याय-अत्याचार का क्रम चालू ही रहे, यह कहां का न्याय है ?[५]

कृष्ण का शान्ति दूत बनकर जाना :

दूत चला गया। श्रीकृष्ण के अन्तर्मानस में शान्ति नहीं थी। उनका विचार-मंथन चल रहा था। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कौरव और पाण्डवों में युद्ध न हो। वे आपस में ही समझ जायें, अतएव उन्होंने अन्त में यही निश्चय किया कि मुझे स्वयं जाकर एकबार दुर्योधन को समझाना चाहिए ! अपने कुछ अंग रक्षकों को लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका से सीधे हस्तिनापुर आये। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का स्वागत किया। उन्हें राजमहल में ले गया। रत्न-सिंहासन पर बैठाया। उनके आसपास धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, आदि बैठ गये। धृतराष्ट्र के पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा—आपकी ओर से संजय दूत बनकर द्वारिका आया था। मेरा ऐसा अनुमान है कि वह धर्मराज के सामने संधि का प्रस्ताव रखना चाहता था, पर वह रख न सका। यदि वह रखता भी तो पांडव उसे स्वीकार नहीं करते। वह यद्ध के प्रस्ताव को लेकर हस्तिनापुर लौट आया। उसके पश्चात् धर्मराज ने मुझे सारी बात बताई। मुझे लगा कि युद्ध होने पर तुम्हारे कुल का प्रलय हो जायेगा, एतदर्थ मैं पाण्डवों से पूछे बिना ही स्वेच्छा से दूत-कार्य करने के लिए यहां आया हूँ। यदि तुम्हें मेरे प्रति विश्वास हो, तुम मुझे अपना परम हितैषी समझते हो तो मेरी बात को ध्यान से सुनो। दुर्योधन ! यदि तुम पाण्डवों को राज्य का थोड़ा-सा भी भाग नहीं दोगे तो पाण्डव तुम्हारे प्राणों का अपहरण करके भी सम्पूर्ण राज्य ले लेंगे। कदाचित् तुम पाण्डवों को पराजित कर सम्पूर्ण पृथ्वी का भी राज्य प्राप्तकर

५. महाभारत में भी संजय को युधिष्ठिर स्पष्ट सुनाते हैं, संजय के द्वारा सन्धि के प्रस्ताव पर वे स्पष्ट कहते हैं कि मैं संधि करने को तैयार हूं यदि दुर्योधन मेरा इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दे तो—

देखो उद्योग पर्व, अ० २६, श्लो० १-२६ तक

लोगे तो भी इसमें कुछ कल्याण नहीं है, क्योंकि बिना स्वजनों के सम्पत्ति किस काम की ? यह निश्चित है कि युद्ध में पाण्डव पराजित होने वाले नहीं हैं तथापि तुम्हारे द्वारा किया गया कुलसंहार वीरता का प्रतीक नहीं होगा। पाण्डव एक-एक से बढ़कर वीर हैं। शत्रुओं के समुदाय को नष्ट करने में साक्षात् यम के समान हैं। अतः तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर है कि तुम पाण्डवों से सन्धि करलो।

दुर्योधन ! तुम्हें पाण्डवों के समान वीर भाई कहां मिलने वाले हैं ? मिथ्या अहंकार को छोड़ो और युद्ध के अनिष्ट भीषण फल का विचार करो। पाँच पांडवों के लिए पाँच गाँव दे दोगे तो भी मैं उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करूंगा—भीम के लिए कुशस्थल, अर्जुन के लिए वृषस्थल, नकुल के लिए मांकदी, सहदेव के लिए वारुणावतार और धर्मराज के लिए इनके अतिरिक्त उनके योग्य कोई भी गाँव देदो।[६] इतना अल्प देने पर भी पाण्डव मेरे कहने से सन्धि कर लेंगे। साधु प्रकृति के व्यक्ति कुल क्षय को देखकर अल्प वस्तु में भी सन्तोष करते हैं। यदि इतना भी तुम स्वीकार न करोगे तो पाण्डव तुम्हारे कुल को नष्ट कर देंगे।

इतना वक्तव्य देने के पश्चात् श्रीकृष्ण शान्त हुए। तब कर्ण की ओर देखकर दुर्योधन ने कहा—'पाण्डवों को कुछ भी नहीं देना है।' फिर दुर्योधन श्रीकृष्ण की ओर मुड़ा और बोला—अय कृष्ण ! तुम जितना बल पाण्डवों में मानते हो उतना बल उनमें नहीं है। मैंने आज तक उनको जीवन-दान दिया है, किन्तु वे अपनी शक्ति के अभिमान में आकर एक भी गाँव को लेने की बात करेंगे तो गाँव की बात तो दूर रही, पर उनके प्राण भी नहीं बच पायेंगे। पाण्डव अपना बाहुबल ही देखना चाहते हैं तो तुम्हारे साथ वे जल्दी से जल्दी कुरुक्षेत्र के मैदान में आयें। वहाँ उन्हें युद्ध का चमत्कार दिखलाया जायगा।[७]

इतना कहकर दुर्योधन कर्ण के साथ सभा के बाहर गया। कर्ण से कहा—श्रीकृष्ण को इसी समय बंधन-बद्ध कर लिया जाय जिससे शत्रुओं का बल कम हो जायेगा। श्रीकृष्ण को बंधन में

---

६. पाण्डव चरित्र—देवप्रभसूरि अनुवाद पृ० ३४६।

७. पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि

बांधने का विचार कर वह पुनः सभा भवन में आकर बैठा। सत्यकी के द्वारा संकेत पाकर श्रीकृष्ण को सारा रहस्य ज्ञात हो गया। उन्होंने अपने नेत्र लाल करते हुए कहा—'क्या कभी शृगालों ने सिंह को बांधा है? तुम मुझे बंधन में बांधना चाहते हो, तुम लोग वस्तुतः दुरात्मा हो। उपकार करने वाले का भी अपकार करना चाहते हो!' इतना कहकर वे उठ खड़े हुए।[८]

कृष्ण का पुण्य प्रकोप :

श्रीकृष्ण के पुण्य-प्रकोप को देखकर भीष्मपितामह आदि भी घबरा गये। दुर्योधन की मूर्खता का वे मन ही मन विचार करने लगे। श्रीकृष्ण को शान्त करने के लिए वे भी उनके पीछे-पीछे चले। भीष्म पितामह ने वाणी में मिश्री घोलते हुए कहा—कृष्ण! विद्युत् से तपा हुआ मेघ जैसे शीतल पानी की ही वृष्टि करता है वैसे ही दुष्टों के द्वारा सन्ताप देने पर भी महान् पुरुष क्रोध नहीं करते। जैसे शृगाल के शब्द और नृत्य को देखकर सिंह कभी खेद को प्राप्त नहीं होता, वैसे ही दुष्ट व्यक्तियों के भाषण से महान् आत्माएं खिन्न नहीं होतीं। एतदर्थ दुर्योधन के दुर्व्यवहार पर तुम क्रोध न करना। किसी भी समय चाँद आग नहीं उगलता, वैसे ही तुम भी आग न उगलना। मैं समझता हूं तुम अकेले ही युद्ध-क्षेत्र में कौरव दल का संहार करने में समर्थ हो। कितना भी मदोन्मत्त हाथी क्यों न हो, वह सिंह के सामने टिक नहीं सकता, वैसे ही तुम्हारे सामने कौरव टिक नहीं सकते। पर यह जो युद्ध होने जा रहा है वह कौरवों और पाण्डवों के बीच में है। यह भाइयों का युद्ध है। अतः मैं चाहता हूँ कि कृष्ण! तुम इस युद्ध में भाग न लो। पाण्डव स्वयं ही युद्ध करने में समर्थ हैं। मुझे विश्वास है कि तुम मेरी बात मानोगे।

सारथी बनूंगा :

भीष्म पितामह की बात सुनकर श्रीकृष्ण एक क्षण विचार कर बोले—पितामह! आपकी बात मुझे माननी ही चाहिए किन्तु निवेदन है कि इस समय पाण्डव मेरे आश्रित हैं, और वे मेरे

---

८. पाण्डव चरित्र—देवप्रभ प० ३४७-४८।

नेतृत्व में रहकर ही युद्ध करना चाहते हैं, अतः मुझे उनको सहयोग देना होगा। मैं उनको वचन भी दे चुका हूँ। तथापि आपका बहुमान रखने के लिए मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि युद्ध के क्षेत्र में, मैं स्वयं धनुष-बाण नहीं उठाऊंगा, परन्तु अर्जुन का सारथी बनूँगा। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह को नमस्कार किया। वे कर्ण के साथ आगे चले गये।[९]

महाभारत में :

प्रस्तुत प्रसंग महाभारत में अन्य रूप से आया है। वह इस प्रकार है :—

युद्ध में श्रीकृष्ण की सहायता लेने के लिए दुर्योधन और अर्जुन दोनों उनके महल में पहुँचे। उस समय कृष्ण सोये हुए थे। दुर्योधन उनके सिरहाने एक मूल्यवान् आसन पर जा बैठे और अर्जुन कृष्ण के पांवों की ओर बैठे।

जागते ही श्रीकृष्ण ने पहले अपने सामने बैठे हुए अर्जुन को देखा, उसके बाद दुर्योधन को।[१०] कृष्ण ने दोनों का स्वागत किया और आने का कारण पूछा। दुर्योधन ने कहा—युद्ध में आप हमें सहायता दीजिए। हम दोनों आपके समान सम्बन्धी हैं तथापि मैं आपके पास पहले आया हूं। सज्जनों का नियम है कि जो पहले आता है उसका पक्ष लिया जाता है।

कृष्ण ने कहा—यह सत्य है कि आप पहले आये हैं किन्तु मैंने पहले अर्जुन को देखा है इसलिए मैं उसकी भी सहायता करूंगा। मैं अपनी ओर से दो प्रकार की सहायता का प्रस्ताव करता हूँ—एक ओर मेरी नारायणी सेना है जो युद्ध करेगी, दूसरी ओर युद्ध न करने का प्रण करके निहत्था मैं रहूँगा।[११] अर्जुन छोटा है अतः जो चाहे, पहले वह पसंद कर ले।

---

९. पाण्डव चरित्र पृ० ३४८।

१०. प्रतिबुद्धः सवार्ष्णेयो ददर्शाग्रे किरीटिनम्।
स तयो स्वागतं कृत्वा, यथावत्प्रति पूज्य तौ॥
—महाभारत उद्योग पर्व, अ० ७, श्लोक १०

निहत्थे और युद्ध से विमुख रहने की वात सुनकर भी अर्जुन ने उन्हीं को मांग लिया।[१२]

दुर्योधन ने प्रसन्न होकर नारायणी सेना मांग ली। कृष्ण की विराट् सेना को पाकर और कृष्ण को युद्ध से विमुख जानकर दुर्योधन को बहुत सन्तोष हुआ।[१३]

श्रीकृष्ण ने एक बार अर्जुन से पूछा—तुमने मुझे युद्ध से विमुख जानकर भी क्या समझकर अपने पक्ष में लिया?[१४] उत्तर में अर्जुन ने कहा—मैं अकेला ही युद्ध में यशस्वी बनना चाहता हूँ, अतः आप

---

११. तव पूर्वाभिगमनात्पूर्वं चाप्यस्य दर्शनात्।
साहाय्यमुभयोरेव करिष्यामि सुयोधन!॥
प्रवारणं तु वालानां पूर्वं कार्यमिति श्रुतिः।
तस्मात्प्रवारणं पूर्वमर्हः पार्थो धनंजयः॥
मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत्।
नारायणा इति ख्याताः सर्वे संग्रामयोधिनः॥
ते वा युधि दुराधर्षा भवंत्वेकस्य सैनिकाः।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः॥
आभ्यामन्यतरं पार्थ! यत्ते हृद्यतरं मतम्।
तद् वृणीतां भवानग्रे प्रवार्यस्त्वं हि धर्मतः॥
—महाभारत, उद्योग पर्व, अ० ७, श्लोक १६-२०

१२. एवमुक्तस्तु कृष्णेन कुंतीपुत्रो धनंजयः।
अयुध्यमानं संग्रामे वरयामास केशवम्॥
—वहीं श्लोक २१

१३ दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमावरयत्तदा।
सहस्राणां सहस्रं तु योधानां प्राप्य भारत॥
कृष्णं चाऽपहृतं ज्ञात्वा संप्राप परमां मुदम्।
दुर्योधनस्तु तत्सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः॥
—महाभारत, उद्योग पर्व अ० ७, श्लो० २३-२४
प्रकाशक—महावीर प्रिंटिंग प्रेस लाहौर

१४. महाभारत, उद्योग पर्व अ० ७, श्लोक ३४-३५

मेरे सारथी बनें[१५], श्रीकृष्ण ने कहा—मैं इस युद्ध में सारथी बनकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा।[१६]

कृष्ण युद्ध के प्रेरक नहीं :

उद्योग पर्व के इस प्रकरण से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की दुर्योधन और अर्जुन के प्रति समान दृष्टि थी। न उनका पाण्डवों के प्रति गहरा राग था और न कौरवों के प्रति गहरा द्वेष ही। उन्होंने जो विरोध किया था वह राग और द्वेष के कारण नहीं, अपितु न्याय और अन्याय के कारण था। वे यों पक्षपात से मुक्त थे।

दूसरी बात, श्रीकृष्ण एक अद्वितीय योद्धा थे। उनके शरीर में अपार बल था किन्तु युद्ध में लोगों को अपार हानि होती है, निरपराध प्राणियों की भी हिंसा होती है, एतदर्थ ही उन्हें युद्ध पसन्द नहीं था। महाभारत का युद्ध न हो, इसके लिए उन्होंने काफी श्रम भी किया था पर जब उन्हें सफलता नहीं मिली तो सोचा कि अब मुझे एक पक्ष की सहायता करनी पड़ेगी। तब उन्होंने स्वयं हथियार ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा ली। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी भी वीर ने यह आदर्श उपस्थित नहीं किया। भीष्म पितामह जैसी महान् विभूति भी ऐसा न कर सकी। तथापि आश्चर्य इस बात का है कि लोग उन्हें महाभारत युद्ध का प्रेरक मानते हैं। वे युद्ध के कराने वाले नहीं, रोकने वाले थे।

निःशस्त्र श्रीकृष्ण को लेकर उनसे क्या लाभ उठाना। यह प्रश्न वीर अर्जुन के सामने उपस्थित हुआ। अर्जुन ने अपना रथ चलाने का कार्य श्रीकृष्ण को सौंपा। रथ चलाने का कार्य क्षत्रियों की दृष्टि से निम्नकोटि का कार्य था। क्षत्रिय लोग यह कार्य करना अनुचित मानते थे। जब कर्ण ने मद्रराज को अपना सारथी बनने के लिए कहा तब उसने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा था किन्तु श्रीकृष्ण ने सोचा—यह कार्य करना श्रेयस्कर है, पर युद्ध करना अनुचित है।

---

१५. महाभारत. उद्योगपर्व श्लोक ३६-३७

१६. वहीं, श्लोक ३८

कर्ण को समझाना :

श्री कृष्ण ने कर्ण से कहा[१७]—कर्ण ! तुम गुणों के आकर हो। इस पृथ्वी पर एक से एक बढ़कर वीर हैं पर तुम्हारे सदृश वीर कोई नहीं है। पर्वत तो अनेक हैं, पर सुमेरु तो एक ही है। जैसे बहुमूल्य हीरा सोने की अंगूठी में ही शोभा देता है पीतल की अंगूठी में नहीं, वैसे ही कर्ण, तुम पाण्डवों के साथ शोभा देते हो, कौरवों के साथ नहीं। दुर्योधन का साथ देने से तुम कुलक्षय के कारण बनोगे ! मेरी समझ से ऐसे दुष्ट व्यक्ति के साथ तुम्हें मित्रता नहीं करनी चाहिए थी। तुमने यह भूल की है। कोई व्यक्ति सर्प का चाहे कितना भी पोषण करे पर सर्प पोषण करने वाले को ही काटता है। वैसे दुराचारी मित्र भी उपकार करने वाले मित्र को ही कष्ट देता है।

यदि पिता दुरात्मा है, तो पुत्र का कर्तव्य है कि ऐसे पिता को छोड़ दे, जैसे राहु से ग्रसित होने पर किरणें सूर्य का त्याग कर देती हैं।

जब नदी अमर्यादित होकर बहती है तब वह अपने किनारे पर शोभा बढ़ाने वाले वृक्षों को ही नष्ट कर देती है। वैसे ही दुराचारी भी अपने रक्षकों को नष्ट कर देते हैं।

दुर्जन की संगति कृष्ण पक्ष के चाँद की तरह है। कृष्ण पक्ष की संगति करने से चन्द्र किरणें घटने लगती हैं, उसका प्रकाश मन्द होने लगता है। यहाँ तक कि एक दिन उसका प्रकाश पूर्ण रूप से लुप्त हो जाता है, किन्तु सज्जन की संगति शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह है, जो प्रतिदिन उसके प्रकाश की अभिवृद्धि करता है और एक दिन उसे पूर्ण प्रकाशित कर देता है।

---

१७. श्री पाण्डव चरित्र—देवप्रभसूरि सर्ग-११

महाभारत में भी प्रस्तुत कथानक कुछ शब्दों के हेरफेर के साथ चित्रित किया है, पर भाव यही है।

सोऽसि कर्ण तथाजातः पाण्डोः पुत्रोऽसि धर्मतः।
निग्रहाद्धर्मशास्त्राणमेहि राजा भविष्यसि।
पितृपक्षे च ते पार्था मातृपक्षे च वृष्णयः।
द्वौ पक्षावभिजानीहि त्वमेतौ पुरुपर्षभ॥

महाभारत—उद्योग० अ० १४०, श्लोक ९-१०

सूर्य के प्रकाश में कांच भी हीरे की तरह चमक उठता है वैसे ही सज्जन के सहवास से जीवन चमक उठता है।

पूर्व दिशा के पवन के साथ मित्रता करने पर बादल अभिवृद्धि को प्राप्त होते हैं और दक्षिण दिशा के पवन के साथ मित्रता करने पर नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही सज्जन और दुर्जन की संगति है। युधिष्ठिर के साथ मित्रता करने पर तेरे यश की अभिवृद्धि होगी, पर दुर्योधन का साथ करने पर तेरा गौरव मिट्टी में मिल जायेगा।

कृष्ण ने कर्ण को जरा अपने निकट खींचते हुए कहा—कर्ण! मैं तुम्हें एक अत्यन्त गोपनीय बात बताता हूं, जो मुझे स्वयं कुन्ती ने कही है। वास्तव में तू राधा का पुत्र नहीं, किन्तु कुन्ती का पुत्र है। पाण्डवों का सहोदर है। तेरा लालन-पालन राधा ने किया एतदर्थ तू राधेय कहलाता है, पर वस्तुतः तेरी माता कुन्ती है। पांडवों के साथ यदि तू मैत्री करता है तो जो भी राज्य पाण्डवों को प्राप्त होगा उसमें तेरा अधिकार मुख्य रहेगा क्योंकि तू पाण्डवों में सबसे बड़ा है। मैं तुझे पांडवों में मुख्य अधिकारी बनाऊंगा।

कर्ण ने कहा—कृष्ण! आपका कथन सत्य है। मैंने दुर्योधन के साथ मित्रता की, वह उचित नहीं! किन्तु जब सूतपुत्र समझकर लोग मेरी अवज्ञा करते थे उस समय उस अवज्ञा को मिटाने के लिए दुर्योधन ने मुझे राज्य दिया। उस समय मैंने दुर्योधन से कहा था—"दुर्योधन! मैं तुम्हारा जन्मभर मित्र रहूँगा। आज से ये मेरे प्राण तुम अपने ही समझना। मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञा को सहर्ष स्वीकार करूंगा। अतः कृष्ण! अब मैं दुर्योधन को छोड़कर धर्मराज से मैत्री करके विश्वासघाती नहीं बन सकता। मुझे अपने वचन का पालन करना होगा। आप मेरी माता कुन्ती से यह नम्र निवेदन करें कि मैं आपके चार पुत्रों का प्राण हरण नहीं करूंगा। मेरा मन बाल्य-अवस्था से ही अर्जुन को जीतना चाहता है और युद्ध में भी उसे ही मारना चाहता है। युद्ध के मैदान में यदि मैं मर गया तो अर्जुन जीवित रहेगा और अर्जुन मर गया तो मैं जीवित रहूँगा। इस प्रकार माता कुन्ती के पाँचों पुत्र जीवित रहेंगे।[१८]

---

१८. महाभारत के अनुसार माता कुन्ती स्वयं कर्ण को यह समझाने जाती है कि तू मेरा ही पुत्र है, अतः पाण्डवों के साथ मिल जा, किन्तु

सत्यप्रतिज्ञ कर्ण की बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। उसके पश्चात् वे पाण्डुराजा से मिले और सीधे द्वारिका चले आये। हस्तिनापुर में दुर्योधन आदि से जो बातें हुई थीं, वह विस्तार से पाण्डवों को कहीं। पाण्डव बहुत ही प्रसन्न हुए और युद्ध की तैयारी करने लगे।

दुर्योधन की दुर्बुद्धि :

महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण सन्धि के लिए हस्तिनापुर जाने से पूर्व पाण्डवों से विचार विमर्श करते हैं।[११] द्रौपदी भी कृष्ण को

कर्ण कहता है कि इस समय मैं नहीं मिल सकता। आपका मेरे पास आना, और अनुरोध करना वृथा न होगा। मैं संग्राम में एक अर्जुन को छोड़कर आपके अन्य चार पुत्रों—युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव का वध नहीं करूँगा। मैं प्रतिज्ञा ग्रहण करता हूँ कि संग्राम में युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को मारने का अवसर पाकर भी उन्हें छोड़ दूंगा। मैं युधिष्ठिर की सेना में एक अर्जुन से ही मरने-मारने वाला संग्राम करूंगा। अर्जुन को मार लेने में ही मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। अथवा अर्जुन यदि मुझे मार सके तो मुझे अपार यश और स्वर्ग प्राप्त होगा। हे यशस्विनी! आपके पांच पुत्र कभी नष्ट न होंगे। मैंने अर्जुन को मारा तो भी और अर्जुन ने मुझे मारा तो भी पांच पाण्डव रहेंगे ही।

देखिए व्यास के शब्दों में—

न च तेऽयं समारम्भो मयि मोघो भविष्यति।
वध्यान्विपह्यान्संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान् ॥
युधिष्ठिरं न भीमं च यमौ चैवाऽर्जुनादृते।
अर्जुनेन समं युद्धमपि यौधिष्ठिरे बले ॥
अर्जुनं हि निहत्याऽऽजौ सम्प्राप्तं स्यात्फलं मया।
यशसा चापि युज्येयं निहतः सव्यसाचिना ॥
न ते जातु न शिष्यन्ति पुत्राः पञ्च यशस्विनि।
निरर्जुनाः सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ॥

महाभारत—उद्योग० अ० १४६—श्लोक २० से २३

अपनी करुण-कहानी सुनाती है। अपने बिखरे हुए केशों को हाथ में लेकर आँखों से अश्रु बहाती हुई कहती है—हे कृष्ण ! शत्रु जब सन्धि की इच्छा प्रकट करे तब तुम कर्तव्य निश्चित करते समय दुःशासन के हाथों से खींचे गये मेरे इन बालों का स्मरण रखना।[२०]

सभी को सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए प्रस्थित हुए। धृतराष्ट्र आदि ने कृष्ण के आगमन का संवाद सुना तो उनके मन में विचार हुआ कि कृष्ण का भव्य स्वागत किया जाय। पर दुर्योधन के मन में और ही विचार चक्कर लगा रहे थे। उसने कहा—मैंने इस समय बहुत बड़ा काम विचारा है। पाण्डवों के सबसे बड़े सहायक श्री कृष्ण हैं। वे जब यहां आएँगे तब उन्हें पकड़कर कैद कर लूँगा। फिर पाण्डव यादव और सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के राजा सहज ही मेरे अधीन हो जायेंगे।[२१]

श्री कृष्ण को कैद करने की बात सुनकर दुर्योधन की दुर्बुद्धि पर भीष्मपितामह को बहुत ही क्रोध आया और वे वहां से उठकर चल दिये।[२२]

दूषित अन्न नहीं खाऊंगा :

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुँचे। कौरवों ने उनका स्वागत किया पर उस स्वागत में अन्तर का प्रेम नहीं था, यह बात श्री कृष्ण से

---

१९. देखिए महाभारत—उद्योगपर्व ७२ से ९२ तक।
किन्तु जैन पाण्डवचरित्र देवप्रभसूरि में ऐसा वर्णन नहीं है।

२०. पद्माक्षी पुंडरीकाक्षमुपेत्य गजगामिनी।
अश्रुपूर्णेक्षणा कृष्णा कृष्णं वचनमब्रवीत् ॥
अयं ते पुंडरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छता ॥
—महाभारत उद्योगपर्व अ० ८२, श्लोक ३५-३६

२१. इदं तु सुमहत्कार्यं शृणु मे यत्समर्थितम्।
परायण पाण्डवानां नियच्छामि जनार्दनम् ॥
तस्मिन्बद्धे भविष्यन्ति वृष्णयःपृथिवी तथा।
पाण्डवाश्च विधेया मे स च प्रातरिहैष्यति ॥
—महाभारत, उद्योगपर्व, अ० ८८, श्लोक १३-१४

छिपी न रह सकी। जब दुर्योधन ने उनको भोजन के लिए निमन्त्रण दिया तब श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए दुर्योधन की ओर देखकर कहा—"हे कौरव ! मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, कपट या लोभ वश होकर धर्म को नहीं त्याग सकता। लोग यों तो प्रीति से और विपत्तिग्रस्त होकर दूसरे का अन्न खाते हैं। पर तुमने प्रीति से मुझे भोजन का निमन्त्रण नहीं दिया है और न मुझ पर कोई आपत्ति आई है। फिर मैं तुम्हारे यहाँ क्यों भोजन करूं ?[२३] मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम किसी दुष्ट विचार से भोजन के लिए अनुरोध कर रहे हो इसलिए मैं तुम्हारे दूषित अन्न को न खाऊँगा। मैं केवल विदुर जी का अन्न ग्रहण करना ही उचित और श्रेयस्कर समझता हूँ।[२४]

धृतराष्ट्र को समझाना :

दूसरे दिन श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में गये। धृतराष्ट्र की ओर देखकर उन्होंने कहा—हे भरतकुल दीपक ! मैं इस उद्देश्य से आपके पास आया हूँ कि पाण्डवों और कौरवों में परस्पर सन्धि हो जाय और वीर पुरुषों का विनाश न हो।[२५] आपको और कोई हितोपदेश देने की मुझे इच्छा नहीं है, क्योंकि जानने योग्य सभी बातें आप

---

२२. महाभारत उद्योग पर्व, अ० ८८ श्लोक १९ से २३, पृ० ३६०८-३६०९, सचित्र महाभारत।

२३. नाऽहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नाऽर्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन॥
सम्प्रीतिभोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यनि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन्न चैवाऽऽपद्गता वयम्॥
वहीं—उद्योगपर्व, अ० २९ श्लोक २४-२५

२४. सर्वमेतन्न भोक्तव्यमन्नं दुष्टाभिसंहितम्।
क्षत्तुरेकस्य भोक्तव्यमिति मे धीयते मतिः॥
वहीं, उद्योगपर्व अ० २९ श्लोक ३२

२५. कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः॥
—वहीं० उद्योगपर्व अ० ९५, श्लोक ३

जानते हैं।[२६] आप कुरुकुल के प्रधान नेता और शासक हैं। आपके रहते आपसे छिपाकर और आपको जताकर भी कौरव लोग असत्य और कपट का व्यवहार कर रहे हैं। आपके पुत्र दुर्योधन आदि अत्यन्त अशिष्ट हैं। वे राज्य-लोभ के वश होकर प्राचीन मर्यादा को तोड़ते हैं—धर्म और अर्थ पर दृष्टि न रखकर पाण्डवों के साथ क्रूरता और बेईमानी का वर्ताव कर रहे हैं। इसी कारण इस समय कुरुकुल के ऊपर विपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। यदि आप इस परिस्थित को न संभालेंगे तो निश्चय ही युद्ध की अग्नि में पृथ्वी के असंख्य मनुष्यों का सर्वनाश हो जायेगा। हे राजेन्द्र ! आप चाहें तो सहज ही यह आपत्ति टल सकती है।[२७]

हे राजेन्द्र ! आपकी आज्ञा मानना आपके पुत्रों का कर्तव्य है। आपकी आज्ञा में चलने से उनका परम कल्याण होगा।[२८]

हे नरराज ! विशेष उद्योग व यत्न करके भी आप पाण्डवों को हरा नहीं सकते, किन्तु पाण्डव यदि आपके रक्षक हो जायेंगे तो देवगण सहित भी आपका सामना न कर सकेंगे। राजाओं की तो वात ही नहीं।[२९]

हे राजेन्द्र ! संग्राम का फल केवल महाक्षय है। देखिए, कौरवों और पाण्डवों में से यदि कोई पक्ष नष्ट हुआ तो आपकी ही हानि होगी। आपको शोक भी होगा।[30] समर में पाण्डवों और कौरवों का विनाश होने से क्या आपकी प्रशंसा होगी ? पाण्डव मरें या कौरव मरें तो क्या आपको सुख मिलेगा ?[31] पाँचों पाण्डव शूर युद्धनिपुण और आपके आत्मीय हैं। इसलिए आप इस होने वाले अनर्थ से दोनों पक्षों की रक्षा कीजिए। ऐसा उपाय कीजिए जिससे शूर और रथी पाण्डव और कौरव एक दूसरे के हाथ से मरते हुए न दीख पड़ें।[32] और पाण्डवों के प्रति आपका जैसा सद्भाव पहले था वैसा ही फिर

२६. वहीं० श्लोक ४
२७. वहीं० श्लोक ८-१२
२८. वहीं० श्लोक १४
२९. वहीं० श्लोक १८
३०. वहीं० श्लोक २८
३१. वहीं० श्लोक २९
३२. वहीं० श्लोक ३१
३३. वहीं० श्लोक ३७

हो जाये।[33] पाण्डवों के पिता बाल्यावस्था में ही मर गये थे[34] तभी से वे पुत्र की तरह आपके यहाँ पले हैं। इसलिए आप उन्हें और अपने पुत्रों को एकसा समझकर दोनों की रक्षा कीजिए।[35] पाण्डव सन्धि और युद्ध दोनों के लिए तैयार हैं। अब आप लोगों को जो अच्छा लगे वह कीजिए।[36]

कुछ देर रुककर फिर कृष्ण ने दुर्योधन से कहा—दुर्योधन ! सन्धि हो जाने पर पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर तुम्हीं को युवराज बनायेंगे और धृतराष्ट्र महाराजा बने रहेंगे। इस कारण गले लगने आ रही राजलक्ष्मी को विमुख मत करो। पाण्डवों को आधा राज्य देकर आप भी विशाल ऐश्वर्य प्राप्त करो। मेरा अन्तिम कथन यही है कि हितैषियों की बात मानकर पाण्डवों से सन्धि कर लेने में ही तुम्हारे आत्मीय प्रसन्न होंगे।[37]

दुर्योधन को भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ने भी समझाया पर वह न समझा। उसने कहा—मेरे जीते जी पाण्डव राज्य प्राप्त नहीं कर सकते। यहां तक कि सुई की नोंक भर भी पृथ्वी, मैं युद्ध के बिना पाण्डवों को नहीं दे सकता।[38]

दुर्मति दुर्योधन दुःशासन, शकुनि और कर्ण ने आपस में सम्मति करके यह निश्चय किया कि राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह से मिलकर चतुर कृष्ण हमें पकड़ने की इच्छा कर रहे हैं। इसलिए

---

३४. जैन ग्रन्थों के अनुसार पाण्डुराजा का देहान्त नहीं हुआ, वे महाभारत के युद्ध के समय उपस्थित थे। देखो—श्री देवप्रभसूरि रचित पाण्डव चरित्र सर्ग—११ वां।

३५. वाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः।
तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ॥
—महाभारत, वहीं० ३८

३६. महाभारत उद्योग पर्व, अ० ९५, श्लोक ६२

३७. महाभारत उद्योग पर्व, अ० १२४ श्लोक -० से ६२

३८. यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विद्ध्येदग्रेण केशव!।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान्प्रति॥
—महाभारत उद्योग पर्व, अ० १२७, श्लोक २५

हम पहले ही, इन्द्र ने जैसे बलि राजा को पकड़ लिया था, वैसे बल पूर्वक पुरुषसिंह कृष्ण को कैद करलें। कृष्ण के पकड़े जाने पर पाण्डव लोग, जिसके दांत तोड़ दिये गये हों उस सर्प की तरह, बिल्कुल उत्साह-हीन और किंकर्तव्यविमूढ हो जायेंगे।[३९]

महाबुद्धिमान् और इशारों के जानने में प्रवीण सात्यकि ने उन लोगों का यह दुष्ट विचार जान लिया।[४०] उन्होंने पहले पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से फिर राजा धृतराष्ट्र और विदुर से दुर्योधन के इस दुष्ट विचार का हाल कहा।[४१] सभी ने दुर्योधन के मूर्खतापूर्ण कृत्य की भर्त्सना की।[४२] कृष्ण ने उस समय अपना चमत्कार बतलाकर सभी को चमत्कृत किया।[४३] फिर वे वहां से रवाना हो गये।

महाभारत में अन्त में आधे राज्य के स्थान पर पाँच गांव पांडवों को देने का भी उल्लेख आया है।[४४]

क्या महाभारत का युद्ध ही जरासंध का युद्ध है ? :

महाभारत का युद्ध कौरवों और पाण्डवों का युद्ध था। उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी का कार्य किया किन्तु स्वयं ने युद्ध नहीं किया।[४५]

आचार्य शीलाङ्क ने महाभारत का उल्लेख नहीं किया, 'चउप्पन्न महापुरिस चरियं'[४६] में, कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित्र में,[४७] आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र ने भव-भावना

---

३९. महाभारत उद्योग पर्व, अ० १३० श्लोक ३ से ६

४०. वहीं० श्लोक ६ ४१. वहीं० श्लोक १२-१३

४२. वहीं० श्लोक १४ से ५३

४३. वहीं० अ० १३१, श्लोक ४-२२

४४. सर्व भवतु ते राज्यं पञ्चग्रामान्विसर्जय।
अवश्यं भरणीया हि पितुस्ते राजसत्तम !॥
—महाभारत उद्योग० अ० १५०, श्लोक १७

४५. पाण्डव चरित्र, देवप्रभसूरी, अनुवाद सर्ग १२, पृ० ३८०

४६. अ० ४९-५०-५१, पृ० १८७-१९०

४७. पर्व ८

४८. भव-भावना

में[४८] तथा अन्य कितने ही जैन ग्रन्थों में भी महाभारत के युद्ध का वर्णन नहीं है। कितने ही लेखकों ने जरासंध के साथ हुए युद्ध एवं महाभारत युद्ध को एक मानकर ही वर्णन कर दिया है।

देवप्रभसूरि के पाण्डव चरित्र के अनुसार कौरवों और पाण्डवों का युद्ध जरासंध के युद्ध से पूर्व हुआ था। कौरव-पाण्डव-युद्ध में जरासंध दुर्योधन के पक्ष में आया था, किन्तु उसने लड़ाई में भाग नहीं लिया था। कौरव-पाण्डवों का युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ था,[४९] और जरासंध के साथ कृष्ण का युद्ध द्वारिका से पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली में हुआ था।[५०] वे दोनों युद्ध पृथक्-पृथक् थे।

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में[५१] तथा दिगम्बर आचार्य शुभचन्द्र ने पाण्डवपुराण में[५२] जरासंध के युद्ध को और कौरव-पाण्डवों के युद्ध को एक माना है। जरासंध का वह युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ बताया गया है।[५३] उसी युद्ध में श्रीकृष्ण जरासंध को मारते हैं।[५४]

---

४९. पाण्डव चरित्र सर्ग १३, पृ० ३९१

५०. (क) पंचचत्वारिंशतं तु योजनानि निजात् पुरात्।
गत्वा तस्थौ सेनपल्यां ग्रामे संग्रामकोविदः॥
—त्रिषष्टि० ८।७।१९६

(ख) कइवयपयाणएहिं च पत्तो सरस्सतीए तीराए सिणवल्लिया-हिहाणं गाभंति। तत्थ य समथलसमरजोग्गभूमिभागम्मि आवासिओ समुद्दविजओ त्ति।
—चउप्पन्नमहापुरिसचरियं पृ० १८६

५१. हरिवंशपुराण सर्ग ५०, पृ० ५८७

५१. देखिए पर्व १९-२०, पृ० ३९०-४४५

५३. जरासन्धोऽत्र संप्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक्।
कुरुक्षेत्रं महाक्षत्रप्रधानप्रधनोचितम्॥
पूर्वमभ्येत्य तत्रैव केशवोऽपरसागरः।
तस्थावापूर्यमाणः सत् वाहिनीनिवहैर्निजैः॥
—हरिवंशपुराण ५०।६५-६६, पृ० ५८७

५४. हरिवंशपुराण ५२।८३-८४, पृ० ६०२

महाभारत के अनुसार जरासंध का युद्ध कौरव-पाण्डवों के युद्ध से पहले हुआ था।[५५]

हमारी अपनी दृष्टि से भी महाभारत और जरासंध का युद्ध पृथक् पृथक् है।

महाभारत युद्ध और उसका दुष्परिणाम :

पाण्डवों को अपने स्वत्व की रक्षा और न्यायोचित अधिकार की प्राप्ति के लिए युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। युद्ध की घोषणा हुई। एक पारिवारिक राजवंश का झगड़ा, व्यापक बन गया कि उसने देशव्यापी महायुद्ध का रूप धारण कर लिया।

महाभारत का यह भयंकर संग्राम वैदिक परम्परा की दृष्टि से १८ दिनों तक चला, किन्तु उस युग की समुन्नत युद्ध कला और अत्यन्त परिष्कृत अस्त्र-शस्त्रों के कारण उस अल्पकाल में ही इतना भीषण संहार हुआ कि उसकी तुलना करना कठिन है। दोनों पक्षों के बहुसंख्यक राजा गण अपनी-अपनी विराट् सेना के साथ उस महा विनाश की बलि-वेदी पर जूझ मरे थे। श्रीकृष्ण के अपूर्व बुद्धि बल और अद्भुत रण-कौशल से शक्तिशाली कौरव पराजित हुए और पाण्डवों की विजय हुई। पर यह विजय बहुत मंहगी रही। उस युद्ध का भयानक परिणाम समस्त भारतवर्ष को भोगना पड़ा। उस काल तक देश ने ज्ञान-विज्ञान की जो उन्नति की थी और जो अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि प्राप्त की थी वह सब उस महायुद्ध की भीषण ज्वाला में जलकर भस्म हो गई। उस समय देश अवनति के ऐसे गहरे गर्त में गिर गया कि जिसका चिरकाल तक उद्धार नहीं हो सका।[५६]

गीता का उपदेश :

उस युद्ध का विस्तृत वर्णन महाभारत, पाण्डवचरित्र, आदि ग्रन्थों में किया गया है। उस युद्ध में श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। महान् योद्धा और वीर भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, अभिमन्यु,

---

५५. देखिए—महाभारत सभापर्व के अन्तर्गत जरासंध पर्व

५६. देखिए व्रज का सांस्कृतिक इतिहास

दुर्योधन, और दु:शासन आदि अनेक वीरों का उस युद्ध में संहार हुआ।

वैदिक मान्यता के अनुसार उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीता वैदिक परम्परा का एक अद्भुत ग्रन्थ है। सन्त ज्ञानेश्वर ने कहा है—गीता विवेक रूपी वृक्षों का अपूर्व बगीचा है। वह नवरस रूपी अमृत से भरा समुद्र है। लोकमान्य तिलक ने लिखा—गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। महर्षि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर का अभिमत है कि—गीता वह तैलजन्य दीपक है जो अनन्तकाल तक हमारे ज्ञानमन्दिर को प्रकाशित करता रहेगा। बंकिमचन्द्र का मानना है कि—गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि उसमें ज्ञान, कर्म, और भक्ति—तीनों योगों की न्याययुक्त व्याख्या है। महात्मा गांधी गीता को माता व सद्गुरु रूप में मानते थे।

जैन ग्रंथों में कुरुक्षेत्र में गीतोपदेश की कोई चर्चा नहीं मिलती। कुछ समीक्षकों का मत है कि गीता का उपदेश वास्तव में कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय का उपदेश नहीं है, किन्तु युद्ध का रूपक बनाकर वह भारतीय जीवन दृष्टि का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण किया गया है!

कुछ भी हो, गीता भारतीय चिंतन एवं जीवन दर्शन की एक अमूल्य मणि है, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

जीवन के विविध प्रसंग

- चमत्कारी भेरी
- आत्म-प्रशंसा
- वशीकरण मंत्र
- द्रौपदी-परीक्षा
- आत्मा की शुद्धि
- श्रीकृष्ण और पिशाच
- शिशुपाल का वध

जीवन के विविध प्रसंग

●

१ | चमत्कारी भेरी :

एक समय इन्द्र ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए कहा—श्रीकृष्ण कभी किसी के दुर्गुण नहीं देखते। और न किसी व्यक्ति के साथ नीच युद्ध करते हैं।

एक देव को इन्द्र के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ। वह सीधा द्वारिका में आया। उस समय श्रीकृष्ण रथ में बैठकर वन-विहार को जा रहे थे। रास्ते में देव ने एक मृत कुतिया का रूप बनाया। उसके शरीर में कीड़े कुलबुला रहे थे। दुर्गन्ध से सिर फट रहा था। लोग उसे दूर से ही देखकर नाक-भौं सिकोड़ कर आगे बढ़ रहे थे। श्रीकृष्ण ने उसे देखा। सारथी से बोले – देखो न, इस कुतिया के दांत मोती की तरह चमक रहे हैं। इसके दांत कितने सुन्दर दिखलाई दे रहे हैं। कृष्ण आगे बढ़ गये। देव ने देखा वस्तुतः श्रीकृष्ण गुणानुरागी है।

तत्पश्चात् देव ने एक तस्कर का रूप बनाया और वह श्रीकृष्ण के अश्व रत्न को लेकर भागा। उसे छीनने के लिए सेना ने पीछा किया, पर चोर ने सेना को भगा दिया। तब श्रीकृष्ण पहुँचे। बोले—अरे चोर, मेरे घोड़े को लेकर कहां जा रहा है ? यदि प्राण की रक्षा चाहता है तो घोड़े को छोड़ दे।

चोर ने कहा—मुझे युद्ध में जीतकर तुम अपना घोड़ा ले सकते हो।

कृष्ण—मैं रथ में बैठा हूँ, तू भी रथ में बैठकर युद्ध कर।

चोर—मुझे रथ की आवश्यकता नहीं, मैं तो तुम्हारे साथ पूति-युद्ध करना चाहता हूँ।

कृष्ण—मैं नीच युद्ध नहीं करता, तू मेरा घोड़ा ले जा सकता है।

ज्योंही श्रीकृष्ण की यह बात सुनी, देव प्रसन्न हो उठा। उसने अपना रूप प्रकट कर कहा—कृष्ण ! वस्तुतः तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। देवदर्शन व्यर्थ न हो, इसलिए बोलो क्या चाहते हो ?

कृष्ण ने कहा—देव ! मुझे अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, पर इन दिनों में द्वारिकावासी रोग से संत्रस्त हैं अतः ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे रोग का उपशमन हो जाए।

देव ने एक दिव्य भेरी देते हुए कहा—इस भेरी को छह-छह मास से बजाइयेगा, जिससे पूर्व रोग नष्ट हो जायेगा और भविष्य में छह माह तक कोई रोग न होगा। देव अपने स्थान चला गया।

श्रीकृष्ण ने ज्योंही भेरी को बजाया, त्यों ही उसके शब्द के प्रभाव से द्वारिकावासी रोगमुक्त हो गये।

एक श्रेष्ठी ने भेरी की महिमा सुनी। वह दाह-ज्वर से संत्रस्त था। वह द्वारिका आया। पर पहले ही भेरी बज चुकी थी। लोगों ने कहा—छह माह तक अब उसकी प्रतीक्षा करनी होगी। सेठ सीधा ही भेरी-रक्षक के पास पहुँचा। एक लाख दीनार उसके हाथ में थमाते हुए कहा, जरा भेरी का टुकड़ा ही दे दो। पहले तो भेरी रक्षक इन्कार होता रहा, पर पैसे के लोभ से वह पिघल गया। उसने जरा सा टुकड़ा काटकर उसे दे दिया। ज्योंही धनिक ने उसे घोट कर पिया त्योंही वह रोगमुक्त हो गया। भेरी रक्षक ने उसकी जगह चन्दन की लकड़ी लगा दी। इस प्रकार धन के लोभ से वह भेरी को काट-काट कर देने लगा। एक दिन सम्पूर्ण भेरी ही चन्दन की हो गई।

छह माह के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उसे बजाने का आदेश दिया और वह बजाई गई तो उसका शब्द ही नहीं हुआ। कृष्ण ने उसे

देखा, सारा रहस्य उन्हें ज्ञात हो गया। रिश्वतखोर भेरी रक्षक को श्रीकृष्ण ने प्राण दण्ड दिया, और अष्टम तप कर पुनः देव से वह चमत्कारी भेरी प्राप्त की।[1]

२ | आत्मप्रशंसा :

महाभारत का युद्ध चल रहा था। वीर अर्जुन के धनुष की टंकार चारों ओर गूंज रही थी। अपने पौरुष के अभिमान में वीर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की कि जो मेरे गाण्डीव धनुष का अपमान करेगा, उसे मैं जीवित न छोड़ूंगा।

उधर युधिष्ठिर और कर्ण में भयंकर युद्ध चल रहा था। युधिष्ठिर चारों ओर से शत्रुओं से घिर गये। कर्ण उनको एक ही बाण में परलोक पहुँचा सकता था, पर उसने अपनी उदारता बतलाते हुए कहा—युधिष्ठिर! मैं आज तुम्हें परलोक पहुँचा देता, किन्तु मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि कुन्ती के पुत्रों में से अर्जुन के अतिरिक्त किसी को भी नहीं मारुंगा। वह प्रतिज्ञा ही आज मुझे तुम्हें मारने से रोक रही है। जाओ मैं तुम्हें प्राण दान देता हूँ।

युधिष्ठिर लज्जा से पीछे लौटे। अर्जुन कौरव-सेना में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर अत्यधिक प्रसन्न हो रहा था। युधिष्ठिर ने जब अर्जुन को देखा तव अपने हृदय की अपार वेदना को व्यक्त करते हुए कहा—अर्जुन! धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव को, जिसके होते हुए भी कर्ण ने मेरा घोर अपमान किया है।

गाण्डीव को धिक्कार को बात सुनते ही अर्जुन का खून खौलने लगा। वह क्रोध से लाल हो गया। उसे भान ही न रहा कि मैं अपने पितृतुल्य बड़े भाई के सामने हूँ। उसके दिल और दिमाग में एक ही बात घूम रही थी—मेरे गाण्डीव का अपमान! कोई भी क्यों न

---

१. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र पर्व ८, सर्ग १०
(ख) आवश्यक चूर्णि
(ग) नन्दीसूत्र वृत्ति मलयगिरि

हो, उसके अपमान का बदला लिये बिना नहीं रह सकता। मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा! बड़े भाई के अपमान करने वाले का बदला बाद में लूंगा, पहले तो गाण्डीव का अपमान करने वाले को समझता हूँ। वह गाण्डीव की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर युधिष्ठिर के सामने खड़ा हो गया।

वातावरण अत्यन्त विषम हो गया। अर्जुन का भयंकर क्रोध महान् अनर्थ कर देगा। तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा—अर्जुन, धन्यवाद! तुम महान् क्षत्रिय हो, युधिष्ठिर का वध कर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिए। पर खेद है, कि तुम्हें मालूम नहीं कि बड़ों का वध कैसे किया जाता है।

अर्जुन के हाथ रुक गये। वह कुछ सोचने लगा कि तभी कृष्ण ने कहा—अपने से बड़ों का वध शस्त्र से नहीं, अपमान से किया जाता है। तुम युधिष्ठिर को अपमान जनक शब्द कहकर उनका वध कर सकते हो।

क्रोध के आवेग में अर्जुन ने युधिष्ठिर को गालियाँ देनी प्रारंभ की। वह मुंह से अनर्गल बातें सुनाता रहा किन्तु कुछ समय में जब उसके अहं का नशा उतरा तो मन ग्लानि से भर गया, और अर्जुन के मन में इतनी ग्लानि हुई कि वह आत्मदाह करने को प्रस्तुत हो गया।

उसने कहा—धर्मशास्त्रों का विधान है कि अपने गुरुजनों की हत्या करने वाला व्यक्ति अपने को जीवित ही अग्नि में होम दे। तभी वह पाप से मुक्त हो सकता है। एतदर्थ बड़े भाई का अपमान करने के कारण मैं अब अग्निस्नान करूंगा। यह कह वह अग्निस्नान के लिए चलने लगा।

पुनः स्थिति विकट हो गई। श्रीकृष्ण ने टूटते हुए सूत्र को फिर से संभाला—'अर्जुन! तुमने अपने बड़े भाई का अपमान कर महान् पाप किया है। इसका प्रायश्चित्त तुम्हें आत्म-हत्या करके करना होगा, पर आत्महत्या किसे कहते हैं यह तुम जानते हो?

अर्जुन, कृष्ण की ओर टकटकी लगाता हुआ देखता रहा। श्रीकृष्ण ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—शस्त्र से शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देना, पानी में डूबकर मर जाना, अग्नि में जलकर अपने शरीर को

नष्ट कर देना, ये सारे आत्म हत्या के तरीके नहीं है। आत्म हत्या का सबसे उत्कृष्ट तरीका है, अपने ही मुंह से अपनी प्रशंसा करना। अर्जुन ! तुम अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करो, बस, तुम्हारी आत्म-हत्या हो गई।

श्रीकृष्ण के मुंह से गुरुजनों के वध और आत्म हत्या का अर्थ और विश्लेपण सुनकर सभी विस्मित हो गए।

●

३ | वशीकरण मंत्र :

एक समय श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ द्वारिका जा रहे थे। रथ द्रुतगति से आगे बढ़ रहे थे। श्रीकृष्ण की अग्रमहिषी सत्यभामा और पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी दोनों एक रथ में बैठी थीं। सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा—बहिन ! मुझे आश्चर्य है कि तू अपने पाँचों पतियों को इतना अधिक प्रसन्न कैसे रखती है ? तेरे पास कौनसा वशीकरण मंत्र है कि सभी तुझ पर मुग्ध रहते हैं ! मेरे तो एक ही पति हैं और उन्हें भी मैं प्रसन्न नहीं रख पाती।

द्रौपदी ने कहा—बहिन सत्यभामा ! वस्तुतः तुम बहुत भोली हो। मैं तुम्हें वशीकरण मंत्र बताती हूँ। वह यह है—प्रियतम के चरणों में मन, वचन और कर्म से अर्पित हो जाना। जो उन्हें पसन्द हो वही कार्य करना, उनके भोजन करने के पश्चात् भोजन करना, उनके सोने के पश्चात् सोना, वे जो भी बात कहें आदर से उसे सुनना, और भेद भाव न रखना, प्रत्येक बात का उत्तर मधुर वाणी से देना ! इससे बढ़कर दूसरा वशीकरण मंत्र नहीं है।[२]

●

---

२. (क) पाण्डवचरित्र—देवप्रभसूरि
(ख) महाभारत

४ | द्रौपदी की परीक्षा :

कहा जाता है एक समय द्रौपदी कहीं जा रही थीं। रास्ते में एक नदी आयी। राजा कर्ण सूर्य की उपासना में तल्लीन थे। उनके तेजस्वी चेहरे को देखकर द्रौपदी के मन में विचार आया—यह भी पाण्डवों के भाई हैं, यदि साथ ही रहते तो जैसे पाँच पति हैं वैसे छठे पति इनको भी बना लेती। द्रौपदी के मन में विचार आया और चला गया। द्रौपदी अपने महलों में लौट आयी।

किसी भी प्रकार द्रौपदी के मन का यह विचार श्रीकृष्ण को ज्ञात हो गया। उन्होंने सोचा द्रौपदी ने भूल की है और उस भूल का प्रायश्चित्त करना चाहिए, नहीं तो यह छोटी भूल विराट् रूप ले सकती है।

यह सोचकर श्रीकृष्ण द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों को लेकर जंगल में पहुँचे, वहां पर एक सुन्दर बगीचा आया। बगीचे में प्रवेश करने के पूर्व श्रीकृष्ण ने सबसे कह दिया कि कोई भी इसमें से एक भी फल और फूल न तोड़े। सभी ने कृष्ण की आज्ञा स्वीकार कर उपवन में प्रवेश किया।

उपवन का सौन्दर्य अवलोकन करते हुए सभी आगे बढ़ रहे थे। भीम सभी से पीछे थे। उनकी दृष्टि आम के वृक्ष पर गई। अति सुन्दर सरस आमों को देखकर उनसे रहा नहीं गया और उन्होंने एक आम तोड़ लिया। उसे खाने की ज्योंही तैयारी करने लगे त्यों ही कृष्ण ने कहा—भीम यह क्या कर रहे हो ! तुमने मेरे आदेश की अवहेलना की है।

भीम तो कृष्ण को सामने देखकर घबरा गया। उसने नम्रता से कहा—मुझसे भूल हो गई है।

कृष्ण—भीम ! भूल कहने से कार्य नहीं चलेगा, जरा अपने मुंह से बोलो—इस चोरी के अतिरिक्त मैंने कभी भी अपने जीवन में चोरी न की हो तो हे फल ! वृक्ष से चिपक जा।

कृष्ण के कहने से ज्योंही भीम ने फल को कहा—फल ऊपर उठा, वृक्ष के लगने लगा, त्योंही कृष्ण ने उसे बीच में ही पकड़ लिया। नकुल, सहदेव, अर्जुन और धर्मराज की भी इसी प्रकार परीक्षा

ली गई। पाण्डव परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। अव नम्वर द्रौपदी का था।

श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी ! तुम तो सती हो, जरा मुंह से बोलो पाँच पाण्डवों के अतिरिक्त किसी भी परपुरुष की इच्छा मन में न की हो तो, अय आम्रफल ! पुनः वृक्ष पर लग जाओ।

द्रौपदी ने कहा—पर आम का फल वृक्ष पर लगने के वजाय, पृथ्वी पर गिर पड़ा। सभी आश्चर्य चकित हो गए।

द्रौपदी के आँखों से आँसू वहने लगे। कृष्ण ने कहा—द्रौपदी ! घवराओं मत ! स्मरण करो उस दिन नदी के प्रसंग को। कर्ण को देखकर तुम्हारे मन में क्या विचार हुए थे। तुम्हारे मन में मलिनता आयी थी न ?

द्रौपदी ने उस क्षणिक विचार के लिए पश्चात्ताप किया। इसके अतिरिक्त यदि मेरे मन में कभी भी मलिन विचार न आये हों तो फल वृक्ष के लग जा। फल यह कहते ही वृक्ष के लग गया।[3] कृष्ण ने आलोचना करवा कर द्रौपदी के जीवन को शुद्ध कर दिया।

●

५ | आत्मा की शुद्धि :

वैदिक ग्रन्थों में एक प्रसंग है—कि एक वार युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों सहित श्रीकृष्ण के पास आये। श्रीकृष्ण ने उनके आने का कारण पूछा।

युधिष्ठिर बड़े व्यथित थे, उन्होंने कहा—नटवर ! युद्ध में लाखों व्यक्तियों का संहार हुआ है, एतदर्थ मेरा मन बड़ा दुःखी है, हम चाहते हैं कि कुछ दिन तीर्थ स्थानों में जाएं और अपने जीवन को पाप से मुक्त करें।

श्रीकृष्ण सोचने लगे कि युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त करने के लिए वाहर भटकना चाहते हैं। उस समय उन्होंने

---

३. जवाहर किरणावली उदाहरण माला

उनके निर्णय को उपदेश से बदलना उचित नहीं समझा उन्हे शिक्षा देने के लिए उन्होंने एक उपाय खोज निकाला।

श्रीकृष्ण महल में जाकर एक तूम्बी लेकर आए और उसे युधिष्ठिर को देते हुए कहा—धर्मराज! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मैं भी तुम्हारे साथ चलता किन्तु इतना व्यस्त हूँ कि समय नहीं है। आप मेरी ओर से यह तूम्बी ले जाएं और तीर्थों के पवित्र पानी में अपने साथ इसको भी स्नान करा दें।

युधिष्ठिर ने सहर्ष स्वीकृति दी और तूम्बी लेकर वे वहां से रवाना हो गए। तीर्थयात्रा कर वे लौटे, तथा तूम्बी लाकर उन्होंने श्रीकृष्ण के हाथ में थमा दी। और कहा—प्रत्येक तीर्थ में इसे स्नान कराया है। हमने एक बार स्नान किया तो तूम्बी को अनेक बार स्नान कराया।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को धन्यवाद दिया, और उसी समय तूम्बी को पिसवा कर उसका चूर्ण बनवाया और उस चूर्ण को अपने हाथों से सभी सभासदों को और पाण्डवों को दिया और कहा—यह तूम्बी समस्त तीर्थों में स्नानकर आयी है अतः यह परम पवित्र होगई है।

सभी व्यक्तियों ने तूम्बी का चूर्ण सिर पर लगाकर मुंह में डाल लिया, पर चूर्ण इतना कटु था कि सभी थू-थू करने लगे। कृष्ण ने बनावटी आश्चर्य दिखाते हुए कहा—क्या इतने तीर्थों में स्नान करके भी यह तूम्बी मीठी नहीं हुई? फिर आत्मा पर लगे हुए पाप तीर्थ यात्रा करने से किस प्रकार धुल सके होंगे? उन्होंने मुस्कराते हुए युधिष्ठिर को कहा—पाण्डुपुत्र! अपनी जिस आत्मा रूपी नदी में संयम रूप जल, सत्य रूप प्रवाह, दयारूप तरंगे, और शील रूपी कगार है उसी में अवगाहन करो। बाह्य नदियों के जल से कभी भी अन्तरात्मा शुद्ध और पवित्र नहीं हो सकता।[४]

युधिष्ठिर आदि को अपनी भूल ज्ञात हो गई, उन्हें द्रव्य तीर्थ यात्रा की निरर्थकता भी मालूम हो गई।

---

४. आत्मानदी संयमतोयपूर्णा।
सत्यावहा शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र!
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

६ | श्रीकृष्ण और पिशाच :

एक समय श्रीकृष्ण, बलदेव, सत्यकि और दारुक, ये चारों मिलकर वन-विहार को गये। भयंकर अरण्य में ही सूर्य अस्त हो जाने से चारों एक वट वृक्ष के नीचे ठहर गए। चारों ने विचार किया—यह विकट वन है। हम सभी थके हुए हैं अतः नींद सभी को गहरी आयेगी। पर किसी प्रकार का उपद्रव न हो, एतदर्थ एक-एक प्रहर तक प्रत्येक व्यक्ति जागता रहे। सभी ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

दारुक ने निवेदन किया—प्रथम प्रहर मेरा है। आप सभी आनन्द से सो जाइए, मैं पहरा दूंगा। दारुक पहरे पर खड़ा हो गया। कृष्ण आदि सो गए। इतने में एक पिशाच आया। उसने कहा—दारुक! मैं भूखा हूँ, बहुत दिनों से भोजन नहीं मिला है। तुम्हारे साथी जो सोये हुए हैं मैं इन्हें खाना चाहता हूँ।

दारुक ने गर्जते हुए कहा—अरे पिशाच! मेरे रहते मेरे साथियों को खाना कथमपि संभव नहीं है। तुझमें शक्ति है तो युद्ध के लिए तैयार हो जा। उसने दारुक के चेलेंज को स्वीकार किया। दोनों में युद्ध होने लगा। दारुक का ज्यों-ज्यों क्रोध बढ़ता गया त्यों-त्यों पिशाच का बल भी बढ़ता गया। दारुक थक गया पर पिशाच को जीत न सका।

द्वितीय प्रहर में सत्यकि उठा। वह भी दारुक की तरह उससे लड़ता रहा। अपने साथियों की प्राण-रक्षा के लिए जी-जान से प्रयत्न करता रहा। पर पिशाच को परास्त न कर सका।

तृतीय प्रहर में बलदेव की भी यही स्थिति रही।

चतुर्थ प्रहर हुआ। कृष्ण उठे। पहरे पर एक वीर सैनिक की तरह खड़े हो गये। इतने में सामने पिशाच दिखलाई दिया। कृष्ण ने पूछा—तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो?

पिशाच ने कहा—मैं तुम्हारे साथियों को खाने के लिए आया हूँ, कई दिनों से भूखा हूँ, आज भाग्य से बहुत बढ़िया भोजन मिल गया है।

श्रीकृष्ण ने उसे ललकारते हुए कहा—मेरे जीते-जी तुम्हारी इच्छा पूर्ण न होगी। श्रीकृष्ण बड़े दक्ष थे। वे मानव और पिशाच

के बल को अच्छी तरह जानते थे। पिशाच युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। श्रीकृष्ण शान्त भाव से खड़े रहे। उन्होंने कहा – तू पहलवान है, बहादुर है, गजब का योद्धा है। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण मुस्कराते रहे। उनकी मधुर मुस्कान से पिशाच की शक्ति क्षीण हो रही थी। वह देखते ही देखते भूमि पर लुढक पड़ा। उसने कहा— कृष्ण, मैं तुम्हारा दास हूँ।

उषा की सुनहरी किरणें मुस्कराईं। दारुक सत्यक, और बलदेव तीनों उठे, पर तीनों का शरीर लहूलुहान था। सबके सब घायल से थे।

श्रीकृष्ण ने पूछा – साथियो, क्या बात है ? यह अवस्था कैसे ?

तीनों ने एक स्वर से कहा—बात क्या है ? रात्रि में पिशाच से डटकर युद्ध किया। यदि युद्ध न करते तो बच नहीं सकते थे।

श्रीकृष्ण ने हंसते हुए कहा – साथियों ! युद्ध तो मैंने भी किया था, पर मैं घायल नहीं हुआ, पिशाच घायल हो गया। देखो न, वह भूमि पर रेंग रहा है। तुमने पिशाच से युद्ध किया, पर तुम्हें युद्ध की कला का ज्ञान नहीं था। वह उछल-कूद मचाता रहा, और मैं शान्त भाव से खड़ा रहा, उसकी प्रशंसा करता रहा। क्षमा एक ऐसा अचूक शस्त्र है जिससे शत्रु की शक्ति नष्ट हो जाती है। मैंने इसी अमोघ शस्त्र का प्रयोग किया।[५]

७ | शिशुपाल वध

गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण में शिशुपाल वध की कथा इस प्रकार है—

कोशल के राजा भेषज थे। उनकी पत्नी का नाम मद्री था। उनके तीन नेत्र वाला शिशुपाल पुत्र हुआ।[६] तीन नेत्रों को निहार कर उन्होंने किसी निमित्तज्ञानी से पूछा। निमित्तवेत्ता ने कहा – जिसे देखने से इसका तीसरा नेत्र नष्ट हो जायेगा, यह उसी के द्वारा

---

५. उत्तराध्ययन अध्ययन २, गा० ३१ की टीका

६. कस्मिंश्चित् पुरे कोसलाख्यया भूपतेः सुतः।
भेषजस्याभवन्मद्र्यां शिशुपालस्त्रिलोचनः॥
—उत्तरपुराण ७१।३४२, पृ० ३६८

मारा जायगा।[७] किसी दिन राजा भेषज, रानी मद्री शिशुपाल और अन्य लोग श्री कृष्ण के दर्शन के लिए द्वारावती नगरी गये। वहां पर श्रीकृष्ण को देखते ही शिशुपाल का तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया। यह देख मद्री को निमित्तज्ञानी का कथन स्मरण आया। उसने श्रीकृष्ण से याचना की—पूज्य! मुझे पुत्र भिक्षा दीजिए।[८]

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—हे अम्ब! जब तक यह सौ अपराध नहीं करेगा तब तक मैं इसे नहीं मारूंगा।' इस प्रकार कृष्ण से वरदान प्राप्त कर मद्री अपने नगर को चली गई।[९] शिशुपाल का तेज धीरे-धीरे सूर्य की तरह बढ़ने लगा। वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगा। सिंह के समान श्रीकृष्ण के ऊपर भी आक्रमण कर उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाने की इच्छा करने लगा।[१०] इस प्रकार अहंकारी, समस्त संसार में फैलने वाले यश से उपलक्षित और अपनी आयु को समर्पण करने वाले उस शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के सौ अपराध कर डाले।[११] वह अपने आपको सबसे श्रेष्ठ समझता था। श्रीकृष्ण को भी ललकार कर उनकी लक्ष्मी छीनने को उद्यम करता था। इसी बीच रुक्मिणी का पिता रुक्मिणी को शिशुपाल को देने तैयार हुआ। युद्ध की चाह करने वाले नारद ने जब यह बात सुनी तो उसने श्रीकृष्ण को यह समाचार सुनाया। श्रीकृष्ण ने छह प्रकार की सेना के साथ जाकर उस बलवान् शिशुपाल को मारा और रुक्मिणी देवी के साथ विवाह किया।[१२]

---

७. उत्तरपुराण ७१।३४३-३४४, ८. वहीं० ७१।३४७

९. शतापराधपर्यन्तमन्तरेणाम्ब मद्भयम्।
नास्यास्तीति हरेर्लब्धवरासौ स्वां पुरीमगात्॥

—उत्तरपुराण ७१।१४८

१०. वहीं० ७१।३४९-३५१, पृ० ३९८

११. दर्पिणा यशसा विश्वसर्पिणा स्वायुरर्पिणा।
शतं तेनापराधानां व्यधायि मधुविद्विषः॥

—वहीं० ७१।३५२

१२. वहीं० ७१।३५३-३५८ तक देखें।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि के अनुसार जरासंध के युद्ध के समय शिशुपाल का वध हुआ है, रुक्मिणी के विवाह के समय नहीं।[१३]

महाभारत के अनुसार राजसूय यज्ञ करने वाले पाण्डवों ने प्रथम श्रीकृष्ण की अर्चना की। श्रीकृष्ण की अर्चना को देखकर शिशुपाल अत्यन्त रुष्ट हुआ, अनर्गल प्रलाप करने लगा, शिशुपाल की उद्दण्डता को देखकर भीम को बहुत ही क्रोध आया। उसके नेत्र लाल हो गये। वह शिशुपाल को मारने दौड़ा, किन्तु भीष्मपितामह ने उसे रोक दिया। शिशुपाल कहने लगा कि आप इसे छोड़ दें, मैं इसे अभी समाप्त कर दूंगा। तब भीष्मपितामह ने शिशुपाल की जन्म कहानी सुनाते हुए कहा—जब यह जन्मा था, तब गधे की तरह चिल्लाने लगा। माता-पिता डर गये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारा कुछ भी नुकसान नहीं करेगा, इसकी मृत्यु उससे होगी जिसकी गोद में जाने से इस बालक के दो हाथ और एक आंख गायब हो जायेगी। यह सूचना सर्वत्र प्रसारित हो गई। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी फूफी से, जो शिशुपाल की माता है, मिलने गये। शिशुपाल को ज्योंही श्रीकृष्ण की गोद में बिठाया त्योंही इसके दो हाथ और एक आंख गायब हो गई। माता ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। कृष्ण ने कहा—तुम्हारा पुत्र मार डालने योग्य अपराध करेगा तो भी मैं सौ अपराधों तक क्षमा करूंगा।[१४] इसीलिए यह तुम्हें युद्ध के लिए ललकार रहा है। फिर शिशुपाल ने कृष्ण को ललकारा। जब उसके सौ अपराध पूरे हो गये तब श्रीकृष्ण ने क्रोधकर चक्र को छोड़ा, जिससे शिशुपाल का सिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया।[१५]

●●

---

१३. त्रिषष्टि० ८।७।४००-४०४

१४. अपराधशतं क्षाम्यं मया ह्यस्य पितृष्वसः।
पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्वं शोके मनः कृथाः॥
—महाभारत, सभापर्व, अ० ४३ श्लोक २४

१५. महाभारत, सभापर्व, अ० ४५ श्लोक २४-२६

जीवन की सांध्य-वेला

- जराकुमार का जंगल में गमन
- द्वैपायन ऋषि को मारना
- कृष्ण की उद्घोषणा
- भगवान् की भविष्यवाणी
- द्वारिका-दहन
- श्रीकृष्ण का द्वारिका से प्रस्थान
- हस्तिकल्प में अच्छुंदक के साथ युद्ध
- कौशाम्बी के वन में
- जराकुमार का बाण लगना
- श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ तिथि-संवत्
- कृष्ण का अन्तिम काल और यादवों की दुर्दशा
- वैदिक दृष्टि से द्वारिका का अन्त

जीवन की सांध्य-वेला

जराकुमार का जंगल में गमन :

हम पहले लिख चुके हैं कि एक समय श्रीकृष्ण ने भगवान् अरिष्टनेमि से प्रश्न किया—भगवन्! इस द्वारिका नगरी का, यादवों का और मेरा किस रूप से विनाश होगा, क्या स्वतः ही नष्ट होंगे, या किसी अन्य कारण से ?[1]

भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—द्वारिका नगरी के बाहर ब्रह्मचर्य को पालने वाला, इन्द्रिय विजेता, द्वैपायन नामक ऋषि रहता है। उसका यादवों पर गहरा स्नेह है। उस ऋषि को किसी समय शाम्ब आदि यादवकुमार मदिरा से पागल होकर मारेंगे जिससे क्रुद्ध होकर द्वैपायन यादवों के साथ द्वारिका को जलाकर नष्ट कर देगा और जराकुमार के हाथ से तुम्हारा निधन होगा।[2]

---

१. (क) त्रिपष्टि० ८।११।१-२,
   (ख) भव-भावना, गा० ३७८१-८५,
   (ग) हरिवंशपुराण ६१।१७-२१

२. (क) त्रिपष्टि० ८।११।३ से ६
   (ख) भव-भावना, ३७८६-३७९२
   (ग) हरिवंशपुराण० ६१।२३-२४

भगवान् की यह भविष्यवाणी सुनकर यादवगण विचारने लगे कि जराकुमार वस्तुतः कुलाङ्गार है। यादवों को अपनी ओर देखने पर जराकुमार सोचने लगा—मैं वसुदेव का पुत्र हूं, क्या मैं अपने भाई की हत्या करूंगा? नहीं, भगवान् की भविष्यवाणी को मिथ्या करने के लिए उसी समय वह भगवान् को नमस्कार कर धनुष बाण लेकर चल दिया और जंगल में जाकर रहने लगा।[3]

द्वैपायन ऋषि को मारना :

द्वैपायन ऋषि ने भी जनश्रुति से भगवान् की भविष्यवाणी सुनी। यादवों की और द्वारिका की रक्षा के लिए वह भी एकान्त जंगल में चला गया।[4]

श्रीकृष्ण यादवों सहित द्वारिका में आये। मदिरा के कारण भयंकर अनर्थ होगा, यह सोचकर उन्होंने मदिरापान का पूर्ण निषेध कर दिया। श्रीकृष्ण के आदेश से पूर्व तैयार की हुई मदिरा कदम्बवन के मध्य में कादम्बरी नामक गुफा के पास अनेक शिलाकुण्डों में डाल दी गई।[5]

जिन शिला कुण्डों में मदिरा डाली गई थी, वहां पर नाना प्रकार के वृक्ष थे, उनके सुगन्धित पुष्पों के कारण वह मदिरा पहले से भी अधिक स्वादिष्ट हो गई। एक समय वैशाख महीने में शाम्ब कुमार का एक अनुचर घूमता हुआ वहां पहुँच गया। उसे तीव्र प्यास लगी हुई थी। उसने एक कुण्ड में से मदिरा पी, वह उसे बहुत ही स्वादिष्ट लगी। वह एक बर्तन में उस मदिरा का लेकर शाम्बकुमार के पास गया। शाम्बकुमार उस मदिरा को पीकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने धीरे से अनुचर से पूछा—यह सर्वोत्तम मदिरा तुम्हें कहां पर प्राप्त हुई?[6]

---

३. (क) त्रिषष्टि० ८।११।७ से १०
(ख) हरिवंशपुराण ६१।३० से ३२

४. द्वैपायनोऽपि तच्छ्रुत्वा लोकश्रुत्या प्रभोर्वचः ।
द्वारिकाया यदूनां च रक्षार्थं वनवास्यभूत् ॥

५. त्रिषष्टि० ८।११।१२-१३

६. (क) त्रिषष्टि० ८।११।१९-२२

अनुचर ने वह स्थान बताया। दूसरे दिन शाम्बकुमार यादव कुमारों के साथ कादम्बरी गुफा के पास आया। सभी ने प्रसन्नता से खूब मदिरा का पान किया। इधर उधर घूमते हुए उन्होंने उसी पर्वत पर ध्यान-मुद्रा में अवस्थित द्वैपायन ऋषि को देखा। ऋषि को देखते ही वह कहने लगे—यही वह ऋषि है जो द्वारिका का विनाश करेगा। यदि इसे ही मार दिया जाय तो द्वारिका का नाश नहीं होगा। ऐसा सोचकर सभी यादवकुमार उस पर टूट पड़े, ढेले पत्थर व लकड़ियों से तथा मुष्ठियों से उस पर प्रहार करने लगे। द्वैपायन ऋषि भूमि पर गिर पड़ा। यादवकुमार मरा हुआ जानकर द्वारिका लौट आये।[७]

कृष्ण की उद्घोषणा :

श्रीकृष्ण को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्हें अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। कहा—इन कुमारों ने तो कुल संहार का कार्य कर दिया! बलराम को साथ लेकर श्रीकृष्ण द्वैपायन ऋषि के पास गये। अत्यन्त अनुनय विनय के साथ निवेदन किया—ऋषिवर! अज्ञानी बालकों ने मदिरा के नशे में बेभान होकर आपका घोर अपराध किया है, उसे क्षमा करो। आपके जैसे विशिष्ट ज्ञानी और तपस्वियों को क्रोध करना उचित नहीं है।[८]

द्वैपायन ने कहा—कृष्ण! जब तुम्हारे पुत्रों ने मुझे मारा उसी समय मैंने यह निदान किया कि 'सम्पूर्ण द्वारिका को जलाऊंगा' पर तुम्हारी नम्र प्रार्थना पर प्रसन्न होकर तुम्हें छोड़ दूंगा। श्रीकृष्ण सशोक द्वारिका आये। जन-जन की जिह्वा पर द्वैपायन के निदान की वार्ता फैल गई।[९]

---

७. (क) त्रिषष्टि० ८।११।२३-३०

(ख) हरिवंश पुराण के अनुसार द्वैपायन भ्रान्तिवश बारहवें वर्ष में ही वहां आ गया था, और उनको यादव कुमारों ने मारा, और मरने के पश्चात् देव बनकर उसने उपद्रव किया। त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र के अनुसार द्वैपायन को मारा, फिर वह मरकर देव बना किन्तु बारह वर्ष तक तप की साधना चलने से वह कुछ भी उपद्रव नहीं कर सका।

८. त्रिषष्टि० ८।११।३० से ३५

दूसरे दिन श्रीकृष्ण ने द्वारिका में घोषणा करवायी कि द्वारिका का विनाश होने वाला है, अतः द्वारिका निवासी अधिक से अधिक धार्मिक कार्य में रत रहें।[१०]

भगवान् की भविष्यवाणी :

कुछ दिनों के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका के रैवताचल पर समवसृत हुए। श्रीकृष्ण भगवान् को वन्दन के लिए गए। भगवान् का उपदेश सुनकर अनेकों व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण की। श्रीकृष्ण ने प्रभु से पूछा—भगवन्! द्वारिका का विनाश कब होगा?

प्रभु ने फरमाया—द्वैपायन ऋषि आज से बारहवें वर्ष द्वारिका का दहन करेगा।[११]

द्वैपायन मृत्यु प्राप्त कर अग्निकुमार देव हुआ। पूर्व वैर को स्मरण कर वह शीघ्र ही द्वारिका में आया, किन्तु द्वारिका निवासी आयंबिल, उपवास, बेले, तेले आदि तप की आराधना करते थे। तप व धार्मिक क्रिया के प्रभाव से वह देव कुछ भी विघ्न उपस्थित नहीं कर सका। जब बारहवां वर्ष आया तब भावी की प्रबलता से द्वारिकावासियों ने सोचा अपनी तप-जप की साधना से द्वैपायन भ्रष्ट होकर चला गया है। हम सभी सकुशल जीवित रह गये हैं अतः अब हमें स्वेच्छा से आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करनी चाहिए, ऐसा विचार कर वे मद्यपान तथा मांसाहार आदि करने लगे।[१२]

---

९. त्रिषष्टि० ८ ११।३६ से ४१

१०. अघोषयद्द्वितीयेऽह्नि नगर्यामिति शार्ङ्गभृत्।
विशेषाद्धर्मनिरतास्तिष्ठतातः परं जनाः॥

—त्रिषष्टि० ८।:११४२

११. आनम्रो कृष्णपृष्टश्च सर्वज्ञो भगवानिदम्।
द्वैपायनो द्वादशेऽब्दे धक्ष्यति द्वारिकामिमाम्॥

— त्रिषष्टि० ८।११।४७

(क) रन्तुं प्रवृत्तास्ते स्वैरं मद्यपा मांसखादिनः।
नेमिज्ञानं छिद्रमस्त्वद्य द्वैपायनोऽपि हि॥

—त्रिषष्टि० ८।११।६१

द्वारिका दहन :

द्वैपायन इसी प्रतीक्षा में था। वह उसी समय यमराज की तरह विविध उत्पात करने लगा। उसने अंगारों की वृष्टि की। श्रीकृष्ण के सभी अस्त्र-शस्त्र जलकर नष्ट होगए। द्वैपायन देव विद्रूप रूप बनाकर द्वारिका में घूमने लगा। उसने संवर्त वायु का प्रयोग किया, जिससे चारों ओर के जंगलों में से काष्ठ और घास आकर द्वारिका में एकत्रित होगया। प्रलयकारी अग्नि प्रज्वलित हुई। जो लोग द्वारिका को छोड़कर भागने लगे, उन सभी को द्वैपायन पकड़-पकड़ कर लाता और उस अग्नि में होम देता। बालक से लेकर वृद्ध तक कोई एक कदम भी इधर-उधर नहीं जा सकता था।[13]

उस समय श्रीकृष्ण और बलदेव ने जलती हुई द्वारिका से बाहर निकालने के लिए वसुदेव, देवकी और रोहिणी को रथ में बिठाया किन्तु जिस प्रकार कोई मंत्रवादी सर्प को स्तम्भित कर देता है वैसे ही द्वैपायन देव ने अश्वों को स्तम्भित कर दिया। वे एक कदम भी आगे न बढ़ सके। श्रीकृष्ण ने घोड़ों को वहीं पर छोड़ा और स्वयं रथ को खींचने लगे। रथ टूट गया।[14] 'हे राम! हे कृष्ण!' हमें बचाओ इस प्रकार माता-पिता की करुण पुकार सुनकर श्रीकृष्ण और बलराम रथ को किसी प्रकार द्वारिका के दरवाजे तक ले आये। उसी समय नगर के द्वार बन्द हो गये। बलभद्र ने लात मार कर नगर के दरवाजे को तोड़ दिया। रथ

(ख) भव-भावना, पृ० २५२, २५३

१३. (क) त्रिषष्टि० ८।११।६२-७२

(ख) हरिवंश पुराण ६१।७४-७८

१४. (क) त्रिषष्टि० ८।११।७४-७६

नोट—हरिवंशपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारिका का कोट तोड़ कर समुद्र के प्रवाह से उस अग्नि को बुझाने लगे, बलदेव समुद्र के जल को हल से खींचने लगे तो भी अग्नि शान्त नहीं हुई। देखो—हरिवंशपुराण ६१।८०-८१, पृ० ७६०

(ख) हरिवंशपुराण ६१।८२-८४

जमीन में घुस गया। बलराम और कृष्ण ने बहुत प्रयत्न किया पर वह बाहर नहीं निकल सका। उसी समय द्वैपायन देव आया और बोला—अरे, तुम दोनों क्यों निरर्थक श्रम कर रहे हो ? मैंने पूर्व ही कहा था कि तुम दोनों को छोड़कर कोई भी तीसरा व्यक्ति बाहर नहीं निकल सकेगा। तुम्हें ज्ञात होना चाहिए मैंने इस कार्य के लिए अपना महान् तप बेचा है।[१५]

यह सुनकर वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने कहा—'पुत्रों ! अब तुम चले जाओ, तुम दो जीवित हो तो सभी यादव जीवित हैं। तुमने हमें बचाने के लिए बहुत श्रम किया किन्तु हम बड़े अभागे हैं अब हमें अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा।' ऐसा कहने पर भी बलराम और श्रीकृष्ण ने अपना प्रयत्न छोड़ा नहीं। वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भगवान् अरिष्टनेमि की शरण को ग्रहण कर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर संथारा किया, नमस्कार महामंत्र का जाप करने लगे। उसी समय द्वैपायन देव ने अग्नि की वर्षा की और तीनों आयुपूर्ण कर स्वर्ग में गए।[१६]

श्रीकृष्ण का द्वारिका से प्रस्थान :

निराश और विवश बलराम तथा श्रीकृष्ण द्वारिका से बाहर निकल कर जीर्णोद्यान में खड़े रह कर द्वारिका को जलती हुई देखने लगे।[१७] उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। अन्त में श्रीकृष्ण ने कहा—भाई ! अब मैं यह दृश्य नहीं देख सकता। हमें अन्यत्र चलना चाहिए। पर प्रश्न यह है कि बहुत से राजा हमारे विरोधी हो गए हैं। ऐसी स्थिति में हमें कहां चलना चाहिए ?[१८]

---

१५. (क) अहो पुरापि युवयोराख्यातं यद्युवां विना ।
न मोक्षः कस्यचिदिह विक्रीतं हि तपो मया ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८०

(ख) हरिवंशपुराण ६१।८६

१६. त्रिषष्टि० ८।११।८१-८८

१७. रामकृष्णौ बहिः पुर्या जीर्णोद्यानेऽथ जग्मतुः ।
दह्यमानां पुरीं तत्र स्थितौ द्रावपश्यताम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८९

बलराम ने सुझाव दिया—पाण्डव हमारे हार्दिक स्नेही हैं। हमने समय समय पर उनके उपकार भी किये हैं, अतः वहीं पर चलना उचित होगा।

कृष्ण—भाई! तुम्हारा कहना सत्य है पर पहले मैंने उनको निष्कासित किया था, अब वहां कैसे चला जाय?

बलभद्र—कृष्ण! तुम किसी भी प्रकार का विचार न करो, वे हमारा हार्दिक स्वागत करेंगे।

बलभद्र की बात स्वीकार कर श्रीकृष्ण बलराम के साथ द्वारिका से पाण्डु मथुरा जाने के लिए नैऋत्य दिशा की ओर चल दिये।[१९]

जिस समय द्वारिका नगरी जल रही थी, उस समय बलराम का पुत्र कुब्जवारक, जो चरम शरीरी था, महल की छत पर खड़ा होकर कहने लगा—'इस समय मैं भगवान् अरिष्टनेमि का व्रतधारी शिष्य हूँ। मुझे प्रभु ने चरम शरीरी और मोक्षगामी कहा है। यदि भगवान् के वचन सत्य हैं तो मैं इस अग्नि में किस प्रकार जल सकता हूँ? उसी समय जृंभक देव उसे उठाकर भगवान् अरिष्टनेमि के समक्ष शरण में ले गये। वहाँ पर उसने दीक्षा ली।[२०]

छह महीने तक द्वारिका जलती रही। कहा—जाता है कि उसमें साठ कुल कोटि, और बहत्तर कुल कोटि यादव जलकर भस्म होगए। उसके बाद समुद्र में तूफान आया और द्वारिका उसमें डूब गई।[२१]

---

१८. यथा नालं पुरीं त्रातुं तथा न द्रष्टुमुत्सहे।
आर्य ब्रूहि क्व गच्छावो विरुद्धं सर्वमावयोः॥
—त्रिषष्टि० ८।११।९५

१९. अनेकधा सत्कृतास्ते कृतज्ञाः पाण्डुसूनवः।
पूजामेव करिष्यन्ति भ्रातर्विमृशमान्यथा॥
इत्युक्तः सीरिणा शार्ङ्गी प्राचलत्पूर्वदक्षिणाम्।
उद्दिश्य पांडवपुरीं तां पाण्डुमथुराभिधाम्॥
—त्रिषष्टि० ८।११।९९-१००

२०. त्रिषष्टि० ८।११।१०१-१०४

२१. षष्टिर्द्वासप्ततिश्चापि निर्दग्धाः कुलकोटयः।
षण्मास्येवं पुरी दग्धा प्लाविता चाब्धिना ततः॥
—त्रिषष्टि० ८।११।१०६

जमीन में घुस गया। बलराम और कृष्ण ने बहुत प्रयत्न किया पर वह बाहर नहीं निकल सका। उसी समय द्वैपायन देव आया और बोला—अरे, तुम दोनों क्यों निरर्थक श्रम कर रहे हो? मैंने पूर्व ही कहा था कि तुम दोनों को छोड़कर कोई भी तीसरा व्यक्ति बाहर नहीं निकल सकेगा। तुम्हें ज्ञात होना चाहिए मैंने इस कार्य के लिए अपना महान् तप बेचा है।[१५]

यह सुनकर वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने कहा—'पुत्रों! अब तुम चले जाओ, तुम दो जीवित हो तो सभी यादव जीवित हैं। तुमने हमें बचाने के लिए बहुत श्रम किया किन्तु हम बड़े अभागे हैं अब हमें अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा।' ऐसा कहने पर भी बलराम और श्रीकृष्ण ने अपना प्रयत्न छोड़ा नहीं। वसुदेव, देवकी और रोहिणी ने भगवान् अरिष्टनेमि की शरण को ग्रहण कर चारों प्रकार के आहार का त्याग कर संथारा किया, नमस्कार महामंत्र का जाप करने लगे। उसी समय द्वैपायन देव ने अग्नि की वर्षा की और तीनों आयुपूर्ण कर स्वर्ग में गए।[१६]

श्रीकृष्ण का द्वारिका से प्रस्थान :

निराश और विवश बलराम तथा श्रीकृष्ण द्वारिका से बाहर निकल कर जीर्णोद्यान में खड़े रह कर द्वारिका को जलती हुई देखने लगे।[१७] उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। अन्त में श्रीकृष्ण ने कहा—भाई! अब मैं यह दृश्य नहीं देख सकता। हमें अन्यत्र चलना चाहिए। पर प्रश्न यह है कि बहुत से राजा हमारे विरोधी हो गए हैं। ऐसी स्थिति में हमें कहां चलना चाहिए?[१८]

---

१५. (क) अहो पुरापि युवयोराख्यातं यद् युवां विना ।
न मोक्षः कस्यचिदिह विक्रीतं हि तपो मया ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८०

(ख) हरिवंशपुराण ६१।८६

१६. त्रिषष्टि० ८।११।८१-८८

१७. रामकृष्णौ बहिः पुर्या जीर्णोद्यानेऽथ जग्मतुः ।
दह्यमानां पुरीं तत्र स्थितौ द्वावप्यपश्यताम् ॥
—त्रिषष्टि० ८।११।८९

वलराम ने सुझाव दिया—पाण्डव हमारे हार्दिक स्नेही हैं। हमने समय समय पर उनके उपकार भी किये हैं, अतः वहीं पर चलना उचित होगा।

कृष्ण—भाई! तुम्हारा कहना सत्य है पर पहले मैंने उनको निष्कासित किया था, अब वहां कैसे चला जाय?

वलभद्र—कृष्ण! तुम किसी भी प्रकार का विचार न करो, वे हमारा हार्दिक स्वागत करेंगे।

वलभद्र की वात स्वीकार कर श्रीकृष्ण वलराम के साथ द्वारिका से पाण्डु मथुरा जाने के लिए नैऋत्य दिशा की ओर चल दिये।[१९]

जिस समय द्वारिका नगरी जल रही थी, उस समय बलराम का पुत्र कुब्जवारक, जो चरम शरीरी था, महल की छत पर खड़ा होकर कहने लगा—'इस समय मैं भगवान् अरिष्टनेमि का व्रतधारी शिष्य हूँ। मुझे प्रभु ने चरम शरीरी और मोक्षगामी कहा है। यदि भगवान् के वचन सत्य हैं तो मैं इस अग्नि में किस प्रकार जल सकता हूँ? उसी समय जृंभक देव उसे उठाकर भगवान् अरिष्टनेमि के समक्ष शरण में ले गये। वहाँ पर उसने दीक्षा ली।[२०]

छह महीने तक द्वारिका जलती रही। कहा—जाता है कि उसमें साठ कुल कोटि, और वहत्तर कुल कोटि यादव जलकर भस्म होगए। उसके वाद समुद्र में तूफान आया और द्वारिका उसमें डूब गई।[२१]

---

१८. यथा नालं पुरीं त्रातुं तथा न द्रष्टुमुत्सहे।
आर्य ब्रूहि क्व गच्छावो विरुद्धं सर्वमावयोः॥

—त्रिषष्टि० ८।११।९५

१९. अनेकधा सत्कृतास्ते कृतज्ञाः पाण्डुसूनवः।
पूजामेव करिष्यन्ति भ्रातर्विमृशमान्यथा॥
इत्युक्तः सीरिणा शार्ङ्गी प्राचलत्पूर्वदक्षिणाम्।
उद्दिश्य पांडवपुरीं तां पाण्डुमथुराभिधाम्॥

—त्रिषष्टि० ८।११।९९-१००

२०. त्रिषष्टि० ८।११।१०१-१०४

२१. षष्टिर्द्वासप्ततिश्चापि निर्दग्धाः कुलकोटयः।
षण्मास्येवं पुरी दग्धा प्लाविता चाब्धिना ततः॥

—त्रिषष्टि० ८।११।१०६

हस्तिकल्प में अच्छंदक के साथ युद्ध :

श्रीकृष्ण द्वारिका से चलकर हस्तिकल्प नगर के पास आये। उस समय हस्तिकल्प नगर में धृतराष्ट्र का पुत्र अच्छदंक राज्य करता था। महाभारत के युद्ध में कौरव दल का संहार हुआ तब श्रीकृष्ण पाण्डव के पक्ष में थे अतः वह श्रीकृष्ण का विरोधी था। श्रीकृष्ण को उस समय क्षुधा सताने लगी। उन्होंने वलभद्र को कहा—आप नगर में जाकर भोजन लाइए। नगर में जाने पर किसी प्रकार का कोई भी उपद्रव हो जाय तो आप सिंहनाद करना, मैं शीघ्र ही चला आऊँगा।[५२]

वलभद्र भोजन लेने के लिए हस्तिकल्प नगर में गए। वलभद्र के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर लोग सोचने लगे—यह कौन महापुरुष है? तभी उन्हें ख्याल आया कि द्वारिका जल गई है, संभवतः यह वलभद्र हों। वलभद्र ने अपनी नामाङ्कित मुद्रिका देकर हलवाई के वहाँ से भोजन लिया, वे भोजन लेकर नगर से निकलने लगे। तभी राजा नगर के दरवाजे वन्द करवा कर सेना के साथ वलभद्र को मारने के लिए आया। वलदेव शत्रु सैन्य से घिर गये। उन्होंने उसी समय भोजन को एक तरफ रख कर सिंहनाद किया। सिंहनाद को सुनते ही श्रीकृष्ण दौड़ते हुए आये नगर का दरवाजा वन्द था। श्रीकृष्ण ने पैर से उस पर प्रहार किया, दरवाजा नीचे गिर पड़ा। नगर में आकर वे शत्रु दल पर टूट पड़े। शत्रु सेना पराजित हो गई। अच्छदंक श्रीकृष्ण के चरणों में गिरा। श्रीकृष्ण ने उसे फटकारते हुए कहा—अरे मूर्ख! हमारी भुजा का वल कहीं चला नहीं गया है। यह जानकर भी तूने यह मूर्खता क्यों की! जा, अब भी तू अपने राज्य में सुख पूर्वक रह। हम तेरे अपराध को क्षमा करते हैं।

कौशाम्बी के वन में :

वे नगर से बाहर निकल आये। उद्यान में जाकर उन्होंने भोजन किया। और वहां से दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। चलते-चलते कौशाम्बी नगरी के वन में आये।[५३]

---

५२. त्रिषष्टि० ८।११।१०७-१०८,

५३. त्रिषष्टि० ८।११।११६-१२२

जराकुमार का बाण लगना :

उस समय श्रीकृष्ण को प्यास लगी। बलराम ने कहा—भाई! वृक्ष के नीचे आनन्द से बैठो। मैं अभी पानी लेकर आता हूँ। बलभद्र पानी के लिए गए। श्रीकृष्ण एक पैर दूसरे पैर पर रखकर लेट गए। उन्हें थकावट के कारण नींद आ गई। उस समय व्याघ्र चर्म को धारण किया हुआ, जराकुमार हाथ में धनुष लेकर वहां आया। कृष्ण को सोया देखकर मृग के भ्रम से उसने श्रीकृष्ण के चरण में तीक्ष्ण बाण मारा। बाण लगते ही श्रीकृष्ण उठ बैठे। उन्होंने उसी समय आवाज दी—किसने मुझे बाण मारा है? आज दिन तक बिना नाम गोत्र बताए किसी ने प्रहार नहीं किया, बतलाओ तुम कौन हो।[२४]

इस प्रकार ललकार सुनते ही जराकुमार वृक्ष की ओट में खड़ा रह कर बोला—हरिवंश रूपी सागर में चन्द्र के समान दसवें दशार्ह वसुदेव मेरे पिता हैं, जरादेवी मेरी माता है। बलराम और श्रीकृष्ण मेरे भाई हैं। भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्यवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण की रक्षा करने हेतु मैं इस जंगल में आया हूँ। इस जंगल में रहते मुझे बारह वर्ष हो गए हैं। आज तक मैंने इस वन में किसी मानव को नहीं देखा। बताओ तुम कौन हो?[२५]

श्रीकृष्ण—बन्धुवर! यहां आओ, मैं तुम्हारा भाई श्रीकृष्ण हूँ। तुम्हारा बारह वर्ष का प्रवास निरर्थक गया।' यह सुनते ही जराकुमार मूर्छित होकर गिर पड़ा। सुध आने पर वह पश्चात्ताप करने लगा! क्या भगवान् अरिष्टनेमि की वाणी सत्य हो गई! क्या द्वारिका का दहन हो गया! मुझे धिक्कार कि मैंने भाई को बाण मारा।[२६]

---

२४. त्रिषष्टि० ८।११ १२३-१३२

२५. जराकुमारो नाम्नाहमनुजो रामकृष्णयोः।
कृष्णरक्षार्थमत्रागां श्रुत्वा श्रीनेमिनो वचः॥
अब्दानि द्वादशा भूवन्नद्येह वसतो मम।
मानुषं चेह नाद्राक्षं कस्त्वमेवं ब्रवीषि भोः॥
—त्रिषष्टि० ८।११।१३४-३५

२६. त्रिषष्टि० ८।११।१३६-१४७

श्रीकृष्ण ने कहा—भाई! शोक न करो। जो होगया है उसे कोई टाल नहीं सकता। यादवों में एक तुम्हीं अवशेष हो अतः चिरकाल तक जीओ। जब तक बलराम नहीं आते हैं तब तक तुम यहाँ से चले जाओ। बलराम तुम्हें देखेंगे तो जीवित नहीं छोड़ेंगे। तुम यहाँ से शीघ्र ही पाण्डवों के पास जाना। उन्हें मेरा यह कौस्तुभ रत्न देना और द्वारिका की तथा मेरी स्थिति कहना। मैंने उन्हें पूर्व देश से निष्कासित किया था, अतः उन्हें कहना कि मुझे क्षमा प्रदान करें। कृष्ण के आदेश से जराकुमार श्रीकृष्ण के पैर में से बाण निकालकर तथा कौस्तुभ रत्न लेकर चल दिया।[२७]

जराकुमार के जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण के पैर में अपार वेदना हुई। उन्होंने पूर्वाभिमुख होकर अंजलि जोड़कर कहा—"मैं पंच-परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ, भगवान् अरिष्टनेमि को नमस्कार करता हूँ। प्रद्युम्न आदिकुमार और रुक्मिणी आदि धन्य हैं जिन्होंने संयम मार्ग स्वीकार किया है।'

इस प्रकार श्रीकृष्ण कुछ समय तक विचार करते रहे फिर उनके मन में जोश आया और उन्होंने एक हजार वर्ष का आयुष्य पूर्ण किया।[२८]

श्रीकृष्ण वासुदेव सोलह वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे। छप्पन वर्ष माण्डलिक अवस्था में रहे और नौ सौ अट्ठाईस वर्ष अर्धचक्री अवस्था में रहे, इस प्रकार उनका कुल आयुष्य एक हजार वर्ष का हुआ।[२९]

---

२७. पदानुसारी रामस्त्वां यथा प्राप्नोति न द्रुतम्।
मद्वाचा क्षमयेः सर्वान् पाण्डवानपरानपि॥
मयैश्वर्यजुषा पूर्वं क्लेशितान् प्रेषणादिभिः।
एवं पुनः पुनः कृष्णेनोक्तः सोऽपि तथैव हि।
कृष्ण पादाच्छरं कृष्ट्वा जगामोपात्तकौस्तुभः॥
—त्रिषष्टि० ८।११।१५१-१५३

२८. त्रिषष्टि० ८।११।१५४-१६४

२९. कौमारत्वे षोडशाब्दानि विष्णोः षट्पञ्चाशन्मंडलित्वे गतानि।
सर्वाष्टाविंशा नवाद्ः शतानि विजयाद्युर्द्धचक्रित्वकाले॥
—त्रिषष्टि० ८।११-१६५

आचार्य जिनसेन के अनुसार कृष्ण नारायण की कुल अवस्था एक हजार वर्ष की थी। उसमें सोलह वर्ष कुमार अवस्था में, छप्पन वर्ष माण्डलिक अवस्था में, आठ वर्ष दिग्विजय में, और नौ सौ बीस वर्ष राज-अवस्था में व्यतीत हुए।[30]

श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ तिथि-संवत् :

वैदिक ग्रन्थ महाभारत और पुराणों में कुछ इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनसे श्रीकृष्ण के जीवन-सम्बन्धी कितने ही तिथि-संवत् निश्चित किये जा सकते हैं। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने महाभारत का अनुसंधान कर जिन तिथियों का निश्चय किया है, उनका उल्लेख उनकी मराठी पुस्तक 'श्रीकृष्ण चरित्र' में किया गया है। उसे आधार मानकर महाभारत और पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण के जीवन की कतिपय घटनाओं के तिथि-संवत् यहाँ पर दिये जा रहे हैं :—

(१) मथुरा में जन्म और गोकुल को प्रस्थान—संवत् ३१२८ विक्रम पूर्व की भाद्रपद कृष्णाष्टमी वृषभलग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षण योग, अर्धरात्रि।[31]

(२) गोकुल से वृन्दावन को प्रस्थान—आयु ४ वर्ष सं० ३१२४, विक्रम पूर्व

(३) कालिय नाग का दमन —आयु ८ वर्ष सं० ३१२० वि० पूर्व

(४) गोवर्धन-धारण —आयु १० ,, ,, ३११८ ,, ,,

(५) रास-लीला का आयोजन —आयु ११ ,, ,, ३११७ ,, ,,

---

३०. कुमारकालः कृष्णस्य षोडशाब्दानि षट्युता।
पञ्चाशन्मण्डलेशत्वं विजयोऽष्टाब्दकं स्फुटम्॥
शतानि नव विंशत्या कृष्णराजस्य सम्मितिः।
—हरिवंशपुराण० ६०।५३२-५३३, पृ० ७५६

३१. (क) भाद्रे बुधे कृष्ण पक्षे धात्रर्क्षे हर्षणे वृषे।
कर्णेऽष्टम्यामर्धरात्रे नक्षत्रेशमहोदये॥
अंधकारावृते काले देवक्यां शौरिमन्दिरे।
आविरासीद्धरिः साक्षादरण्यामध्वेऽग्निवत्॥
—गर्गसंहिता—१, ११-२३-२४

(९) मथुरा का राजकीय
जीवन और जरासंध से
१७ वार युद्ध —आयु १३ से ३० सं० ३०१५—३०९८ वि० पूर्व

(१०) द्वारिका को प्रस्थान और
रुक्मिणी से विवाह —आयु ३१ वर्ष सं० ३०९७ वि० पूर्व

(११) द्रौपदीस्वयंवर और
पांडवों से मिलन —आयु ४३ ,, ,, ३०८५ ,, ,,

(१२) अर्जुन-सुभद्रा विवाह —आयु ६५ ,, ,, ३०६३ ,, ,,

(१३) अभिमन्यु-जन्म —आयु ६७ ,, ,, ३०६१ ,, ,,

(१४) युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ ,, ,, ३०६० ,, ,,

(१५) महाभारत का युद्ध —आयु ८३ ,, ,, ३०४५ ,, ,,
की मार्गशीर्ष शुक्ल १४

(१६) कलियुग का आरम्भ
और परीक्षित का जन्म —आयु ८४ वर्ष सं० ३०४४ वि० पूर्व
की चैत्र शुक्ला १

(१७) श्रीकृष्ण का तिरोधान
और द्वारिका का अन्त—आयु १२० वर्ष[1] सं० ३००८ वि० पूर्व

(१८) परीक्षित का राज-तिलक
और पाण्डवों का हिमालय प्रस्थान —सं० ३००७ वि० पूर्व

कृष्ण का अन्तिम काल और यादवों की दुर्दशा :

वैदिक परम्परा की दृष्टि से महाभारत के अनन्तर युधिष्ठिर को राज्यासीन कर कृष्ण द्वारिका चले गये। उस महायुद्ध का कुफल द्वारिका को भी भोगना पड़ा था। वहाँ के अनेक वीर, और गुणी पुरुषों की उस युद्ध में मृत्यु हो चुकी थी। जो यादव द्वारिका में रहे थे उनमें से अधिकांश दुर्व्यसनी और अनाचारी थे। कृष्ण

---

१ वैदिक दृष्टि से श्रीकृष्ण १२० वर्ष की अवस्था में परमधाम को गये। महाभारत के अनुसार उस समय उनके पिता वसुदेव जीवित थे। श्रीकृष्ण वसुदेव के ८ वें पुत्र थे। यदि कृष्ण जन्म के समय वसुदेव की आयु ४० मानी जाय, तो श्रीकृष्ण के तिरोधान के समय वसुदेव की आयु १६० वर्ष होती है।
—व्रज का सांस्कृतिक इतिहास, द्वि-खण्ड पृ० ३१, प्रभुदयाल मीतल

उस समय वे अपना अरुण कमल सदृश वाम चरण दाहिनी जंघा पर रखकर विराजमान थे। उस समय जरा नामक व्याध ने जिसने (मछली के पेट से प्राप्त हुए) मूसल के बने हुए टुकड़े से अपने बाण की गांसी बनाई थी। मृग के मुख के सदृश आकार वाले श्रीकृष्ण के चरण को दूर से ही मृग समझकर उसी बाण से वेध दिया।[३७]

पास आने पर श्रीकृष्ण को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा,[३८] "हे मधुसूदन! मुझ पापी से अनजान में अपराध हो गया है। हे उत्तम श्लोक! हे अनघ! मैं आपका अपराधी हूँ, कृपा करके क्षमा करें।"

कृष्ण ने कहा—अरे जरा! तू डर मत, खड़ा हो, अब तू मेरी आज्ञा से पुण्यवानों को प्राप्त स्वर्ग को जा।[३९] श्रीकृष्ण का आदेश पाकर वह व्याध स्वर्ग चला गया।[४०] उसके पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणचिन्हों को खोजता हुआ सारथि दारुक वहाँ आया,[४१] सारथि के देखते ही देखते गरुड़चिन्ह वाला वह रथ घोड़ों सहित आकाश में उड़ गया और उसके पीछे दिव्य आयुध भी चले गये। यह देख सारथि विस्मित हुआ।[४२] श्रीकृष्ण ने कहा—हे सूत! अब तुम द्वारिकापुरी को जाओ और हमारे बन्धु-बान्धवों को, यादवों के पार-

---

३६. रामनिर्याणमालोक्य, भगवान् देवकीसुतः।
निषसाद धरोपस्थे तूष्णी मासाद्य पिप्पलम्॥
बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया।
दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः॥
—श्रीमद्भागवत ११।३०।२७-२८

३७. मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया॥
—श्रीमद्भागवत ११।३०।३३

३८. श्रीमद्भागवत ११।३०।३४

३९. श्रीमद्भागवत ११।३०।३९

४०. ,, ,, ११।३०।४०

४१. ,, ,, ११।३०।४१ से ४३

जब अर्जुन यदुवंशियों के स्त्री वचचों को लेकर हस्तिनापुर की ओर जा रहा था, तब मार्ग में पंचनद प्रदेश के आभीरों ने उन पर अकस्मात् आक्रमण किया। उस समय अर्जुन इतना शोक-संतप्त और हतसंजक था कि गांडीव के रहते हुए भी वह उन जंगली लुटेरों का सफलता पूर्वक सामना नहीं कर सका। फलतः वे यादवों की संपत्ति और स्त्रियों को लूटकर ले गए। शेष को अर्जुन ने दक्षिण पंजाब और इन्द्रप्रस्थ में बसा दिया।[८४]

●●

[illegible]

वहुत ऊपर, उठी हुई थी। संसार के भोग-विलास, जो मानव-मन को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और जिनसे छुटकारा पाने के लिए कठोर आत्मसंयम और आत्मदमन का आश्रय लेना पड़ता है, फिर भी पूरी तरह जीते नहीं जाते, वे भगवान् अरिष्टनेमि की आत्मा को आकृष्ट नहीं कर सके थे। इन्द्रिय विषयों का सेवन और उसी में जीवन को समाप्त कर देना उन्हें निरी मूढ़ता प्रतीत होती थी। नारी-शक्ति से वे कभी पराजित नहीं हुए। ललनाओं का लास्य, उनके हाव-भाव और विलास उनके विरक्तिमय अन्तस्तल को स्पर्श तक नहीं कर सके। श्रीकृष्ण की रानियां अपने देवर नेमिनाथ के चित्त में नारी के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार की शृंगारमय चेष्टाएँ करती हैं। उन्हें देखकर और संसारी जीवों की मोहदशा का विचार करके नेमिनाथ के मुख पर हल्का-सा स्मित उत्पन्न होता है। रानियां उसे देखकर अपने प्रयास की सफलता का अनुमान करती हैं ! नेमिनाथ का हृदय अणुमात्र भी विचलित नहीं होता।

कठिन है। इस आत्मोत्सर्ग ने अभक्ष्य भक्षण करने वाले और अपने क्षणिक सुख के लिए दूसरों के जीवन के साथ खिलवाड़ करने वाले क्षत्रियों की आंखें खोल दीं, उन्हें आत्मालोचन के लिए विवश कर दिया और उन्हें अपने कर्त्तव्य एवं दायित्व का स्मरण करा दिया। इस प्रकार परम्परागत अहिंसा के शिथिल एवं विस्मृत बने संस्कारों को पुनः पुष्ट, जागृत और सजीव कर दिया और अहिंसा की संकीर्ण बनी परिधि को विशालता प्रदान की—पशुओं और पक्षियों को भी अहिंसा की परिधि में समाहित कर दिया। जगत् के लिए भगवान् का यह उद्बोधन एक अपूर्व वरदान था और वह आज तक भी भुलाया नहीं जा सका है।

सर्वसाधारण में फैली हुई किसी बुराई को अपना पाप मानकर, उसके प्रतीकार के लिए कठोर से कठोर प्रायश्चित्त करना और ऐसा करके सर्वसाधारण के हृदय में परिवर्त्तन लाना एक ऐसी अमोघ विधि है जो अरिष्टनेमि के जमाने में सफल हुई और राष्ट्रपिता गांधी के समय में भी कारगर सिद्ध हुई। इस दृष्टि से भी भगवान् अरिष्टनेमि जगत् के लिए सदैव स्मरणीय हैं, आदर्श हैं और उनके जीवन से युग-युग के अग्रणी जन प्रेरणा लेते रहेंगे।

दीक्षित होने के पश्चात् तो वे पूर्ण अहिंसा के ही प्रतीक बन जाते हैं और अपनी उत्कृष्ट साधना द्वारा कैवल्य प्राप्त करके, संसार को श्रेयोमार्ग प्रदर्शित करके शाश्वत सिद्धि प्राप्त करते हैं।

वासुदेव श्रीकृष्ण का कार्यक्षेत्र भिन्न हैं। अरिष्टनेमि आध्यात्मिक जगत् के सूर्य हैं तो श्रीकृष्ण को राजनीति-क्षेत्र का सूर्य कहा जा सकता है। तात्कालिक परिस्थितियों का आकलन करने से विदित होता है कि श्रीकृष्ण के समय में राजकीय स्थिति बड़ी बेढंगी थी। क्षत्रिय नृपतिगण प्रजारक्षण के अपने सामाजिक दायित्व को विस्मृत कर अधिकार-मद से मतवाले बन गए थे। एक ओर कंस के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। दूसरी ओर जरासन्ध अपने बल पराक्रम के अभिमान के वशीभूत होकर नीति-अनीति के विचार को तिलांजलि दे बैठा था। तीसरी ओर शिशुपाल अपनी प्रभुता से मदान्ध हो रहा था तो चौथी ओर दुर्योधन अपने सामने सब को तृणवत् समझकर न्याय का उल्लंघन कर रहा था। इस प्रकार भारतवर्ष में सर्वत्र अनीति का साम्राज्य फैला हुआ था। ऐसी विषम परिस्थितियों में

रिपुमदमर्दन श्रीकृष्ण कार्यक्षेत्र में कूदते हैं, अपने अनुपम साहस, असाधारण विक्रम, विलक्षण बुद्धिकौशल एवं अतुल राजनीति-पटुता के बल कर आसुरी शक्तियों का दमन करते हैं। उनके प्रयासों से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि अन्याय सदैव न्याय पर विजयी नहीं रह सकता। अन्त में तो न्याय की ही विजय होती है और न्याय-नीति की प्रतिष्ठा में ही विश्वशान्ति का मूल निहित है।

श्रीकृष्ण लोक-धर्म के संस्थापक हैं। इसी धर्म की नींव पर अध्यात्मधर्म का महल निर्मित होता है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण का स्थान भारतीय संस्कृति के इतिहास में अद्वितीय कहा जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में उनका चमकता हुआ विशिष्ट व्यक्तित्व अगर आज भी श्रद्धास्पद बना हुआ है तो यह स्वाभाविक है। उनके व्यक्तित्व में एकांगिता नहीं, सर्वांगीणता है। इसी व्यक्तित्व के कारण वैदिक परम्परा के अनुसार वे ईश्वर के पूर्णावतार कहलाए। जैन-साहित्य में भी उनकी महिमा का विस्तार से वर्णन हुआ और उन्हें भावी तीर्थंकर का सर्वोच्च पद प्रदान किया गया।

श्रीकृष्ण अपने युग में भी असाधारण पुरुष माने जाते थे। तात्कालिक राजाओं में तथा जनसाधारण में उनका बहुत मान था। उन्हें जो महत्ता और गरिमा अपने जीवन में प्राप्त हुई उससे सहज ही उनके चरित्र की उज्ज्वलता का अनुमान किया जा सकता है। भारतवर्ष में सदैव सदाचार को महत्त्व दिया गया है। सत्ता और विद्वत्ता की भी प्रतिष्ठा है पर सदाचार की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। सदाचार विहीन मनुष्य कितना ही विद्वान् अथवा सत्तासंपन्न क्यों न हो, हमारे देश में शिष्टसमुदाय द्वारा मान्य नहीं होता।

हमें खेद के साथ यह उल्लेख करना पड़ता है कि ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण एवं स्कंदपुराण आदि में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ कथित लीलाओं-क्रीड़ाओं का जो वर्णन किया गया है उसका श्रीकृष्ण के उज्ज्वल जीवन के साथ कोई सामंजस्य नहीं है। किस गूढ़ उद्देश्य से वह वर्णन किया गया है, समझ में नहीं आता। हमारा निश्चित मत है कि ऐसे सब वर्णन पीछे के हैं और श्रीकृष्ण जैसे महान् पुरुष के जीवन-चरित्र की ओट में अपने स्वैराचार का पोषण करने के लिए वे पुराणों में सम्मिलित कर दिए गए हैं। पश्चाद्वर्त्ती अनेक

- भौगोलिक परिचय
- हरिवंश
- वंश-परिचय
- पारिभाषिक शब्द-कोष
- पुस्तक में प्रयुक्त ग्रन्थ सूची
- लेखक की कृतियां

लवणसमुद्र है और लवणसमुद्र से दुगुना विस्तृत धातकीखण्ड है। इस प्रकार द्वीप और समुद्र एक दूसरे से दूने होते चले गये हैं।[४]

इसमें शाश्वत जम्बूवृक्ष होने के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा।[५] जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु नामक पर्वत है[६] जो एक लाख योजन ऊंचा है।[७]

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है।[८] इसकी परिधि ३,१६,२२७ योजन, ३ कोस १२८ धनुष, १३½ अंगुल, ५ यव और १ यूका है।[९] इसका क्षेत्रफल ७, ९०, ५६, ९४, १५० योजन, १॥ कोस, १५ धनुष और २॥ हाथ है।[१०]

श्रीमद्भागवत में सात द्वीपों का वर्णन है। उसमें जम्बूद्वीप प्रथम है।[११]

बौद्ध दृष्टि से चार महाद्वीप हैं, उन चारों के केन्द्र में सुमेरु है। सुमेरु के पूर्व में पुब्ब विदेह[१२] पश्चिम में अपरगोयान, अथवा अपर गोदान[१३] उत्तर में उत्तर कुरु[१४] और दक्षिण में जम्बूद्वीप है।[१५]

---

४. वहीं० २८

५. वहीं० १५।३१-३२

६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार ४ सू० १०३, पत्र ३५९-३६०

७ वहीं० ४।११३, पत्र ३५६।२

८. (क) समवायाङ्ग सूत्र १२४, पत्र २०७।२, प्र० जैन धर्म प्रचारक सभा भावनगर
   (ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार १।१०।६७
   (ग) हरिवंशपुराण ५।४-५

९. (क) लोक प्रकाश १५।३४-३५
   (ख) हरिवंशपुराण ५।४-५

१०. (क) लोक प्रकाश १५।३६-३७
   (ख) हरिवंशपुराण ५।६-७

११. श्रीमद्भागवत प्र० खण्ड, स्कंध ५, अ० १, पृ० ५४६

१२. डिक्सनेरी ऑव पाली प्रामर नेम्स, खण्ड २, पृ० २३६

१३. वहीं० खण्ड १, पृ० ११७

१४. वहीं० खण्ड १, पृ० ३५५

१५. वहीं० खण्ड १, पृ० ९४१

बौद्ध परम्परा के अनुसार यह जम्बूद्वीप दस हजार योजन बड़ा है।[१६] इसमें चार हजार योजन जल से भरा होने के कारण समुद्र कहा जाता है और तीन हजार योजन में मानव रहते हैं। शेष तीन हजार योजन में चौरासी हजार कूटों (चोटियों) से सुशोभित, चारों ओर बहती ५०० नदियों से विचित्र, ५०० योजन ऊंचा हिमवान पर्वत है।[१७]

उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट है कि जिसे हम भारत के नाम से जानते हैं वही बौद्धों में जम्बूद्वीप के नाम से विख्यात है।[१८]

भरतक्षेत्र :

जम्बूद्वीप का दक्षिणी छोर का भूखण्ड भरतक्षेत्र के नाम से विश्रुत है। यह अर्धचन्द्राकार है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार इसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में लवण समुद्र है।[१९] उत्तर दिशा में चूलहिमवंत पर्वत है।[२०] उत्तर से दक्षिण तक भरतक्षेत्र की लम्बाई ५२६ योजन ६ कला है और पूर्व से पश्चिम की लम्बाई १४४७१ योजन और कुछ कम ६ कला है।[२१] इसका क्षेत्रफल ५३,८०,६८१ योजन, १७ कला और १७ विकला है।[२२]

---

१६. वहीं० खण्ड १, पृ० ६४१

१७ वहीं० खण्ड २, पृ० १३२५-१३२६

१८. (क) इण्डिया ऐज डेस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स आव बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म पृ० १, विमलचरण लॉ लिखित,

(ख) जातक प्रथम खण्ड, पृ० २८२, ईशानचन्द्र घोष

(ग) भारतीय इतिहास की रूपरेखा भा० १, पृ० ४, लेखक—जयचन्द्र विद्यालंकार

(घ) पाली इंग्लिश डिक्शनरी पृ० ११२, टी० डब्ल्यू रीस डेविस तथा विलियम स्टेड

(ङ) सुत्तनिपात की भूमिका—धर्मरक्षित पृ० १

(च) जातक—मानचित्र भदन्त आनन्द कौशल्यायन

१९. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सटीक, वक्षस्कार १, सूत्र १०, पृ० ६५।२

२०. वहीं० १।१०।६५-२

भरतक्षेत्र की सीमा में उत्तर में चूलहिमवंत नामक पर्वत से पूर्व में गंगा और पश्चिम में सिन्धु नामक नदियां बहती हैं। भरतक्षेत्र के मध्य भाग में ५० योजन विस्तारवाला वैताढ्य पर्वत है।[२३] जिसके पूर्व और पश्चिम में लवणसमुद्र है। इस वैताढ्य से भरत क्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया है[२४] जिन्हें उत्तर भरत और दक्षिण भरत कहते हैं। जो गंगा और सिन्धु नदियां चूलहिमवंतपर्वत से निकलती हैं वे वैताढ्य पर्वत में से होकर लवणसमुद्र में गिरती हैं। इस प्रकार इन नदियों के कारण, उत्तर भरत खण्ड तीन भागों में और दक्षिण भरत खण्ड भी तीन भागों में विभक्त होता है।[२५] इन छह खण्डों में उत्तरार्द्ध के तीन खण्ड अनार्य कहे जाते हैं। दक्षिण के अगल-बगल के खण्डों में भी अनार्य रहते हैं। जो मध्यखण्ड है उसमें २५॥ देश आर्य माने गये हैं।[२६] उत्तरार्द्ध भरत उत्तर से दक्षिण तक २३८ योजन ३ कला है और दक्षिणार्द्ध भरत भी २३८ योजन ३ कला है।

जिनसेन के अनुसार भरत क्षेत्र में सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, अश्मक, कुरु, काशी, कलिंग, अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोंकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाटक, कोशल, चोल, केरल, दास, अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह सिन्धु, गान्धार, यवन, चेदि, पल्लव, काम्बोज आरट्ट, वाल्हीक, तुरुष्क, शक, और केकय आदि देशों की रचना मानी गई है।[२७]

बौद्ध साहित्य में अंग, मगध, काशी, कौशल, वज्ज, मल्ल, चेति,

---

२१. लोकप्रकाश सर्ग १६ श्लोक ३०-३१

२२. लोकप्रकाश सर्ग १६, श्लोक ३३-३४

२३. वहीं० १६।४८

२४. वहीं० १६।३५

२५. वहीं० १६।३६

२६. (क) वहीं० १६, श्लोक ४४

(ख) बृहत्कल्पभाष्य १, ३२६३ वृत्ति, तथा १, ३२७५-३२८९

आदिपुराण १६।१५२-१५६

वत्स, कुरु, पंचाल मत्स्य, शूरसेन, अश्मक, अवन्ती, गंधार, और कम्बोज इन सोलह जनपदों के नाम मिलते हैं।[२८]

सौराष्ट्र :

जैन साहित्य में साढ़े पच्चीस आर्य देशों का वर्णन है। उनमें सौराष्ट्र का भी नाम है।[२९]

सौराष्ट्र के नामकरण के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मत भेद हैं। किसी ने सूर्यराष्ट्र, किसी ने सुराष्ट्र, किसी ने सौराष्ट्र और किसी ने सुरराष्ट्र कहा है। एक मान्यता के अनुसार सुरा नामक जाति के निवास के कारण यह प्रदेश सुराराष्ट्र-सौराष्ट्र कहलाता है। पर प्राचीन ग्रन्थों में उसका शुद्ध व स्पष्ट नाम सौराष्ट्र है।[30]

रामायण,[31] महाभारत[32] और जैनग्रन्थों में सौराष्ट्र का उल्लेख है।[33] ईस्वी पूर्व छट्ठी शताब्दी में हुए आचार्य पाणिनीय ने[34] व सूत्रकार बौद्धायन ने,[35] चौथी सदी में हुए कौटिल्य ने[36]

---

२८. अंगुत्तरनिकाय, पालिटैक्स्ट सोसायटी संस्करण : जिल्द १, पृ० २१३, जिल्द ४, पृ० २५२

२९. (क) बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति १।३२६३
(ख) प्रज्ञापना १।६६, पृ० १७३
(ग) प्रवचन सारोद्धार पृ० ४४६..

३०. (क) दरबार अनकचन्द्र भायावालानो लेख
(ख सौराष्ट्र नो इतिहास, ले० शंभुप्रसाद हरप्रसाद देसाई, पृ० १

३१. "सौराष्ट्रन्सह बालहीकान् भद्राभीहांस्तथैव च"
—रामायण किष्किंधा काण्ड ४२।६

३२. महाभारत

३३. बृहत्कल्प, भाग ३, पृ० ६१२-६१४

३४. सौराष्ट्री का नारी, 'कुन्ति सुराष्ट्रा', चिन्तिसुराष्ट्रा।
—कार्तकोजनपदादचश्च-का गणपाठ ६।२।३७

३५. बौद्धायन सूत्र १-१-२६ ऋग्वेद में (१०।६१।८) दक्षिणापथ का उल्लेख है। उस समय आर्य दक्षिण तक पहुंचे थे, एतदर्थ सौराष्ट्र को दक्षिण में गिना है।

३६. कौटिल्य अर्थशास्त्र

सौराष्ट्र का उल्लेख किया है। तथा देवलस्मृति में[३७] तथा जातककथा में भी सौराष्ट्र का वर्णन है।[३८]

महाक्षत्रप रुद्रदामा के १३० ई० सन् और १५० के बीच उत्कीर्ण जूनागढ़ के पर्वतीय लेख में सौराष्ट्र का उल्लेख है।[३९]

ई० सन् १५० एवं ई० सन् १६१ के मध्य में टोलेमी नामक परदेशी प्रवासी ने लिखा है रुद्रदामन के महाराज्य में सौराष्ट्र का अधिकारी पह्लव सुविख्यात था।[४०]

अेरीयन नामक विदेशी लेखक ई० सन् पूर्व तृतीय सदी में लिखता है कि सौराष्ट्र में जनतंत्र था। ई० सन् पूर्व १४८ में मीनाण्डर ने भारत में जो राज्य जीत लिये उनमें साराओस्टोस—वा सौराष्ट्र भी था।[४१]

सौराष्ट्र की गणना महाराष्ट्र आंध्र, कुडुक्क के साथ की गई है[४२] जहाँ सम्प्रति ने अपने अनुचरों को भेजकर जैन धर्म का प्रचार किया था।[४३] कालकाचार्य पारसकूल (ईरान) से ९६ शाहों को लेकर आये थे, इसलिए इस देश को ९६ मंडलों में विभक्त कर दिया गया है।[४४] सुराष्ट्र व्यापार का बड़ा केन्द्र था, व्यापारी दूर-दूर से यहां पर आया करते थे।[४५]

रैवतक :

पार्जिटर रैवतक की पहचान काठियावाड के पश्चिम भाग में बरदा की पहाड़ी से करते हैं।[४६] ज्ञातासूत्र के अनुसार द्वारिका के

---

३७. सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र

३८. बावेरु जातक में सौराष्ट्र के जलयात्री बेबीलोन गये थे, वहां उनसे पूछा—कहां से आ रहे हो ? उन्होंने उत्तर में कहा—'जहां से सूर्य उदय होता है उस सौराष्ट्र से आ रहे हैं।'

३९. सौराष्ट्र नो इतिहास—ले० शंभुप्रसाद हरप्रसाद देसाई पृ० २, प्र० सोरठ शिक्षण अने संस्कृति संघ, जूनागढ

४०. टोलेमी—अेन्श्यन्ट इण्डिया अेज डीस्क्राईब्ड बाई टोलेमी मेकेक्रिन्डल

४१. अेरीयन—चिनोक आवृत्ति

४२. दरबार श्री अनकचन्द्र भायावालानो लेख

४३. बृहत्कल्पभाष्य १।३२८९

उत्तर-पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था।[४७] अन्तकृत्दशा में भी यही वर्णन है।[४८] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के अनुसार द्वारिका के समीप पूर्व में रैवतक गिरि, दक्षिण में माल्यवान शैल, पश्चिम में सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि हैं।[४९] महाभारत की दृष्टि से रैवतक कुशस्थली के सन्निकट था।[५०] वैदिक हरिवंशपुराण के अनुसार यादव मथुरा छोड़कर सिन्धु में गये और समुद्र किनारे रैवतक पर्वत से न अतिदूर और न अधिक निकट द्वारका बसाई।[५१] आगम साहित्य में रैवतक पर्वत का सर्वथा स्वाभाविक वर्णन मिलता है।[५२]

भगवान् अरिष्टनेमि अभिनिष्क्रमण के लिए निकले, वे देव और मनुष्यों से परिवृत शिविका-रत्न में आरूढ़ हुए और रैवतक पर्वत पर अवस्थित हुए।[५३] राजीमती भी संयम लेकर द्वारिका से रैवतक पर्वत पर जा रही थी। बीच में वह वर्षा से भीग गई और कपड़े सुखाने के लिए वहीं एक गुफा में ठहरी,[५४] जिसकी पहचान आज भी

---

४४. वहीं० १।६४३

४५. दशवैकालिक चूर्णि पृ० ४०

४६. हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र जिल्द ४, पृ० ७९४-९५

४७. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सू० ५८

४८. अन्तकृतदशांग

४९. तस्याः पुरो रैवतकोऽपाच्यामासीत्तु माल्यवान्।
सौमनसोऽद्रिः प्रतीच्यामुदीच्यां गंधमादनः॥
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५ श्लोक ४१८

५०. कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम्।
—महाभारत सभापर्व, अ० १४, श्लोक ५०

५१. हरिवंशपुराण २।५५

५२. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

५३. देव-मणुस्स-परिवुडो, सीयारयणं तओ समारूढो।
निक्खमिय वारगाओ, रेवयम्मि ट्ठिओ भगवं॥
—उत्तराध्ययन २२।२२

५४. गिरिं रेवययं जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा।
वासन्ते अन्धयारंमि अन्तो लयणस्स सा ठिया॥

राजीमती गुफा से की जाती है।[५५] रैवतक पर्वत सौराष्ट्र में आज भी विद्यमान है। संभव है प्राचीन द्वारिका इसी की तलहटी में बसी हो।

रैवतक पर्वत का नाम ऊर्जयन्त भी है।[५६] रुद्रदाम और स्कंधगुप्त के गिरनार-शिला लेखों में इसका उल्लेख है। यहां पर एक नन्दन वन था, जिसमें सुरप्रिय यक्ष का यक्षायतन था। यह पर्वत अनेक पक्षियों एवं लताओं से सुशोभित था। यहां पर पानी के झरने भी बहा करते थे[५७] और प्रतिवर्ष हजारों लोग संखडि (भोज, जीमनवार) करने के लिए एकत्रित होते थे। यहां भगवान् अरिष्टनेमि ने निर्वाण प्राप्त किया था।[५८]

दिगम्बर परम्परा के अनुसार रैवतक पर्वत की चन्द्रगुफा में आचार्य धरसेन ने तप किया था, और यहीं पर भूतवलि और पुष्पदन्त आचार्यों ने अवशिष्ट श्रुतज्ञान को लिपिवद्ध करने का आदेश दिया था।[५९]

महाभारत में पाण्डवों और यादवों का रैवतक पर युद्ध होने का वर्णन आया है।[६०]

जैन ग्रन्थों में रैवतक, उज्जयंत, उज्ज्वल, गिरिणाल, और गिरनार आदि नाम इस पर्वत के आये हैं। महाभारत में भी इस पर्वत का दूसरा नाम उज्जयंत आया है।[६१]

---

५५. विविध तीर्थकल्प ३।१६

५६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४७२

५७. वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति १।२६२२

५८. (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३०७

(ख) कल्पसूत्र ६।१७४, पृ० १८२

(ग) ज्ञातृधर्म कथा ५, पृ० ६८

(घ) अन्तकृतदशा ५, पृ० २८

(ङ) उत्तराध्ययन टीका २२, पृ० २८०

५६. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४७३

६०. आदिपुराण में भारत पृ० १०६

६१. भ० महावीर नी धर्मकथाओ पृ० २१६, पं० वेचरदासजी

कच्छ की खाड़ी में एक छोटा-सा टापू है। वहां एक दूसरी द्वारका है जो 'बेट द्वारका' कही जाती है। माना जाता है कि यहां पर श्रीकृष्ण परिभ्रमणार्थ आते थे। द्वारका और बेट द्वारका दोनों ही स्थलों में राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के मन्दिर हैं।[६८]

(६) बॉम्बे गेजेटीअर में कितने ही विद्वानों ने द्वारका की अवस्थिति पंजाब में मानने की संभावना की है।[६९]

(७) डॉ० अनन्तसदाशिव अल्तेकर ने लिखा है—प्राचीन द्वारका समुद्र में डूब गई, अतः द्वारका की अवस्थिति का निर्णय करना संशयास्पद है।[७०]

(८) पुराणों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि महाराजा रैवत ने समुद्र के मध्य कुशस्थली नगरी बसाई थी। वह आनर्त जनपद में थी। वही कुशस्थली श्रीकृष्ण के समय द्वारका या 'द्वारवती' के नाम से पहचानी जाने लगी।[७१]

(९) ज्ञाताधर्मकथा व अन्तगडदसाओ के अनुसार द्वारका सौराष्ट्र में थी।[७२] वह पूर्व-पश्चिम में बारह योजन लम्बी, और उत्तर-दक्षिण में नव योजन विस्तीर्ण थी। वह स्वयं कुबेर द्वारा निर्मित, सोने के प्राकार वाली थी, जिस पर पांच वर्णों के नाना मणियों से सुसज्जित कपिशीर्षक—कंगूरे थे। वह बड़ी सुरम्य, अलकापुरी—तुल्य और प्रत्यक्ष देवलोक-सदृश थी। वह प्रासादिक, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप थी। उसके उत्तर पूर्व में रैवतक नामक पर्वत था। उसके पास समस्त ऋतुओं में फल-फूलों से लदा रहने वाला नन्दनवन नामक सुरम्य उद्यान था। उस उद्यान में सुरप्रिय यक्षायतन था। उस द्वारका में श्रीकृष्ण वासुदेव अपने सम्पूर्ण राज-परिवार के साथ रहते थे।[७३]

---

६९. बॉम्बे गेजेटीअर भाग १ पार्ट १, पृ० ११ का टिप्पण १

७०. इण्डियन एन्टिक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट पृ० २५

७१. वायुपुराण ६।२७

७२. (क) ज्ञाताधर्म कथा १।१६, सूत्र १२३
    (ख) अन्तगडदशाओ

७३. ज्ञाताधर्म कथा १।५, सूत्र ५८

बृहत्कल्प के अनुसार द्वारका के चारों ओर पत्थर का प्राकार था ।[७४]

वण्हिदसाओ में भी यही द्वारका का वर्णन मिलता है ।[७५]

आचार्य हेमचन्द्र ने द्वारका का वर्णन करते हुए लिखा है—वह बारह योजन आयाम वाली और नव योजन विस्तृत थी । वह रत्नमयी थी । उसके आसपास १८ हाथ ऊंचा, ६ हाथ भूमिगत और १२ हाथ चौड़ा सब ओर से खाई से घिरा हुआ किला था । चारों दिशाओं में अनेक प्रासाद और किले थे । राम-कृष्ण के प्रासाद के पास प्रभासा नामक सभा थी । उसके समीप पूर्व में रैवतक गिरि, दक्षिण में माल्यवान शैल, पश्चिम में सौमनस पर्वत और उत्तर में गंधमादन गिरि थे ।[७६]

आचार्य हेमचन्द्र,[७७] आचार्य शीलाङ्क,[७८] देवप्रभसूरि,[७९] आचार्य जिनसेन,[८०] आचार्य गुणभद्र[८१] आदि श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रन्थ-

---

७४. बृहत्कल्प भाग २, पृ० २५१

७५. वण्हिदशाओ

७६. शक्राज्ञया वैश्रवणश्चक्रे रत्नमयीं पुरीम् ।
द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तृताम् ॥३९९।
तुंगमष्टादशहस्तान्नवहस्तांश्च भूगतम् ।
विस्तीर्णं द्वादशहस्तांश्चक्रे वप्रं सुखातिकम् ॥४००।
—त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, पृ० ९२

७७. त्रिषष्टि० पर्व ८, सर्ग ५, पृ० ९२

७८. चउप्पन्नमहापुरिस चरियं पृ०

७९. पाण्डव चरित्र

८०. सद्यो द्वारवतीं चक्रे कुबेरः परमां पुरीम् ।
नगरी द्वादशायामा, नवयोजनविस्तृतिः ।
वज्रप्राकार-वलया, समुद्र-परिखावृता ॥
—हरिवंशपुराण ४१।१८-१९

८१. अश्वाकृतिधरं देवं समारुह्य पयोनिधेः ।
गच्छतस्तेऽभवेन्मध्ये, पुरं द्वादशयोजनम् ॥ २० ।
इत्युक्तो नैगमाख्येन स्वरेण मधुसूदनः ।

कारों ने तथा वैदिक हरिवंशपुराण,[८२] विष्णुपुराण[८३] और श्रीमद्-भागवत[८४] आदि में द्वारका को समुद्र के किनारे माना है और कितने ही ग्रन्थकारों ने समुद्र से बारह योजन धरती लेकर द्वारका का निर्माण किया बताया है। सुस्थित देव को श्रीकृष्ण ने कहा—"हे देव! पूर्व के वासुदेव की द्वारका नामक जो नगरी यहां थी वह तुम ने जल में डुबा दी है, एतदर्थ मेरे निवास के लिए उसी नगरी का स्थान मुझे बताओ।[A] इससे स्पष्ट है कि द्वारका के पास समुद्र था। कृष्ण के पूर्व जो द्वारका थी वह समुद्र में डूबी हुई थी उसी स्थान पर श्रीकृष्ण के लिए द्वारका का निर्माण किया गया था। संभव है द्वारका के एक ओर समुद्र हो और दूसरी ओर रैवतक आदि पर्वत हों।

महाभारत में श्रीकृष्ण ने द्वारकागमन के बारे में युधिष्ठिर से कहा—मथुरा को छोड़कर हम कुशस्थली नामक नगरी में आये जो रैवतक पर्वत से उपशोभित थी। वहां दुर्गम दुर्ग का निर्माण किया, अधिक द्वारों वाली होने के कारण द्वारवती अथवा द्वारका कहलाई।[८५]

चक्रे तथैव निश्चित्य सति पुण्ये न कः सखा ॥ २१।
द्वेधा भेदमयाद् वार्धि र्भयादिव हरे रयात् ॥

—उत्तरपुराण ७१।२०-२३, पृ० ३७६

८२. हरिवंशपुराण २।५४

८३. विष्णुपुराण ५।२३।१३

८४. इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादश-योजनम्।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥

—श्रीमद्भागवत १०, अ० ५०।५०

A. ता जह पुव्विं दिन्नं ठाणं नयरीए आइमचउण्हं।
तुमए तिविट्ठपमुहाणं वासुदेवाणं सिंधुतडे ॥

—भव-भावना २५३७

८५. कुशस्थलीं पुरीं रम्यां रैवतेनोपशोभिताम्।
ततो निवेशं तस्यां च कृतवन्तो वयं नृप! ॥ ५०।
तथैव दुर्ग-संस्कारं देवैरपि दुरासदम्।
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णि महारथाः ॥ ५१।

महाभारत जन पर्व की टीका में नीलकंठ ने कुशावर्त का अर्थ द्वारका किया है।[८६]

व्रज का सांस्कृतिक इतिहास में प्रभुदयाल मित्तल ने लिखा है[८७]—शूरसेन जनपद से यादवों के आ जाने के कारण द्वारका के उस छोटे से राज्य की बड़ी उन्नति हुई थी। वहां पर दुर्भेद्य दुर्ग और विशाल नगर का निर्माण कराया गया और उसे अंधक-वृष्णि संघ के एक शक्तिशाली यादव राज्य के रूप में संगठित किया गया। भारत के समुद्री तट का वह सुदृढ़ राज्य विदेशी अनार्यों के आक्रमण के लिए देश का एक सजग प्रहरी भी बन गया था। गुजराती भाषा में 'द्वार' का अर्थ बंदरगाह है। इस प्रकार द्वारका या द्वारवत्ती का अर्थ हुआ 'बंदरगाहों की नगरी।' उन बंदरगाहों से यादवों ने सुदूर—समुद्र की यात्रा कर विपुल सम्पत्ति अर्जित की थी।.... ....हरिवंश (२-५८-६७) में लिखा है—द्वारिका में निर्धन, भाग्यहीन, निर्बल तन और मलिन मन का कोई भी व्यक्ति नहीं था।[८८]

श्वेताम्बर तेरापंथी जैन समाज के विद्वान् मुनि रूपचन्द्रजी ने 'जैन साहित्य में द्वारका'[८९] शीर्षक नामक लेख में लिखा है—"घट जातक के उल्लेख को छोड़कर आगम साहित्य तथा महाभारत में द्वारका का रैवतक पर्वत के सन्निकट होने का अवश्य उल्लेख है, किन्तु समुद्र का बिल्कुल नहीं। यदि वह समुद्र के किनारे होती तो उसके उल्लेख न होने का हम कोई भी कारण नहीं मान सकते। घट जातक के अपर्याप्त उल्लेख को हम इन महत्वपूर्ण और स्पष्ट प्रमाणों के सामने अधिक महत्व नहीं दे सकते। दूसरे में द्वारका के

....मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवती पुरीम्॥ ६७।

—महाभारत सभापर्व, अ० १४

८६. (क) महाभारत जन पर्व अ० १६० श्लोक ५०

(ख) अतीत का अनावरण, पृ० १६३

८७. द्वितीय खण्ड व्रज का इतिहास पृ० ४७

८८. हरिवंशपुराण २।५८।६५

८९. जैन दर्शन और संस्कृति परिषद् शोधपत्र, द्वितीय अधिवेशन सन् १९६६, पृ० २१४

जैन साहित्य में अंगलोक का उल्लेख सिंहल (श्री लंका), बब्बर, किरात, यवनद्वीप आरवक, रोमक, अलसन्द (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है।[९८] जैन ग्रन्थों में अंग देश और चम्पा के साथ अनेक कथाओं का सम्बन्ध आता है। भगवान् अरिष्टनेमि ने अंग देश में विचरण किया था। भगवान् महावीर का तो वह मुख्य विहार स्थल था ही।

वंग :

वंग की गणना प्राचीन जनपदों में की गई है। वह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। जल और स्थल दोनों ही मार्गों से वहां माल आता-जाता था। यह जनपद-अंग के पूर्व और सुह्म के उत्तर-पूर्व में स्थित था। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में वंग जनपद के अधिपति सिंहवाहु राजा का वर्णन है, जिसके पुत्र विजय ने लंका में जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया था।[९९] 'मिलिन्दपण्हो' में वंग का उल्लेख है। वहां नाविकों का नावें लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।[१००] 'दीपवंस'[१०१] और 'महावंस'[१०२] में वर्धमाननगर का वर्णन है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का मन्तव्य है कि वह आधुनिक वंगाल के वर्द्धमान नगर से मिलाया जा सकता है।[१०३] वंग को पूर्वी वंगाल माना जा सकता है। आदि पुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने वंग जनपद को अपने अधीन किया था।[१०४] विशेष परिचय के लिए लेखक का भगवान् पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ का परिशिष्ट देखिए।[१०५]

---

९८. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ५२, पृ० २१६
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १९१

९९. महावंस—(हिन्दी अनुवाद) ६।१, १६, २०, ३१

१००. मिलिन्दपञ्हो (बम्बई वि० वि० संस्करण) जि० १, पृ० १५४

१०१. दीपवंस पृ० ८२

१०२. महावंस (हिन्दी अनुवाद) १५।९२

१०३. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत—पृ० ६५

१०४. आदिपुराण २९।४७, १६।१५२

१०५. पृ० २००

लाट :

लाट देश की अवस्थिति अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ के उत्तर में बताई गई है। विज्ञों का अभिमत है कि इस जनपद में गुजरात और खानदेश सम्मिलित थे। माही और महोबा के निचले भाग लाट देश में सम्मिलित थे। वर्तमान भडोंच, बड़ौदा, अहमदाबाद एवं खेड़ा के जिले लाट देश के अन्तर्गत थे।[१०६]

भृगुकच्छ (भडोंच) लाट देश की शोभा माना गया है। व्यापार का यह मुख्य केन्द्र था। आचार्य वज्रभूति का भी यहां विहार हुआ था।[१०७] यहां पर मामा की लड़की से विवाह को अनुचित नहीं माना जाता था किन्तु मौसी की लड़की से विवाह करना ठीक नहीं समझते थे।[१०८] वर्षाऋतु में गिरियज्ञ[१०९] नामक महोत्सव व श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन इन्द्रमह महोत्सव[११०] मनाया जाता था। भृगुकच्छ और उज्जयिनी के बीच पच्चीस योजन का अन्तर था।[१११] इस प्रकार लाट देश का उल्लेख जैन ग्रन्थों में हुआ है किन्तु उसकी पृथक् रूप से गणना आर्य देशों में नहीं की गई है।

मगध :

जैन वाङ्मय में मगध का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। प्रस्तुत जनपद की सीमा उत्तर में गंगा, दक्षिण में शोण नदी, पूर्व में अंग और उत्तर में गहन जंगलों तक फैली हुई थी। इस प्रकार दक्षिण विहार मगध जनपद के नाम से विश्रुत था। इसकी राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी। महाभारत में इसका नाम कीटक भी आया है। वायुपुराण के अनुसार राजगृह कीटक था। शक्तिसंगम तंत्र में कालेश्वर-कालभैरव-वाराणसी से तप्तकुंड-सीताकुण्ड, मुंगेर तक मगध देश माना है।[११२] इस तंत्र के अभिमतानुसार मगध का दक्षिणी

---

१०६. आदि पुराण में भारत पृ० ६५
१०७. व्यवहारभाष्य ३।५८.
१०८. निशीथ चूर्णि पीठिका १२६
१०९. वृहत्कल्पभाष्य १।२८५५
११०. निशीथचूर्णी १९।६०६५, पृ० २२६
१११. आवश्यकचूर्णी २, पृ० १६०

भाग कीकट[113] और उत्तरीय भाग मगध है। प्राचीन मगध का विस्तार पश्चिम में कर्मनाशा नदी और दक्षिण में दमूद नदी के मूल स्रोत तक है। हुयान्त्संग के अनुसार मगध जनपद की परिधि मण्डलाकार रूप में ८३३ मील थी। इसके उत्तर में गंगा, पश्चिम में वाराणसी, पूर्व में हिरण्यपर्वत और दक्षिण में सिंहभूमि थी। आचार्य बुद्धघोष ने मगध जनपद का नामकरण वतलाते हुए लिखा है—'वहुधा पपंचानी'—अनेक प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती में वताया गया है कि जब राजा चेतिय असत्य भाषण के कारण पृथ्वी में प्रविष्ट होने लगा, तव उसके सन्निकट जो व्यक्ति खड़े थे उन्होंने कहा—'मा गधं पविस' पृथ्वी में प्रवेश न करो। दूसरी किंवदन्ती के अनुसार राजा चेतिय धरती में प्रवेश कर गया तो जो लोग पृथ्वी खोद रहे थे, उन्होंने देखा। तब वह वोला—'मा गधं करोथ'। इन अनुश्रुतियों का तथ्य यही है कि मगधा नामक क्षत्रियों की यह निवास भूमि थी, अतः यह मगध के नाम से विश्रुत थी।[114]

महाकवि अर्हद्दास ने मगध का सजीव चित्र उपस्थित किया है। उसने मगध को जम्बूद्वीप का भूषण माना है। यहां के पर्वत वृक्षावलियों से सुशोभित थे। कल-कल छल-छल नदियों की मधुर झंकार सुनाई देती थी। सघन वृक्षावली होने से धूप सताती नहीं थी। सदा धान्य की खेती होती थी। इक्षु, तिल, तीसी गुड, कोदों मूंग, गेहूँ एवं उड़द आदि अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते थे। मगध धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न था। वहां के निवासी तत्त्व चर्चा, स्वाध्याय आदि में तल्लीन रहते थे।[115]

---

११२. कालेश्वरं समारभ्य तप्तकुण्डान्तकं शिवे।
मगधाख्यो महादेशो यात्रायां न हि दुष्यति॥
—शक्तितंत्र ३।७।१०

११३. दक्षिणोत्तरक्रमेणैव क्रमात्कीकटमागधौ।
—वहीं० ३।७।११

११४. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, साहित्य सम्मेलन प्रयाग संस्करण पृ० ३६१

११५. मुनि सुव्रत काव्य, अर्हद्दास रचित, १।२२, २३ व ३३

मगध ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में जैन और बौद्ध श्रमणों की प्रवृत्तियों का मुख्य केन्द्र था। ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी से पांचवीं शताब्दी तक यह कला-कौशल आदि की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध था। नीतिनिपुण चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना व वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण भी मगध में ही किया था। वहां के कुशल-शासकों ने स्थान-स्थान पर मार्ग निर्माण कराया था और जावा, वालि प्रभृति द्वीपों में जहाजों के बेड़े भेजकर इन द्वीपों को बसाया था।[११६]

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में मगध की परिगणना सोलह जनपदों में की गई है।[११७] मगध, प्रभास और वरदाम ये भारत के प्रमुख स्थल थे जो पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में अवस्थित थे। भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक वहाँ के जल से किया गया था।[११८] अन्य देश-वासियों की अपेक्षा मगधवासियों को अधिक बुद्धिमान् माना गया है। वे संकेत मात्र से समझ लेते थे, जबकि कौशलवासी उसे देखकर, पाँचालवासी उसे आधा सुनकर और दक्षिण देशवासी पूरा सुनकर ही उसे समझ पाते थे।[११९]

साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित होकर ब्राह्मणों ने मगध को 'पाप भूमि' कहा है, वहां जाने का भी उन्होंने निषेध किया है। प्राचीन तीर्थमाला में अठारहवीं सदी के किसी जैन यात्री ने प्रस्तुत मान्यता

---

११६. देखिए जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४६०

११७. अंग, वंग, मलय, मालवय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ, लाढ, वज्जि, मोलि (मल्ल) कासी, कोसल, अवाह, संभुत्तर।

—व्याख्याप्रज्ञप्ति १५

तुलना कीजिए—अंग, मगध, कासी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेति, वंश, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवंति, गंधार और कंबोज। —अंगुत्तरनिकाय १।३, पृ० १९७

११८. (क) स्थानाङ्ग ३।१४२

(ख) आवश्यक चूर्णी पृ० १८६

(ग) आवश्यकनिर्युक्ति भाष्य दीपिका ११० पृ० ९३ अ०

पर व्यंग करते हुए लिखा—अत्यन्त आश्चर्य है कि काशी में कौआ भी मर जाये तो वह सीधा मोक्ष जाता है किन्तु यदि कोई मानव मगध में मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे गधे की योनि में जन्म लेना पड़ेगा।[१२०]

मगधदेश का प्रमुख नगर होने से राजगृह को मगधपुर भी कहा जाता था।[१२१] भगवान् मुनिसुव्रत का जन्म भी मगध में ही हुआ था।[१२२] महाभारत के युग में मगध के सम्राट् प्रतिवासुदेव जरासंध थे।

बुद्धिस्ट इण्डिया के अनुसार—मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिले के अन्तर्गत फैला हुआ था। उसके उत्तर में गंगा नदी, पश्चिम में सोन नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत का भाग और पूर्व में चम्पानदी थी।[१२३]

इसका विस्तार तीन सौ योजन (२३०० मील) था और इसमें अस्सी हजार गांव थे।[१२४]

वसुदेवहिण्डी के अनुसार मगधनरेश और कलिंग नरेश के बीच मनमुटाव चलता रहता था।[१२५]

---

११९. व्यवहारभाष्य १०।१९२

तुलना करो—

बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्यं दक्षिणापथे।
पैशुन्यं पश्चिमे देशे, पौरुष्यं चोत्तरापथे॥

—गिलगित मैनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, १९३८ पृ० ४१६

१२०. कासी वासी काग मुउइ मुगति लहइ।
मगध मुओ नर खर हुई है॥

—प्राचीन तीर्थमाला, संग्रह भाग १ पृ० ४

१२१. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४६१

१२२. मुनि सुव्रत काव्य-अर्हद्दासरचित, श्री जैन सिद्धान्तभवन आरा. सन् १९३६ ई० १।२२, २३, व ३३

१२३. बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

१२४. वहीं० पृ० २४

१२५. वसुदेवहिण्डी पृ० ६१-६४

कलिंग :

कलिंग जनपद उत्तर में उड़ीसा से लेकर दक्षिण में आन्ध्र या गोदावरी के मुहाने तक विस्तृत था। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने दक्षिण और पूर्व के सम्मिलित भूप्रदेश को कलिंग कहा है।[१२६] अष्टाध्यायी में पाणिनि ने भी कलिंग जनपद का उल्लेख किया है।[१२७] बौद्ध साहित्य में कलिंग की राजधानी दन्तपुर बताई है। दन्तपुरी को जगन्नाथ पुरी के साथ मिलाया जा सकता है। कुम्भकार-जातक में कलिंग देश के राजा का नाम करण्ड आया है और उसे विदेहराज निमि का समकालिक कहा है। कलिंगबोधि जातक के अनुसार कलिंग देश के राजकुमार ने मद्र देश के राजा की लड़की से विवाह किया था। कलिंग और वंग देश के राजाओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होते थे।[१२८] कलिंग की राजधानी कंचनपुर (भुवनेश्वर) थी।[१२९] ओघनिर्युक्ति के अनुसार यह जनपद एक व्यापारिक केन्द्र था, और यहां के व्यापारी व्यापारार्थ लंका आदि तक जाया करते थे।[१३०]

खारवेल के समय कलिंग जनपद अत्यन्त समृद्ध था। खारवेल ने एक वृहत् जैन सम्मेलन भी बुलाया था जिसमें भारतवर्ष में विचरण करते हुए जैन यति, तपस्वी, ऋषि और विद्वान् एकत्रित हुए थे।[१३१] नौवीं, दशमी शताब्दी में कलिंग में बौद्ध और वैदिक प्रभाव व्याप्त हो गया था। विशेष परिचय के लिए भगवान पार्श्व देखें।[१३२]

---

१२६. काव्य मीमांसा, अध्याय १७, देशविभाग पृ० २२६ तथा परिशिष्ट २, पृ० २८२

१२७. अष्टाध्यायी ४।१।१७०

१२८. बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ० ४६४-४६५

१२९. वसुदेवहिण्डी, पृ० १११

१३०. ओघनिर्युक्ति टीका ११६

१३१. (सु) कति समणासुविहितानं (नुं १) च सतदिसानं (नु) जातिनं तपसि इसिनं संधियनं (नुं १) अरहतनिसीदिया समीपे पभारे वराकर समुथपिताहि अनेक योजनाहि ताहि प० सि० ओ······· सिलाहि सिह पथरानिसि·······फुडाय निसयानि।

—खरवेल शिलालेख पं० १५

कुरुजांगल :

थानेश्वर, हिसार अथवा सरस्वती-यमुना-गंगा के मध्य का प्रदेश कुरुजांगल कहलाता था। गंगा-यमुना के बीच मेरठ कमिश्नरी का भूभाग कुरु जनपद था। इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। वस्तुतः कुरु जनपद और कुरुजांगल एक दूसरे से मिले हुए थे।[१३३]

शूरसेन :

शूरसेन जनपद की अवस्थिति मथुरा के आसपास थी। मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, आगरा आदि इस जनपद में सम्मिलित थे। महाभारत के अनुसार दक्षिण दिग्विजय के समय सहदेव ने इन्द्रप्रस्थ से चलकर सबसे पहले शूरसेनवासियों पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की थी।[१३४] वे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए थे।[१३५] जैनदृष्टि से शूरसेनदेश की प्रसिद्ध नगरी मथुरा थी।[१३६] ग्रीक इतिहासकारों ने भी शूरसेन देश और उसकी मथुरा नगरी का वर्णन किया है।[१३७] शक्तिसंगमतन्त्र में शूरसेन का विस्तार उत्तर पूर्व में मगध और पश्चिम में विन्ध्य तक बताया है।

हस्तिनापुर :

हस्तिनापुर कुरुजांगल जनपद की राजधानी था। भगवान् ऋषभदेव को हस्तिनापुर के अधिपति श्रेयांस ने ही सर्वप्रथम आहार दान दिया था।[१३८] महाभारत के अनुसार सुहोत्र के पुत्र राजा हस्ती ने इस नगर को बसाया था, अतः इसका नाम हस्तिनापुर पड़ा।[१३९] महाभारतकाल में कौरवों की राजधानी भी हस्तिनापुर में ही

---

१३२. भगवान पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन

१३३. आदिपुराण में भारत पृ० ५४

१३४. महाभारत, सभापर्व ३१।१-२

१३५. महाभारत, सभापर्व ५३।१३

१३६. आदिपुराण में भारत पृ० ६६

१३७. एथनिक सेटिलमेन्ट इन् एन्शियन्ट इण्डिया पृ० २३

१३८. ऋषभदेव : एक परिशीलन पृ० १०१-१०५

१३९. महाभारत, आदिपर्व ६५।३४।२४३

थी।[१४०] अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को यहां का राजा बनाया गया था।[१४१]

विविधतीर्थकल्प के अनुसार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र कुरु थे, और उनके पुत्र हस्ती थे, उन्होंने हस्तिनापुर बसाया था।[१४२] इस नगर में विष्णुकुमार मुनि ने बलि द्वारा हवन किए जाने वाले सात सौ मुनियों की रक्षा की थी। सनत्कुमार, महापद्म, सुभौम, और परशुराम का जन्म इसी नगर में हुआ था। इसी नगर के कार्तिक सेठ ने मुनिसुव्रत स्वामी के पास संयम लिया था और सौधर्मेन्द्र पद प्राप्त किया था।[१४३] शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ इन तीनों तीर्थंकरों और चक्रवर्तियों की जन्मभूमि होने का गौरव भी हस्तिनापुर को ही है। पौराणिक दृष्टि से इस नगर का अत्यधिक महत्त्व रहा है। वसुदेवहिण्डी में इसे ब्रह्मस्थल कहा गया है।[१४४] हस्तिनापुर का दूसरा नाम गजपुर और नागपुर भी था। वर्तमान में हस्तिनापुर गंगा के दक्षिण तट पर, मेरठ से बावीस मील दूर पर उत्तर पश्चिम कोण में तथा दिल्ली से ५६ मील दक्षिण-पूर्व खण्डहरों के रूप में वर्तमान है।

पाली-साहित्य में इसका नाम 'हस्थिपुर' या हत्थिनीपुर आता है। किन्तु उसके समीप गंगा होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। रामायण, महाभारत आदि पुराणों में इसकी अवस्थिति गंगा के पास बताई गई है।[१४५]

चेदि :

चेदि जनपद वत्स जनपद के दक्षिण में, यमुना नदी के सन्निकट अवस्थित था। इसके पूर्व में काशी, दक्षिण में विन्ध्यपर्वत, पश्चिम

---

१४०. वहीं० आदिपर्व १००।१२।२४४

१४१. वहीं० महभारत प्र० १।८।२४५

१४२. कुरुनरिंदस्स पुत्तो हत्थी नाम राया हुत्था। तेण हत्थिणाउरं निवेसिअं।

— विविध तीर्थकल्प, सिंघी जैन ग्रन्थमाला प्र० सं०
हस्तिनापुर कल्प पृष्ठ २७

१४३. जयवाणी पृ० ३८७-३९६

में अवन्ती और उत्तर-पश्चिम में मत्स्य व सूरसेन जनपद थे। मध्यप्रदेश का कुछ भाग और बुन्देलखण्ड का कुछ हिस्सा इस जनपद के अन्तर्गत आता है। विभिन्न कालों में इसकी सीमा परिवर्तित होती रही है। चेतीयजातक के अनुसार इस जनपद की राजधानी सोत्थिवती नगरी थी। नन्दलाल देने का कथन है कि सोत्थिवती नगरी ही महाभारत की शुक्तिमती नगरी थी।[१४६] पार्जिटर इस जनपद को बांदा के समीप बतलाते हैं।[१४७] डा० रायचौधरी का भी यही मत है।[१४८] बौद्ध साहित्य में चेदि राष्ट्र का विस्तार से निरुपण है और इसके प्रसिद्ध नगरों का भी कथन है। चेदि जनपद से काशी जनपद जाने का एक मार्ग था, वह भयंकर अरण्य में से होकर जाता था और मार्ग में तस्करों का भी भय रहता था।[४९] शिशुपाल 'चेदि' जनपद का सम्राट् था।[१५०] आचार्य जिनसेन ने चेदि राज्य की समृद्धि का वर्णन किया है।[१५१] चंदेरी नगरी का समीपस्थ प्रदेश 'चेदि' जनपद कहलाता था। 'शुक्तिमतीया' जैन श्रमणों की एक शाखा भी रही है।[१५२]

पल्लव :

दक्षिण भारत के कुछ भाग पर पल्लव वंश का शासन पांचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक रहा है। कांची पल्लव वंश की

---

१४४. वसुदेव हिण्डी पृ० १६५

१४५. भ० पार्श्व : एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० १६३

१४६. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया पृष्ठ १९६

१४७. (क) पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया पृ० १२९
(ख) स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विरीज पृ० ११४

१४८. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया पृ० १२९

१४९. (क) बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पृ० ४२७
(ख) अंगुत्तरनिकाय ३, जिल्द पृ० ३५५

१५०. शिशुपाल वध महाकाव्य, सर्ग २।१५-१६-१७

१५१. आदिपुराण २९।५५

१५२. कल्पसूत्र सूत्र २०९ पृ० २९२, देवेन्द्रमुनि सम्पादित

राजधानी थी। कांची के चारों ओर का प्रदेश पल्लव जनपद कहा जाता था। आचार्य जिनसेन ने पल्लव को स्वतंत्र जनपद माना है।[१५३] राजशेखर की काव्यमीमांसा से भी पल्लव स्वतंत्र जनपद था, ऐसा सिद्ध होता है।[१५४] कांची के समीपवर्ती प्रदेश को डा० नेमिचन्द्र शास्त्री भी स्वतंत्र जनपद मानते हैं।[१५५]

भद्दिलपुर :

भद्दिलपुर मलयदेश की राजधानी था। इसकी परिगणना अतिशय क्षेत्रों में की गई है। मुनि कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार पटना से दक्षिण में लगभग एक सौ मील और गया से नैऋत्य-दक्षिण में अट्ठाईस मील की दूरी पर गया जिले में अवस्थित हटवरिया और दन्तारा गांवों के पास प्राचीन भद्दिलनगरी थी, जो पिछले समय में भद्दिलपुर नाम से जैनों का एक पवित्र तीर्थ रहा है।[१५६]

आवश्यक सूत्र के निर्देशानुसार श्रमण भगवान् महावीर ने एक चातुर्मास भद्दिलपुर में किया था।

डा० जगदीशचन्द्र जैन का मन्तव्य है कि हजारीबाग जिले में भदिया नामक जो गांव है, वही भद्दिलपुर था। यह स्थान हंटरगंज से छह मील के फासले पर कुलुहा पहाड़ी के पास है।[१५७]

पांचाल :

(पंचाल) पांचाल प्राचीन काल में एक समृद्धिशाली जनपद था। यह इन्द्रप्रस्थ से तीस योजन दूर कुरुक्षेत्र के पश्चिम और उत्तर में अवस्थित था। पंचाल जनपद दो भागों में विभक्त था, १ उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल। पाणिनि के अनुसार—पांचाल जनपद तीन विभागों में विभक्त था—(१) पूर्वपांचाल, (२) अपर पांचाल

---

१५३. आदिपुराण १६।१५५

१५४. काव्य मीमांसा १७, अध्याय, देशविभाग, तथा परिशिष्ट २, पृ० २६

१५५. आदिपुराण में भारत पृ० ६०

१५६. श्रमण भगवान महावीर पृ० ३८०

१५७. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ० ४७७

और (३) दक्षिण पांचाल।[१५८] महाभारत के अनुसार गंगानदी पांचाल को दक्षिण और उत्तर में विभक्त करती थी। एटा और फर्रुखाबाद के जिले दक्षिण पांचाल के अन्तर्गत आते थे। यह भी ज्ञात होता है कि उत्तर पांचाल के भी पूर्व और अपर ये दो विभाग थे। दोनों को रामगंगा विभक्त करती थी। अहिच्छत्रा उत्तरी पांचाल तथा काम्पिल्य दक्षिणी पांचाल की राजधानी थी।[१५९]

कांपिल्यपुर गंगा के किनारे पर अवस्थित था।[१६०] यहीं पर द्रौपदी का स्वयंवर रचा गया था। इन्द्र महोत्सव भी यहां उल्लास के साथ मनाया जाता था।

माकंदी दक्षिण पांचाल की दूसरी राजधानी थी। यह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। समराइच्चकहा में हरिभद्रसूरि ने इस नगरी का वर्णन किया है।[१६१]

कान्यकुब्ज (कन्नौज) दक्षिण पांचाल में पूर्व की ओर अवस्थित था। इसे इन्द्रपुर, गाधिपुर, महोदय और कुशस्थल[१६२] आदि नामों से भी पहचाना जाता था। सातवीं शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक कान्यकुब्ज उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसांग के समय सम्राट् हर्षवर्धन वहां के राजा थे। उस समय वह नगर शूरसेन के अन्तर्गत था।

द्विमुख, जो प्रत्येक बुद्ध था, पाञ्चाल का प्रभावशाली राजा था।[१६३] प्रभावकचरित्र के अनुसार पाञ्चाल और लाटदेश कभी एक शासन के अधीन भी रहे हैं।[१६४]

बौद्ध साहित्य में पाञ्चाल का उल्लेख सोलह महाजनपदों में

---

१५८. पाणिनी व्याकरण ७।३।१३

१५९. स्टडीज इन दि ज्योग्रेफि ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया पृष्ठ ६२

१६०. औपपातिक सूत्र ३९

१६१. समराइच्चकहा—अध्याय ६

१६२. अभिधानचिन्तामणि ४।३९-४०

१६३. उत्तराध्ययन—सुखबोधा पत्र १३५-१३६

१६४. प्रभावक चरित पृ० २४

किया गया है।[१६५] किन्तु जैन साहित्य में वर्णित सोलह जनपदों में पाञ्चाल का उल्लेख नहीं है।

कनिंघम के अभिमतानुसार आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आस-पास के जिले पाञ्चाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते हैं।[१६६]

मत्स्य :

मत्स्य (अलवर के सन्निकट का प्रदेश) जनपद का उल्लेख जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त महाभारत में भी आता है।

वैराट या विराटनगर (वैराट्, जयपुर के पास) मत्स्य की राजधानी था। मत्स्य के राजा विराट् की राजधानी होने से यह विराट या वैराट कहा जाता था। पांडवों ने एक वर्ष तक यहां गुप्तवास किया था। यहां के लोग वीरता की दृष्टि से विश्रुत थे। बौद्ध मठों के ध्वंसावशेष भी यहां उपलब्ध हुए हैं। वैराट जयपुर से बयालीस मील पर है।

कांपिल्य :

कांपिल्य को कंपिला भी कहते हैं। यहां पर तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म, राज्याभिषेक और दीक्षा आदि प्रसंग हुए हैं। जिनप्रभसूरि ने कंपिलपुर कल्प में लिखा है—जम्बूद्वीप में, दक्षिण भरत खण्ड में, पूर्व दिशा में, पांचाल नामक देश में कंपिल नामक नगर गंगा के किनारे अवस्थित है। अठारवीं शताब्दी के जैन यात्रियों ने कंपिला की यात्रा करते हुए लिखा है—

जी हो, अयोध्या थी पश्चिम दिशे,
जी हो कंपिलपुर छे दाय।
जी हो, विमलजन्मभूमि जाण जो,
जी हो पिटियारी वहि जाय॥

इसमें कंपिलपुर नगरी अयोध्या से पश्चिम दिशा में होने का सूचन किया है। पं० बेचरदासजी का अभिमत है—'फर्रुखाबाद

---

१६५. अंगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २१३

१६६. दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया पृ० ४१२, ७०५

जिले में आये हुए कायमगंज से उत्तर पश्चिम में छह मील के ऊपर कंपिला हो, ऐसा लगता है।[१६७] उपरोक्त पद्य में पटियारी का उल्लेख हुआ है। कंपिला से उत्तर पश्चिम में १६ माइल पर पटियाली गांव है। महाभारत में गंगा के किनारे अवस्थित मांकदी के पास द्रुपद का नगर बताया गया है।

हत्थकप्प :

यह ग्राम शत्रुंजय के सन्निकट होना चाहिए, क्योंकि पाण्डवों ने हत्थकप्प में सुना कि भगवान् अरिष्टनेमि उज्जयंत पर्वत पर निर्वाण प्राप्त हुए हैं। यह सुन पाण्डव हत्थकप्प से निकल शत्रुञ्जय की तरफ गये। इस समय सौराष्ट्र में तलाजा के पास में हाथप नाम का गांव है, जो शत्रुञ्जय मे विशेष दूर नहीं है। यह हाथप ही हत्थकप्प होना चाहिए। भाषा व नाम की दृष्टि से भी अधिक साम्य है। गुप्तवंशीय प्रथम धरसेन के वलभी के दानपत्र में (ई० स० ५८८) हस्तवप्र इलाके का उल्लेख हुआ है। इस शिलालेख के अनुवाद में हस्तवप्र को वर्तमान का हाथप माना गया है।[१६८] हत्थकप्प और हस्तवप्र इन दोनों शब्दों का अप्रभ्रंश रूप हाथप हो सकता है।

देवविजय जी ने पांडव चरित्र में हत्थिकप्प के स्थान पर हस्तिकल्प दिया है और उसे रैवतक से बारह योजन दूर बताया है।

मथुरा :

जिनसेनाचार्यकृत महापुराण में लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव के आदेश से इन्द्र ने इस भूतल पर जिन ५२ देशों का निर्माण किया था, उनमें एक शूरसेन देश भी था, जिसकी राजधानी मथुरा थी।[१६९]

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का विहार भी मथुरा में हुआ था।[१७०] तीर्थंकर महावीर भी मथुरा पधारे थे। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के तप और निर्वाण की

---

१६७. भगवान् महावीर नी धर्मकथाओ—टिप्पण पृ० २३६

१६८. इण्डियन ऐन्टीकवेरी वो० ६, पा० ६

१६९. महापुराण पर्व १६, श्लोक १५५

१७०. विविध तीर्थंकल्प में मथुरापुरी कल्प—जिनप्रभसूरि

भूमि होने से भी मथुरा का महत्त्व रहा है। मथुरा कई तीर्थंकरों की विहार भूमि, विविध मुनियों की तपोभूमि, एवं अनेक महापुरुषों की निर्वाण भूमि है।

जैनागमों की प्रसिद्ध तीन वाचनाओं में से एक वाचना मथुरा में ही सम्पन्न हुई थी जो माथुरीवाचना कहलाती है। मथुरा के कंकाली टीला की खुदाई में जैनपरम्परा से संबंध रखने वाली अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है, जिससे सिद्ध होता है कि मथुरा के साथ जैन-इतिहास का गहरा संबंध रहा है।

बौद्धधर्म के सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की मान्यता है कि इस भूतल के मानवसमाज ने सर्वसम्मति से अपना जो राजा निर्वाचित किया था, वह 'महासम्मत' कहलाता था। उसने मथुरा के निकटवर्ती भूभाग में अपना प्रथम राज्य स्थापित किया था, इसीलिए 'विनय पिटक' में मथुरा को इस भू-तल का आदिराज्य कहा गया है।[१७१]

'अंगुत्तरनिकाय' में १६ महाजनपदों का नामोल्लेख है। उनमें पहला नाम शूरसेन जनपद का है।

हुएनसांग ने तत्कालीन मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली (८३३ मील के लगभग) बताया है। उसकी सीमाओं के सम्बन्ध में श्री कनिंघम का अनुमान है कि वह पश्चिम में भरतपुर और धौलपुर तक, पूर्व में जिझौती (प्राचीन बुन्देलखण्ड राज्य) तक तथा दक्षिण में ग्वालियर तक होगी। इस प्रकार उस समय भी मथुरा एक बड़ा राज्य रहा होगा।[१७२]

वैदिक परम्परा में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की आधार-शिलाएं सात महापुरियां मानी गई हैं १ अयोध्या, २ मथुरा, ३ माया, ४ काशी ५ कांची ६ अवंतिका और ७ द्वारिका।[१७३] पद्म-

---

१७१. उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास पृ० ३०

१७२. ऐंटश्येंट ज्योगरफी आफ इण्डिया पृ० ४२७-४२८

१७३. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवंतिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिका॥

—गरुडपुराण

पुराण में मथुरा का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि यद्यपि काशी आदि सभी पुरियां मोक्षदायिनी हैं, तथापि मथुरापुरी धन्य है। यह पुरी देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।[१७४] इसी का समर्थन 'गर्ग संहिता' में करते हुए बताया है कि पुरियों की रानी कृष्णपुरी मथुरा ब्रजेश्वरी है, तीर्थेश्वरी है, यज्ञ तपोनिधियों की ईश्वरी है, यह मोक्षप्रदायिनी धर्मपुरी मथुरा नमस्कार योग्य है।[१७५]

यमुना नदी :

भारतवर्ष की प्राचीन पवित्र नदियों में यमुना की गणना गंगा के साथ की गई है।

पद्मपुराण में यमुना के आध्यात्मिक स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—जो सृष्टि का आधार है और जिसे लक्षणों से सच्चिदानन्द स्वरूप कहा जाता है, उपनिषदों ने जिसका ब्रह्मरूप से गायन किया है, वही परमतत्त्व साक्षात् यमुना है।[१७६] मथुरा माहात्म्य में यमुना को साक्षात् चिदानन्दमयी लिखा है।[१७७]

यमुना का उद्गम हिमालय के हिमाच्छादित शृंग बंदरपुच्छ (ऊँचाई २०, ७३१ फीट) से ८ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित कलिंद पर्वत है। इसी के नाम पर इसे कलिंदजा अथवा कालिंदी कहा जाता है। अपने उद्गम से कई मील तक विशाल हिमागारों और हिममंडित कंदराओं में अप्रकट रूप से बहती हुई तथा पहाड़ी ढलानों पर से बड़ी तीव्रतापूर्वक उतरती हुई इसकी धारा यमुनोत्तरी पर्वत (ऊँचाई १०, ८४९ फीट) से प्रकट होती है।[१७८]

---

१७४. काश्यात्यो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासांहु मध्ये मथुरैव धन्या।
तां पुरी प्राप्य मथुरां मदीया सुर दुर्लभाम्॥
—पद्मपुराण ७३।४४-४५

१७५. काश्यादि सर्गायदिसंति लोके ता सा तु मध्ये मथुरैव धन्या।
पुरीश्वरीं कृष्णपुरीं ब्रजेश्वरीं तीर्थेश्वरीं यज्ञतपोनिधीश्वरीम्।
मोक्षप्रदीधर्मधुरंधरां परां मधोर्वने श्री मथुरां नमाम्यहम्॥
—गर्ग संहिता ३३-३४

१७६. पद्मपुराण, पातालखण्ड, मरीचि सर्ग

यमुना का प्रवाह समय-समय पर बदलता रहा है। प्रागैतिहासिक काल में यमुना मधुवन के निकट बहती थी। जहां उसके तट पर शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी की स्थापना की थी।[१७८] कृष्ण-काल में यमुना का प्रवाह कटरा केशवदेव के निकट था। १७वीं शताब्दी में भारत आने वाले यूरोपीय विद्वान टेवर्नियर ने कटरा के समीप की भूमि को देखकर यह अनुमान किया था कि वहां किसी समय यमुना की धारा थी। इस पर श्री ग्राउस का मत है, ऐतिहासिक काल में कटरा के समीप यमुना के प्रवाहित होने की संभावना कम है, किन्तु अत्यन्त प्राचीन काल में वहां यमुना अवश्य थी।[१८०] इससे भी यह सिद्ध होता है कि कृष्ण-काल में यमुना का प्रवाह कटरा के समीप ही था।

श्री कनिंघम का अनुमान है, यूनानी लेखकों के समय में यमुना की प्रधान धारा या उसकी एक बड़ी धारा कटरा केशवदेव की पूर्वी दीवाल के नीचे बहती होगी।[१८१]

पुराणों से ज्ञात होता है प्राचीन वृन्दावन में यमुना गोवर्धन के निकट प्रवाहित होती थी,[१८२] जबकि इस समय वह गोवर्धन से प्रायः १४ मील दूर हो गई है।[१८३]

ब्रज :

व्रज अथवा ब्रज शब्द संस्कृत धातु 'व्रज' से बना है, जिसका अर्थ 'गतिशीलता' है। व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रजः—जहाँ गायें नित्य

---

१७७. चिदानंदमयी साक्षात् यमुना यम भीतिनत।

—मथुरा माहात्म्य

१७८. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ० ३१

१७९. (क) वाल्मीकि रामायण, (उत्तर काण्ड ७।८)

(ख) विष्णुपुराण ६।१२।४

१८०. मथुरा—ए—डिस्ट्रिक्ट मेमोअर (तृ० स०) पृ० १२९-१३०

१८१. विदेशी लेखकों का मथुरा वर्णन (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ) पृ० ८२८

१८२. भागवत दशम स्कंध तथा स्कंधपुराण

१८३. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास पृ० ३२

चलता अथवा चरती हैं, वह स्थान भी 'व्रज' कहा गया है। कोशकारों ने व्रज के तीन अर्थ बतलाये हैं—गोष्ठ (गायों का खिरक) मार्ग और वृन्द (झुंड)।[१८४] इनसे भी गायों से संबंधित स्थान का ही बोध होता है।

वैदिक संहिताओं तथा रामायण, महाभारत प्रभृति ग्रन्थों में 'व्रज' शब्द गोशाला, गो-स्थान, गोचर-भूमि के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में यह शब्द गोशाला अथवा गायों के खिरक (बाडा) के अर्थ में आया है।[१८५] यजुर्वेद में गायों के चरने के स्थान को 'व्रज' और गो-शाला को 'गोष्ठ' कहा गया है।[१८६] शुक्लयजुर्वेद में सुन्दर सींगों वाली गायों के विचरण-स्थान से व्रज का संकेत मिलता है।[१८७] अथर्ववेद में गोशालाओं से सम्बन्धित पूरा सूक्त ही है।[१८८] हरिवंश तथा भागवतादि पुराणों में यह शब्द गोप-वस्ती के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[१८९] स्कंध पुराण में महर्षि शांडिल्य ने व्रज शब्द का अर्थ 'व्याप्ति' बतलाते हुए इसे व्यापक ब्रह्म का रूप कहा है।[१९०]

सूरदास आदि व्रज भाषा के भक्त-कवियों और वार्ताकारों ने भागवतादि पुराणों के अनुकरण पर मथुरा के निकटवर्ती वन्य प्रदेश की गोप-बस्ती को व्रज कहा है।[१९१] और उसे सर्वत्र मथुरा, मधुपुरी

---

१८४. गोष्ठाध्वनिवहा व्रजः —अमर कोश, ३।३।३०

१८५. (क) गवामय व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः।
—ऋग्वेद १।१०।७

(ख) यं त्वां जनासो अभिसंचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।
—ऋग्वेद १०।४।२

१८६. व्रजं गच्छ गोष्ठान —यजुर्वेद १।२५

१८७. याते धामान्युश्मसि गमध्यै, यत्र गावो भूरि शृङ्गा अयासः।
—शुक्ल यजुर्वेद ६।३

१८८. अथर्ववेद २।२६।१

१८९. (क) तद् व्रजस्थानमधिकम् शुशुभे काननावृतम्।
—हरिवंश, विष्णु पर्व ९।३०

(ख) व्रजे वसन् किमकरोन् मधुपुर्यां च केशवः।
—भागवत १०।१।१०

१९०. वैष्णव खण्ड, भागवत माहात्म्य १।१९-२०

या मधुवन से पृथक् बताया है।[१९२] आजकल मथुरा नगर सहित वह भू-भाग, जो कृष्ण के जन्म और उनकी विविध लीलाओं से सम्बन्धित है, व्रज कहलाता है।

भागवत में 'व्रज' शब्द क्षेत्रवाची अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[१९३] वहां इसे एक छोटे ग्राम की संज्ञा दी गई है। उसमें पुर से छोटा ग्राम और उससे भी छोटी बस्ती को व्रज कहा गया है।[१९४] १६वीं शताब्दी में 'व्रज' प्रदेशवाची होकर 'व्रजमण्डल' हो गया है और तब इसका आकार ८४ कोस का माना जाने लगा था।[१९५] उस समय मथुरा नगर व्रज में सम्मिलित नहीं माना जाता था। सूरदास आदि कवियों ने व्रज और मथुरा का पृथक् रूप में ही कथन किया है।

वर्तमान में मथुरा नगर सहित मथुरा जिले का अधिकांश भाग तथा राजस्थान के डीग और कामबन (कामा) का कुछ भाग, जहां होकर व्रज यात्रा जाती है, 'व्रज' कहा जाता है।

इस समस्त भू-भाग के प्राचीन नाम मधुवन, शूरसेन, मधुरा, मधुपुरी, मथुरा और मथुरामंडल थे तथा आधुनिक नाम व्रज या व्रज मण्डल है। यद्यपि इनके अर्थबोध एवं आकार प्रकार में समय-समय पर अन्तर होता रहा है।

●●

---

१९१. (क) बका विदारि चले 'व्रज' कों हरि

—सूरसागर पद सं० १०४७

(ख) व्रज में बाजति आज बधाई।

—परमानन्द सागर पद सं० १७

(ग) चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृ० ६

(घ) सो अलीखान 'व्रज' देखिकै बहोत प्रसन्न भए।

- दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, प्र० खण्ड पृ० २९९

१९२. आतुर रथ हांक्यौ मधुवन को, 'व्रज' जन भये अनाथ।

—सूरसागर पद ३६११

१९३. श्रीमद्भागवत, १०।१।८-९

१९४. शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु —भागवत १०।६।२

१९५. आइ जुरे सब व्रज के बासी। डेरा परे कोस चौरासी ॥

—सूरसागर १५२३, (ना० प्र० सभा)

परिशिष्ट २

हरिवंश

जैन ग्रन्थों के अनुसार हरिवंश की उत्पत्ति इस प्रकार है :—

दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ के निर्वाण के पश्चात् और ग्यारहवें तीर्थकर श्रेयांसनाथ के पूर्व हरिवंश की स्थापना हुई।[1] उस समय वत्स देश में कौशाम्बी नामक नगरी थी। वहां का राजा सुमुख था। उसने एक दिन वीरक नामक एक व्यक्ति की पत्नी वनमाला देखी। वनमाला का रूप अत्यन्त सुन्दर था। वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने वनमाला को राजमहलों में बुला लिया। पत्नी के विरह में वीरक अर्द्ध विक्षिप्त हो गया। वनमाला राजमहलों में आनन्द क्रीड़ा करने लगी।

एक दिन राजा सुमुख अपनी प्रिया वनमाला के साथ वन विहार को गया। वहां पर वीरक की दयनीय अवस्था देखकर अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा—मैंने कितना भयंकर दुष्कृत्य किया है, मेरे ही कारण वीरक की यह अवस्था हुई है। वनमाला को भी अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। उन्होंने उस समय सरल और भद्रपरिणामों के कारण मानव के आयु का बंधन किया। सहसा आकाश से विद्युत गिरने से दोनों का प्राणान्त हो गया, और वे हरिवास नामक भोगभूमि में युगल रूप में उत्पन्न हुए।

---

१. चउप्पन्न महापुरिस चरियं पृ० १८०

कुछ समय के पश्चात् वीरक भी मरकर बाल तप के कारण सौधर्मकल्प में किल्विषी देव बना। विभंगज्ञान से देखा कि मेरा शत्रु 'हरि' अपनी प्रिया 'हरिणी' के साथ अनपवर्त्य आयु से उत्पन्न होकर आनन्द क्रीड़ा कर रहा है।

वह क्रुद्ध होकर विचारने लगा—क्या इन दुष्टों को निष्ठुरता-पूर्वक कुचल कर चूर्ण कर दूं ? मेरा अपकार करके भी ये भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं। मैं इस प्रकार इन्हें मार नहीं सकता। यौगलिक निश्चित रूप से मर कर देव ही बनते हैं, भविष्य में ये यहां से मरकर देव न बनें और ये अपार दुःख भोगे ऐसा मुझे प्रयत्न करना चाहिए।

उसने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा—भरतक्षेत्र में चम्पानगरी का नरेश अभी-अभी कालधर्म को प्राप्त हुआ है अतः इन्हें वहां पहुँचा दूं क्योंकि एकदिन भी आसक्तिपूर्वक किया गया राज्य दुर्गति का कारण है फिर लम्बे समय की तो बात ही क्या है ?

देव ने अपनी देवशक्ति से हरि-युगल की करोड़ पूर्व की आयु का एक लाख वर्ष में अपवर्तन किया[२] और अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) को भी घटाकर १०० धनुष की कर दी।

देव उनको उठाकर वहां ले गया, और नागरिकों को सम्बोधित कर कहा—आप राजा के लिए चिन्तित क्यों हैं, मैं तुम्हारे पर करुणा कर राजा लाया हूँ। नागरिकों ने 'हरि' का राज्याभिषेक किया। सप्त व्यसन के सेवन करने के कारण वे नरक गति में उत्पन्न हुए।

यौगलिक नरक गति में नहीं जाते, पर वे गए, इसलिए यह घटना जैन साहित्य में आश्चर्य के रूप में उट्टङ्कित की गई है।

राजा हरि की जो सन्तान हुई वह हरिवंश के नाम से विश्रुत हुई।

---

२. पुव्वकोडीसेसाउएसु तेसिं वेरं युमरिऊण वाससयसहस्सं विधारेऊण चम्पाए रायहाणीए इक्खागम्मि चन्दकित्तिपत्थिवे अपुत्ते वोच्छिण्णे नागरयाणं रायकंखियाणं हरिवसिसाओ तं मिहुणं साहरइ........ कुणति य से दिव्वप्पभावेण धणुसयं उच्चत्तं।

—वसुदेवहिण्डी खं० १ भाग २, पृ० ३५७

हरि के छह पुत्र थे :—

१ पृथ्वीपति,
२ महागिरि,
३ हिमगिरि,
४ वसुगिरि,
५ नरगिरि,
६ इन्द्रगिरि।

अनेक राजाओं के पश्चात् बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत भी इसी वंश में हुए।

हरिवंशपुराण के अनुसार यदुवंश का उद्भव हरिवंश से हुआ है।

भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण हरिवंश में ही उत्पन्न हुए थे।

परिशिष्ट ३

वंश परिचय

भगवान् अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण के जैन व वैदिक परम्परा के अनुसार वंश परिचय इस प्रकार है :—

चार्ट १—श्वेताम्बर जैन परम्परा[1]
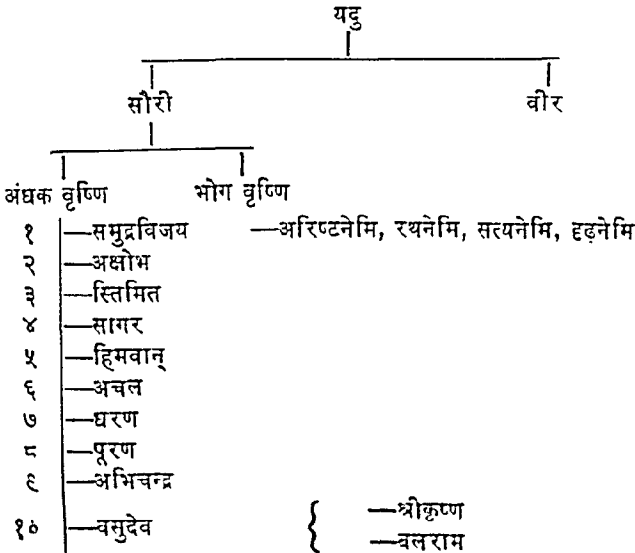
चार्ट—२ दिगम्बर उत्तरपुराण[2] के अनुसार
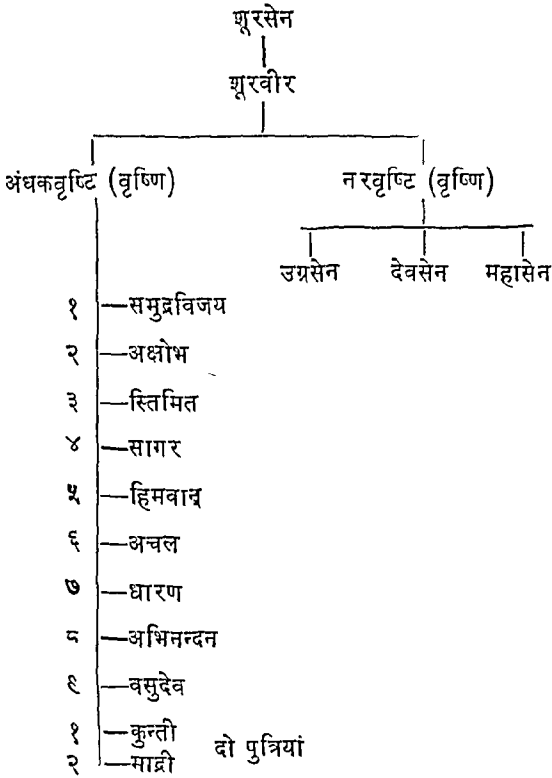
१. जैनधर्म का मौलिक इतिहास पृ० २४५
२. उत्तरपुराण ७०।९३-१००

चार्ट—३, दिगम्बर हरिवंश[3] के अनुसार यादववंश परिचय

३. हरिवंशपुराण—जिनसेन—अ० १८ जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश, भाग १ से साभार उद्धृत

चार्ट नं० ४

भोजक वृष्णि का परिवार :—

१ उग्रसेन	—कंस, देवकी, धर, गुणधर, युक्तिक, दर्धर, सागर, चन्द्र
२ महासेन	
३ देवसेन	

शांतनु का परिवार :—

१ महासेन	—सुषेण
२ शिवि	—सत्यक, वज्रधर्मा, असंग
३ स्वस्थ	
४ विषद	
५ अनन्तमित्र	
६ विषमित्र	— हृदिक

हृदिक — कृतिधर्मा, दृढधर्मा

चार्ट ५, हरिवंशपुराण में वसुदेव की २३ रानियां व उनकी संतान

रानियां	संतान
१ विजयसेना	—अक्रूर, क्रूर
२ श्यामा	—ज्वलन, अग्निवेग
३ गंधर्वसेना	—वायुवेग, अमितगति, महेन्द्रगिर
४ प्रभावती	—दारु, वृद्धार्थ, दारुक
५ नीलयशा	—सिंह, मतंगज
६ सोमश्री	—नारद, मरुदेव
७ मित्रश्री	—सुमित्र
८ कपिला	—कपिल
९ पद्मावती	—पद्म, पद्मक
१० अश्वसेना	—अश्वसेन

११ पौण्ड्रा	—पौण्ड्र
१२ रत्नवती	—रत्नगर्भ, सुगर्भ
१३ सोमदत्तपुत्री	—चन्द्रकांत, शशिप्रभ
१४ वेगवती	—वेगवान, वायुवेग
१५ मदनवेगा	—दृढमुष्टि, अनावृष्टि, हिममुष्टि
१६ बंधुमति	—बंधुसेने, सिंहसेन
१७ प्रियंगुसुंदरी	—शिलायुध
१८ प्रभावती	—गांधार, पिंगल
१९ जरा	—जरत्कुमार, वाह्लिक
२० अवंती	—समुख, दुर्मुख, महारथ
२१ रोहिणी	—बलदेव, सारण, विदुरथ
२२ बालचन्द्रा	—वज्रदंष्ट्र, अमितप्रभ
२३ देवकी	—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल शत्रुघ्न, जितशत्रु, श्रीकृष्ण

वसुदेव के पुत्र	पुत्रों की संतान
जरत्कुमार	—वसुध्वज, सुवसु, भीमवर्मा, कापिष्ठ, अजातशत्रु शत्रुसेन, जितारि, जितशत्रु आदि
बलदेव	—उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शक्रन्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान, दशरथ, देवनन्द, विद्रुम, शान्तनु, पृथु, शतधनु, नरदेव, महाधनु, रोमशैल्य
श्रीकृष्ण	—भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुसंजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गंभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मी, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शङ्ख, प्रद्युम्न, शम्ब, इत्यादि[४]

४, जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश भा० १, पृ० ३५८ से उद्धृत

चार्ट नं०—६ वैदिक परम्परा

विष्णुपुराण के अनुसार[5] उग्रसेन का वंश
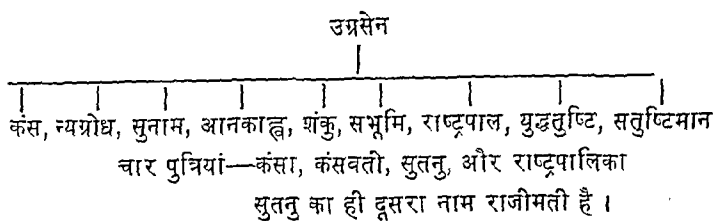
चार्ट नं०—७
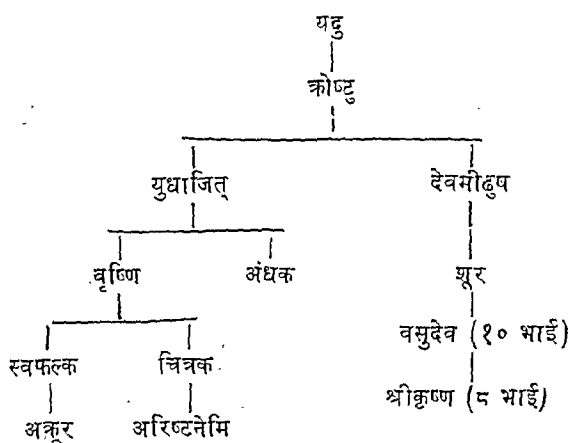
वैदिक हरिवंश[6] के अनुसार यादव वंश परिचय

१	यदु	६	रैवत
२	माधव	७	विश्वगर्भ
३	सत्वत	८	वसु
४	भीम	९	वसुदेव
५	अन्धक	१०	श्रीकृष्ण

---

५. विष्णुपुराण ४।१४।२०-२१

६. हरिवंश पर्व २, अध्याय ३७, श्लोक १२, और ४४ तथा हरिवंश, पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक

महाभारत के[7] अनुसार यादव वंश परिचय

१ यदु	५ चित्ररथ
२ क्रोष्टा	६ शूर (लघु प्रभ)
३ वृजिनिवान्	७ वसुदेव
४ उषंगु	८ श्रीकृष्ण (वासुदेव)

महाभारत द्रोणपर्व[8] के अनुसार यादव वंश की परम्परा

१ यदु

२ ....दो या उससे अधिक राजाओं का नामोल्लेख नहीं हुआ है।

३ देवमीढ	४ शूर
५ वसुदेव	६ श्रीकृष्ण

वैदिक परम्परा के पुराणों में इनकी वंशावली भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गई है।

पूरे विस्तार के लिए अवलोकन करें पारजीटर: एन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन पृ० १०४-१०७

जरासंध के पुत्र

१ कालयवन[9]	११ दुर्धर
२ सहदेव[10]	२२ गंधमादन
३ द्रुमसेन	१३ सिंहांक
४ द्रुम	१४ चित्रमाली
५ जलकेतु	१५ महीपाल
६ चित्रकेतु	१६ वृहद्ध्वज
७ धनुर्धर	१७ सुवीर
८ महीजय	१८ आदित्यनाग
९ भानु	१९ सत्यसत्व
१० काञ्चनरथ	२० सुदर्शन

---

७. महाभारत अनुशासन पर्व अ० १४७, श्लोक २७-३२

८. महाभारत द्रोणपर्व अ० १४४ श्लोक ६-७

९. त्रिषष्टि के अनुसार जो अग्नि में जलकर मरा।

१०. जिसे कृष्ण ने मगध का चतुर्थ हिस्सा राज्य दिया था।

२१ धनपाल
२२ शतानीक
२३ महाशुक्र
२४ महावसु
२५ वीराख्य
२६ गङ्गदत्त
२७ प्रवर
२८ पार्थिव
२९ चित्राङ्गद
३० वसुगिरि
३१ श्रीमान्
३२ सिंहकटि
३३ स्फुट
३४ मेघनाद
३५ महानाद
३६ सिंहनाद
३७ वसुध्वज
३८ वज्रनाभ
३९ महाबाहु
४० जितशत्रु
४१ पुरन्दर
४२ अजित
४३ अजितशत्रु
४४ देवानन्द
४५ शतद्रुत
४६ मन्दर
४७ हिमवान्
४८ विद्युत्केतु
४९ माली
५० कर्कोटक
५१ हृषीकेश
५२ देवदत्त
५३ धनंजय
५४ सगर
५५ स्वर्णबाहु
५६ मद्यवान्
५७ अच्युत
५८ दुर्जय
५९ दुर्मुख
६० वासुकि
६१ कम्बल
६२ त्रिशिरस्
६३ धारण
६४ माल्यवान्
६५ संभव
६६ महापद्म
६७ महानाग
६८ महासेन
६९ महाजय
७० वासव
७१ वरुण
७२ शतानीक
७३ भास्कर
७४ गरुत्मान्
७५ वेणुदारी
७६ वासुवेग
७७ शशिप्रभ
७८ वरुण
७९ आदित्यधर्मा
८० विष्णुस्वामी
८१ सहस्रदिक्
८२ केतुमाली
८३ महामाली
८४ चन्द्रदेव
८५ वृहद्बलि
८६ सहस्ररश्मि
८७ अर्चिष्मान्

(जैन ग्रन्थों के अनुसार)

परिशिष्ट ४

पारिभाषिक शब्द-कोश

अंग—तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट और गणधर द्वारा ग्रथित श्रुत।

अकल्पनीय—सदोष, अग्राह्य

अकेवली—छद्मस्थ, 'केवलज्ञान के पूर्व की अवस्था।

अघाती कर्म—आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणों का घात न करने वाले कर्म। वे चार हैं—वेदनीय, आयुष्य नाम और गोत्र।

अचित्त—निर्जीव पदार्थ

अचेलक—अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित

अणुव्रत—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का एकदेशीय त्याग।

अट्ठम तप—तीन दिन का उपवास।

अतिचार—'व्रत भंग के लिए सामग्री एकत्रित करना या एक देश से व्रत का खण्डन करना।

अतिशय—असाधारण विशेषताओं से भी अत्यधिक विशिष्टता।

अनगार—(अपवाद रहित ग्रहण की हुई व्रतचर्या)। गृहरहित साधु

अध्यवसाय—विचार।

अनशन—यावज्जीवन या परिमित काल के लिए तीन या चार प्रकार के आहार का त्याग करना।

अन्तराय कर्म—जो कर्म उदय में आने पर प्राप्त होने वाले लाभ आदि में बाधा उपस्थित करते हैं

अपवर्तन—कर्मों की स्थिति एवं अनुभाग-फलनिमित्तक शक्ति में हानि।

अभिगम—श्रमण के स्थान में प्रविष्ट होते ही श्रावक द्वारा आचरण करने योग्य पांच विषय ये हैं—(१) सचित्त द्रव्यों का त्याग (२) अचित्त द्रव्यों की मर्यादा करना, (३। उत्तरासंग करना, (४) साधु दृष्टिगोचर होते ही करबद्ध होना। (५) मन को एकाग्र करना।

अभिग्रह—प्रतिज्ञा विशेष

अरिहन्त—राग-द्वेष रूप शत्रुओं को पराजित करने वाले सशरीर परमात्मा।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा के द्वारा रूपी द्रव्यों को जानना।

अवसर्पिणी काल—कालचक्र का वह विभाग जिसमें प्राणियों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जाते हैं। आयु और अवगाहना कम होती जाती है। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार तथा पराक्रम का ह्रास होता है। इस समय में पुद्‌गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी हीन होते जाते हैं। शुभ भाव घटते हैं और अशुभ भाव बढ़ते हैं। इसके छः विभाग हैं—१ सुषम-सुषम, २ सुषम, ३ सुषम-दुषम, ४ दुःषम-सुषम, ५ दुःषम, और ६ दुःषम-दुःषम।

असंख्यप्रदेशी—वस्तु के अविभाज्य अंश को प्रदेश कहते हैं। जिसमें ऐसे प्रदेशों की संख्या असंख्य हो, वह असंख्यप्रदेशी कहलाता है। प्रत्येक जीव असंख्य प्रदेशी होता है।

आगार धर्म—गृहस्थधर्म (अपवाद सहित स्वीकृत व्रत चर्या)

आतापना—ग्रीष्म शीत आदि से शरीर को तापित करना।

आरा—काल विभाग

आर्तध्यान—प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग में चिंतित रहना।

आशातना—गुरुजनों पर मिथ्या आक्षेप करना, उनकी अवज्ञा करना।

आश्रव—कर्म को आकर्षित करने वाले आत्म-परिणाम। कर्मों के आगमन का द्वार

उत्सर्पिणी—कालचक्र का वह विभाग, जिसमें प्राणियों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाते हैं, आयु और अवगाहना बढ़ती जाती है तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम की वृद्धि

होती जाती है। इस समय में प्राणियों की तरह पुद्गलों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी क्रमशः शुभ होते जाते हैं।

उदीरणा—नियत समय के पहले ही कर्मों का प्रयत्नपूर्वक उदय में लाना।

उपयोग—चेतना का व्यापार विशेष—ज्ञान और दर्शन।

उपांग—अंगों के विषय को स्पष्ट करने वाले श्रुतकेवली या पूर्वधर आचार्यों द्वारा रचे गये आगम।

एक अहोरात्र प्रतिमा—साधु द्वारा चौविहार षष्टोपवास में ग्राम के बाहर प्रलम्बभुज होकर कायोत्सर्ग करना।

एक रात्रि प्रतिमा—साधु द्वारा एक चौविहार अष्टम भक्त में जिनमुद्रा (दोनों पैरों के बीच चार अंगुल का अन्तर रखते हुए सम अवस्था में खड़े रहना) प्रलम्ब बाहु, अनिमिष नयन, एक पुद्गल-निरुद्ध दृष्टि और कुछ झुके हुए वदन से एक रात तक ग्रामादि के बाहर कायोत्सर्ग करना। विशिष्ट संहनन, धृति, महासत्व से युक्त भावितात्मा गुरु द्वारा अनुज्ञात होकर ही प्रस्तुत प्रतिमा को स्वीकार कर सकता है।

एकावली तप—विशेष अनुक्रम से किया जाने वाला एक प्रकार का तप। इस तप का क्रम यंत्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी में एक वर्ष, दो महीने और दो दिन का समय लगता है। इसमें चार परिपाटी होती हैं। कुल समय चार वर्ष, आठ महीने और दो दिन लगता है। प्रथम परिपाटी में विकृति का वर्जन आवश्यक नहीं होता। दूसरी में विकृति वर्जन, तीसरी में लेप त्याग और चौथी में आयंबिल आवश्यक होता है।

एक हजार आठ लक्षणों के धारक—तीर्थंकर के शरीर में अर्थात् हाथ, पैर, वक्षस्थल तथा देह के अन्य अवयवों में सूर्य, चन्द्र, श्रीवत्स स्वस्तिक, शंख, चक्र, गदा, ध्वजा आदि शुभ चिह्न होते हैं। इन विविध चिह्नों की संख्या १००८ कही गई है।

औद्देशिक—परिव्राजक, श्रमण निर्ग्रन्थ आदि को देने के उद्देश्य से बनाया गया भोजन, वस्त्र अथवा मकान आदि।

औत्पत्तिकी बुद्धि—अदृष्ट, अश्रुत व अनालोचित पदार्थों को सहसा ग्रहण कर लेने वाली बुद्धि।

कर्म—आत्मा की सत् एवं असत् प्रवृत्तियों के द्वारा आकृष्ट एवं कर्म रूप में परिणत होने वाले पुद्गल विशेष।

कल्प—विधि, मर्यादा, आचार।

कुत्रिकापण—तीनों लोकों के सभी प्रकार के पदार्थ जहां पर प्राप्त होते हों उसे कुत्रिकापण कहते हैं। इस दुकान की विशेषता यह है कि जिस वस्तु का मूल्य साधारण व्यक्ति से पांच रुपया लिया जाता है, इभ्भ-श्रेष्ठी आदि से उसी का मूल्य एक हजार रुपया और चक्रवर्ती आदि से एक लाख रुपया लिया जाता है। दुकानदार किसी व्यंतर विशेष को अपने अधीन कर लेता है। वही उनकी व्यवस्था करता है। कितनों का यह भी अभिमत है कि ये दुकानें वणिक रहित होती हैं। व्यन्तर ही इन दुकानों को चलाते हैं।

कर्म निर्जरा—कर्मों को नष्ट करने का प्रकार।

कर्बट—छोटी दीवार से परिवेष्टित शहर।

कर्म उदीरणा—जो कर्म सामान्यतः भविष्य में फल देने वाले हैं उन्हें तपादि द्वारा उसी समय उदय में फलोन्मुख कर झाड़ देना।

कला—जैन शास्त्रों में पुरुषों के लिए बहत्तर और स्त्रियों के लिए ६४ बताई गई हैं। देखिए, ऋषभदेव एक परिशीलन का परिशिष्ट—१-२

कषाय—क्रोध, मान, माया, और लोभ।

कुमारवास—कुंवर रूप में रहना।

केवलज्ञान-केवलदर्शन—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घनघाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त पदार्थों के भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकाल के पर्यायों को हस्तामलकवत् जानना, केवलज्ञान है। इसी तरह उक्त पर्यायों को उक्त रूप से देखने की शक्ति का प्रकट होना 'केवल दर्शन' है। केवल का अर्थ अद्वितीय है। जो अद्वितीय केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक होते हैं, वे केवली, जिन, अर्हत् अरिहंत, सर्वज्ञ सर्वज्ञदर्शी आदि कहलाते हैं।

कौतुक-मंगल—रात्रि में आये हुए दुःस्वप्नों के फल के निवारण हेतु तथा शुभ शकुन के लिए चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का तिलक आदि करना कौतुक है। सरसों दही आदि मांगलिक वस्तुओं का प्रयोग मंगल है।

क्षीर समुद्र—जम्बूद्वीप को आवेष्टित करने वाला पाँचवां समुद्र, जिसमें दीक्षा ग्रहण के समय तीर्थकरों के लुंचित-केश इन्द्र द्वारा विसर्जित किये जाते हैं।

खादिम—मेवा आदि खाद्य पदार्थ

खेड—जिस गाँव के चारों ओर धूली का प्राकार हो। अथवा नदी और पर्वतों से वेष्टित नगर।

गच्छ—श्रमणों का समुदाय, अथवा एक आचार्य का परिवार

गति—एक योनि को छोड़कर दूसरी योनि में जाना।

गण—समान आचार व्यवहार वाले साधुओं का समूह

गणधर—लोकोत्तर ज्ञान-दर्शन आदि गुणों के गण को धारण करने वाले, तीर्थकरों के प्रधान शिष्य, जो उनकी वाणी सूत्र रूप में संकलित करते हैं।

गाथापति—गृहपति—विशाल ऋद्धिसम्पन्न परिवार का स्वामी। वह व्यक्ति जिसके यहां पर कृषि और व्यवसाय ये दोनों कार्य होते हैं।

गुणरत्न संवत्सर तप—जिस तप से विशेष निर्जरा होती है। या जिस तप में निर्जरा रूप विशेष रत्नों से वार्षिक समय बीतता है। इस क्रम में तपोदिन एक वर्ष से कुछ अधिक होते हैं, अतः वह संवत्सर कहलाता है। इसके क्रम में प्रथम मास में एकान्तर उपवास, द्वितीय मास में बेला, इस प्रकार क्रमशः बढ़ते हुए सोलह मास में सोलह-सोलह का तप किया जाता है। तपः काल में दिन में उत्कुटुकासन से सूर्याभिमुख होकर आतापना ली जाती है, और रात्रि में वीरासन से वस्त्र रहित रहा जाता है। तप में २३ मास ७ दिन लगते हैं और इस अवधि में ७३ दिन पारणे के होते हैं।

ग्यारह अंग—अंग सूत्र ग्यारह हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) आचारांग, (२) सूत्रकृताङ्ग (३) स्थानाङ्ग (४) समवायाङ्ग, (५) भगवती, (६) ज्ञाताधर्म कथा (७) उपासक दशांग, (८) अन्तकृतदशांग, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाक।

गोचरी—जैन श्रमणों का अनेक घरों से विधिवत् आहार गवेषण भिक्षाटन, माधुकरी।

गोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उच्चनीच शब्दों से अभिहित किया जाय। जाति, कुल, बल, रूप, तपस्या, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य प्रभृति का अहंकार न करना, उच्च गोत्र कर्म के बंध का निमित्त बनता है और इनका अहंकार करने से नीच गोत्र कर्म बंध होता है।

घातीकर्म—जैन दृष्टि से संसार परिभ्रमण का हेतु कर्म है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और योग के निमित्त से जब आत्म-प्रदेशों में कम्पन होता है तब जिस क्षेत्र में आत्म-प्रदेश होते हैं, उसी प्रदेश में रहे हुए अनन्तानन्त कर्मयोग्य (कार्मण जाति के) पुद्गल आत्म-प्रदेशों के साथ दूध-पानीवत् सम्बन्धित हो जाते हैं। उन पुद्गलों को कर्म कहा जाता है। कर्म के घाती और अघाती ये दो भेद हैं। आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणों

का घात करने वाले कर्म घाती कहलाते हैं। वे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, चार हैं।

चतुर्गति – नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति।

चतुर्दशपूर्व—उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद अस्ति-नास्तिप्रवाद, ज्ञान-प्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्म-प्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान प्रवाद, विद्या प्रवाद, अवध्यपूर्व, प्राणायुप्रवाद, क्रिया विशाल, लोकबिन्दुसार ये चौदह पूर्व दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के अन्तर्गत हैं।

चतुरंगिनी सेना—हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की सेना।

चतुर्थ भक्त—उपवास, चार प्रकार के आहार का त्याग।

चतुष्क-चत्वर—जहां पर चार मार्ग मिलते हों।

चारण ऋद्धिधर—जंघाचारण व विद्याचारण मुनिराज।

जंघाचारण लब्धि—यह लब्धि अष्टम तप करने वाले मुनि को प्राप्त होती है। जंघा से सम्बन्धित किसी एक व्यापार से तिर्यक् दिशा की एक ही उडान में वह तेरहवें रुचकवर द्वीप तक पहुँच सकता है। पुनः लौटता हुआ वह एक कदम आठवें नन्दीश्वर द्वीप पर रखकर दूसरे कदम में जम्बूद्वीप के उसी स्थान पर पहुँच सकता है जहाँ से वह चला था। यदि वह उडान ऊर्ध्व दिशा की ओर हो तो एक ही छलांग में वह मेरु पर्वत के पाण्डुक उद्यान तक पहुँच सकता है। और पुनः लौटते समय एक कदम नन्दनवन में रखकर दूसरे कदम में जहां से चला था वहां पहुँच सकता है।

विद्याचारण लब्धि—यह दिव्य शक्ति षष्ठभक्त (बेला) तप करने वाले भिक्षु को प्राप्त हो सकती है। श्रुत-विहित ईषत् उपष्टम्भ से दो उड़ान में आठवें नन्दीश्वर द्वीप तक पहुँचा जा सकता है। प्रथम उड़ान में मानुषोत्तर पर्वत तक जाया जा सकता है। पुनः लौटते समय एक ही उडान में मूल स्थान पर आया जा सकता है। इसी प्रकार ऊर्ध्व दिशा में दो उड़ान में मेरु तक और पुनः लौटते समय एक ही उड़ान में प्रस्थान-स्थान तक पहुँचा जा सकता है।

चारित्र – आत्म-विशुद्धि के लिए किया जाने वाला सम्यक् आचरण

च्यवन—मरण, देवगति का आयुष्य पूर्ण कर अन्य गति में जाना।

च्यवकर—च्युत होकर, देवलोक से निकलकर। जैन साहित्य में यह शब्द उन आत्माओं के लिए प्रयुक्त होता है जो देव आयुष्य पूर्ण कर मानवादि अन्य योनि में जन्म धारण करती हैं।

चौबीसी—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में होने वाले चौबीस तीर्थंकर।

छट्ठ—(षष्ट) दो दिन का उपवास; वेला।

छद्मस्थ—घातीकर्म के उदय को छद्म कहते हैं। इस अवस्था में स्थित आत्मा छद्मस्थ कहलाती है। जहां तक केवलज्ञान की उपलब्धि नहीं होती है वहां तक वह छद्मस्थ कहलाती है।

जातिस्मरण ज्ञान—पूर्वजन्म की स्मृति कराने वाला ज्ञान। इस ज्ञान के बल से व्यक्ति एक से लेकर नौ पूर्व-जन्मों को जान सकता है। एक मान्यता के अनुसार नौ सौ भव भी जान सकता है।

जिन—राग-द्वेष रूप शत्रुओं को जीतने वाली आत्मा। (अर्हत् तीर्थंकर आदि इसके अनेक पर्याय हैं।)

जिनकल्पिक—गच्छ से पृथक् होकर उत्कृष्ट चारित्र-साधना के लिए प्रयत्नशील साधक। उसका आचार जिन-तीर्थंकरों के आचार के समान कठोर होता है, अतः इसे जिनकल्प कहा जाता है। इसमें साधक जंगल आदि एकान्त शान्त स्थान में अकेला रहता है। रोग आदि होने पर उसके उपशमन के लिए प्रयत्न नहीं करता। शीत, ग्रीष्म आदि प्राकृतिक कष्टों से विचलित नहीं होता। देव, मानव और तिर्यंच आदि के उपसर्गों से भयभीत होकर अपना मार्ग नहीं बदलता। अभिग्रहपूर्वक भिक्षा लेता है और अहर्निश ध्यान तथा कायोत्सर्ग में लीन रहता है। यह साधना विशेष संहननयुक्त साधक के द्वारा विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न होने के अनन्तर ही की जा सकती है।

जिनमार्ग—वीतराग द्वारा प्ररुपित धर्म

ज्ञान—जानना सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के सामान्य धर्मों को गौण कर केवल विशेष धर्मों को ग्रहण करना।

ज्ञानावरणीय—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

तत्त्व—हार्द, पदार्थ।

तीर्थंकर—तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले आप्त पुरुष।

तीर्थंकर नामकर्म—जिस नाम कर्म के उदय से जीव तीर्थंकर रूप में उत्पन्न होता है।

तीर्थ—जिससे संसार समुद्र तिरा जा सके। तीर्थंकरों का उपदेश, उनको धारण करने वाले गणधर व ज्ञान, दर्शन, चारित्र को धारण करने वाले साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ को भी तीर्थ कहा जाता है।

दर्शन—सामान्य विशेपात्मक पदार्थ के विशेप धर्मों को गौणकर केवल सामान्य धर्मो को ग्रहण करना। दर्शन का दूसरा अर्थ फिलोसफी है।

दशार्ह—समुद्रविजय, आदि दस यादवों को दशार्ह कहा जाता है। उनके समूह को दशार्ह चक्र भी कहा जाता है।

दिक्कुमारियां—तीर्थकरों का प्रसूति कर्म करने वाली देवियां। इनकी संख्या ५६ है। इनके आवास विभिन्न होते हैं। आठ अधोलोक में, आठ ऊर्ध्वलोक में-मेरु पर्वत पर, आठ पूर्व रुचकाद्रि पर, आठ दक्षिण रुचकाद्रि पर, आठ पश्चिम रुचकाद्रि पर आठ उत्तर रुचकाद्रि पर, चार विदिशा के रुचक पर्वत पर, और चार रुचक द्वीप पर रहती हैं।

देवानुप्रिय—आदर व स्नेहपूर्ण सम्वोधन।

देवदूष्यवस्त्र—देव द्वारा प्रदत्त वस्त्र।

द्वादशांगी—तीर्थंकरों की वाणी का गणधरों द्वारा ग्रन्थ रूप में होने वाला संकलन अंग कहलाता है। वे संख्या में वारह होते हैं, अतः वह सम्पूर्ण संकलन द्वादशाङ्गी कहलाता है। पुरुष के शरीर में जैसे दो पैर, दो जंघाएँ, दो ऊरु, दो गात्रार्द्ध (पार्श्व) दो वाहु एवं गर्दन और एक मस्तक होता है उसी प्रकार श्रुत पुरुष के भी वारह अंग हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ आचारांग, २ सूत्रकृताङ्ग ३ स्थानाङ्ग ४ समवायाङ्ग, ५ विवाह प्रज्ञप्ति, ६ ज्ञाता धर्म कथांग ७ उपासक दशांग, ८ अन्तकृतदशा ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्न-व्याकरण ११ विपाक, १२ दृष्टिवाद।

धर्मयान—धार्मिक कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला वाहन।

नरक—अधोलोक के वे स्थान जहां घोर-पापाचरण करने वाले जीव अपने पापों का फल भोगने के लिए उत्पन्न होते हैं। नरक सात हैं—

(१) रत्नप्रभा—रत्नों की सी आभा से युक्त।

(२) शर्कराप्रभा— भाले वरछी आदि से भी अधिक तीक्ष्ण कंकरों से परिपूर्ण।

(३) वालुकाप्रभा—भडभूंजे की भाड़ की उष्ण वालू से भी अधिक उष्ण वालू।

(४) पंकप्रभा—रक्त मांस और मवाद जैसे कीचड़ से व्याप्त।

(५) धूमप्रभा—राई, मिर्च के धुएं से भी अधिक खारे धुएं से परिपूर्ण।

(६) तमःप्रभा—घोर अंधकार से परिपूर्ण

(७) महातमःप्रभा—घोरातिघोर अंधकार से परिपूर्ण

निकाचित—गाढ, जिन कर्मों का फल बंध के अनुसार निश्चित ही भोगा जाता है।

निदान—फलप्राप्ति की आकांक्षा—यह एक प्रकार का शल्य है। राजा देवता, आदि की ऋद्धि को देखकर या सुनकर मन में यह अध्यवसाय करना कि मेरे द्वारा आचीर्ण ब्रह्मचर्य, तप आदि अनुष्ठानों के फलस्वरूप मुझे भी ये ऋद्धियां प्राप्त हों।

निर्जरा—कर्म-मल का एक देश से क्षय होना।

नौ योजन—३६ कोस। चार कोस का एक योजन होता है।

पंच मुष्टिक लुंचन—मस्तक को पाँच भागों में विभक्त कर हाथों से बालों को उखाड़ना।

पाँच दिव्य—तीर्थंकर या विशिष्ट महापुरुषों के द्वारा आहार ग्रहण करने के समय प्रकट होने वाली पाँच विभूतियाँ।

१ विविध रत्न, २ वस्त्र, ३ एवं फूलों की वर्षा, ४ गंन्धोदक वर्षा, ५ देवताओं के द्वारा दिव्य घोष।

परीषह—साधु जीवन में होने वाले विविध प्रकार के शारीरिक कष्ट

पर्याय—पदार्थों का बदलता हुआ रूप।

पल्योपम—एक दिन से सात दिन की आयु वाले उत्तर कुरु में उत्पन्न हुए यौगलिकों के केशों के असंख्य खण्ड कर एक योजन प्रमाण गहरा, लम्बा व चौड़ा कुंआ ठसाठस भरा जाय। वह इतना दबादबाकर भरा जाए कि जिससे उसे अग्नि जला न सके। पानी अन्दर प्रवेश न कर सके और चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना भी उस पर से गुजर जाय तो भी जो अंश मात्र भी लचक न जाय। सौ-सौ वर्ष के पश्चात् उस कुए में से एक-एक केश-खण्ड निकाला जाय। जितने समय में वह कुआ खाली होता है, उतने समय को पल्योपम कहते हैं।

पादोपगमन—अनशन का वह प्रकार, जिसमें श्रमणों द्वारा दूसरों की सेवा का और स्वयं की चेष्टाओं का त्याग कर पादप-वृक्ष की कटी हुई डाली की तरह निश्चेष्ट होकर रहना। जिसमें चारों प्रकार के आहार का त्याग होता है। यह निर्हारिम और अनिर्हारिम रूप से दो प्रकार का है।

(१) निर्हारिम—जो साधु उपाश्रय में पादोपगमन अनशन करते हैं, मृत्यूपरान्त उनके शव को अग्नि संस्कार के लिए उपाश्रय से बाहर लाया जाता है अतः वह देह त्याग निर्हारिम कहलाता है। निर्हार का अर्थ है—बाहर निकालना।

(२) अनिर्हारिम—जो साधु अरण्य में ही पादपोपगमपूर्वक देहत्याग करते हैं, उनका शव संस्कार के लिए कहीं पर भी बाहर नहीं ले जाया जाता, अतः वह देह-त्याग अनिर्हारिम कहलाता है।

पाप—अशुभ कृत्य। उपचार से पाप के कारण भी पाप कहलाते हैं।

पौषध—एक अहोरात्र के लिए चारों प्रकार के आहार और पाप पूर्ण, प्रवृत्तियों का त्याग करना।

प्रत्याख्यान—त्याग करना।

प्रायश्चित्त—साधना में लगे हुए दूषण की विशुद्धि के लिए हृदय से पश्चात्ताप करना। उसके दस प्रकार हैं :—

(१) आलोचना—लगे हुए दोष गुरु या रत्नाधिक के समक्ष यथावत् निवेदन करना।

(२) प्रतिक्रमण—अशुभ योग से शुभ योग में आना; लगे हुए दोषों के लिए साधक द्वारा पश्चात्ताप करते हुए कहना, मेरा पाप मिथ्या हो।

(३) तदुभय—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों।

(४) विवेक—अनजान में आधाकर्म आदि दोष से युक्त आहार आ जाय तो ज्ञात होते ही उसे उपभोग में न लेकर त्याग देना।

(५) कायोत्सर्ग—एकाग्र होकर शरीर की ममता का त्याग करना।

(६) तप—अनशन आदि बारह प्रकार की तपश्चर्या।

(७) छेद दीक्षा पर्याय को कम करना। इस प्रायश्चित्त के अनुसार जितना समय कम किया जाता है उस अवधि में दीक्षित छोटे साधु दीक्षा पर्याय में उस दोषी साधु से बड़े एवं वन्दनीय हो जाते हैं।

(८) मूल—मूलव्रत भंग होने पर पुनर्दीक्षा

(९) अनवस्थाप्य तप विशेष के पश्चात् पुनर्दीक्षा।

(१०) पारञ्चितक—संघ-बहिष्कृत साधु द्वारा एक अवधि विशेष तक साधु-वेश परिवर्तित कर जन-जन के बीच अपनी आत्मनिन्दा करना।

प्रीतिदान—शुभ संवाद लाने वाले कर्मकर को दिया जाने वाला दान।

प्रतिलाभ—लाभान्वित करना, बहराना

पौषधशाला—धर्म-ध्यान एवं पोषध करने का स्थान विशेष।

बंध—आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों का घनिष्ट सम्बन्ध।

बलदेव—वासुदेव के ज्येष्ठ विमातृ बन्धु। हरएक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में नौ-नौ होते हैं। कृष्ण के भ्राता बलदेव नौवें बलदेव थे, इनका नाम बलराम था। बलदेव की माता चार स्वप्न देखती है वासुदेव की मृत्यु के

पश्चात् दीक्षा लेकर घोर तपस्या करके आत्म-साधना करते हैं। कुछ बलदेव मोक्षगामी होते हैं, पर ये कृष्ण के भ्राता बलदेव स्वर्ग में गये।

बेला—दो दिन का उपवास, षष्ठभक्त।

ब्रह्मलोक—पाँचवां स्वर्ग

भक्त प्रत्याख्यान—जीवन पर्यन्त तीन व चार प्रकार के आहार का त्याग करना।

भव्य—मोक्ष प्राप्ति की योग्यता वाला जीव।

मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

मनः पर्यव—मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान।

महाप्रतिमा—साधु के अभिग्रह विशेष को महाप्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा १२ प्रकार की हैं। बारहवीं प्रतिमा एक रात्रि की होती है। जिसमें शमशान आदि में जाकर एकाग्रभाव से आत्मचिन्तन करना होता है।

मासखमण—एक महीने का उपवास।

माण्डलिक राजा—एक मण्डल का अधिपति राजा।

मानसिक भाव—मनोगत विचार

मुक्त—सम्पूर्ण कर्म क्षय कर जन्ममरण से रहित होना।

मेरुपर्वत की चूलिका—जम्बूद्वीप के मध्य भाग में एक लाख योजन समुन्नत व स्वर्ण कान्तिमय यह पर्वत है। इसी पर्वत पर चालीस योजन की चोटी है। इसी पर्वत पर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस, और पाण्डुक नामक चार वन हैं। भद्रशाल वन धरती की बराबरी पर पर्वत को घेरे हुए है। पाँच सौ योजन ऊपर नन्दनवन है, जहां क्रीडा करने के लिए देवता भी आया करते हैं। बासठ हजार पाँच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है। चूलिका के चारों ओर फैला हुआ पाण्डुक वन है। उसी वन में स्वर्णमय चार शिलाएँ हैं जिन पर तीर्थंकरों के जन्म महोत्सव होते हैं।

मोक्ष—सर्वथा कर्म-क्षय के अनन्तर आत्मा का अपने स्वरूप में अधिष्ठान।

योग—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति।

योजन—चार कोश।

रजोहरण—जैन श्रमणों का उपकरण विशेष जो भूमि आदि प्रमार्जन के काम में आता है।

लब्धि—तपश्चर्या आदि से प्राप्त होने वाली विशिष्ट शक्ति।

लब्धिधर—विशिष्ट शक्तिसम्पन्न

लेश्या—योग वर्गणा के अन्तर्गत पुद्गलों की सहायता से होने वाला आत्म-परिणाम।

लोक—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गल और जीव की अवस्थिति जहां हो वह आकाशखण्ड।

लौकान्तिक—पाँचवें ब्रह्मदेवलोक में छह प्रतर हैं। मकानों में जैसे मंजिल होती है वैसे ही स्वर्गों में प्रतर होते हैं। तीसरे अरिष्ट प्रतर के पास दक्षिण दिशा में त्रसनाडी के भीतर चार दिशाओं में और चार विदिशाओं में आठ कृष्ण राजियां हैं। लौकान्तिक देवों के वहां नौ विमान हैं। आठ विमान आठ कृष्ण राजियों में हैं। और एक मध्यभाग में है। उनके नाम इस प्रकार हैं :—(१) अर्ची, (२) अर्चिमाल, (३) वैराचन, (४) प्रभंकर (५) चन्द्राभ, (६) सूर्याभ, (७) शुक्राभ, (८) सुप्रतिष्ठ (९) रिष्टाभ (मध्यवर्ती)। एकभवावतारी होने के कारण ये लोकान्तिक कहलाते हैं। विषय-वासना से ये प्राय: मुक्त रहते हैं। अत: इन्हें देवर्षि भी कहते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार तीर्थंकरों के दीक्षा के समय ये उद्‌बोधन देने हेतु आते हैं।

वर्षीदान—तीर्थंकरों द्वारा एक वर्ष तक प्रतिदिन दिया जाने वाला दान।

वासुदेव—पूर्वभव में किये गये निदान के अनुसार नरक या स्वर्ग से आकर वासुदेव के रूप में अवतरित होते हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल में ये नौ-नौ होते हैं। उनके गर्भ में आने पर माता सात स्वप्न देखती है। शरीर का वर्ण कृष्ण होता है। भरतक्षेत्र के तीन खण्डों के अधिपति होते हैं। प्रतिवासुदेव को मारकर ही त्रिखण्डाधिपति होते हैं। इनके सात रत्न होते हैं—(१) सुदर्शन चक्र, (२) अमोघ खड्ग, (३) कौमोदकी गदा (४) धनुष्य अमोघबाण, (५) गरुडध्वजरथ, (६) पुष्पमाला, (७) कौस्तुभमणि।

विभंग ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना केवल आत्मा के द्वारा रूपीद्रव्यों को जानना अवधिज्ञान है। मिथ्यात्वी का यही ज्ञान विभंग कहलाता है।

विराधक—ग्रहण किये हुए व्रतों की आराधना नहीं करने वाला, या विपरीत आचरण करने वाला अथवा अपने दुष्कृत्यों का प्रायश्चित्त करने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाला।

वैमानिक—देवों का एक प्रकार

वैयावृत्ति—आचार्य, उपाध्याय, शैक्ष, ग्लान, तपस्वी, स्थविर साधर्मिक, कुल, गण, और संघ की आहार आदि से सेवा करना।

वैश्रवण—कुबेर

शय्यातर—साधु जिसके मकान में रहते हैं, वह शय्यातर कहलाता है।

शल्य—जिससे पीड़ा हो। वह तीन प्रकार का है।

(१) मायाशल्य—कपट भाव रखना।

(२) निदानशल्य—राजा या देवता आदि की ऋद्धि को निहार कर मन में इस प्रकार दृढ़ निश्चय करना कि मुझे भी मेरे तप जप का फल हो तो इस प्रकार की ऋद्धियां प्राप्त हों।

(३) मिथ्या दर्शन शल्य – विपरीत श्रद्धा का होना।

शिक्षाव्रत - पुनः पुनः सेवन करने योग्य अभ्यास प्रधान व्रत, वे चार हैं—(१) सामायिक व्रत, (२) देशावकाशिक व्रत, (३) पौषधोपवासव्रत, (४) अतिथि संविभाग व्रत।

शुक्लध्यान—निर्मल प्रणिधान उत्कृष्ट समाधि अवस्था। इसके चार प्रकार है—(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार, (२) एकत्व वितर्क अविचार (३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपति (४) समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति।

शेषकाल—वर्षा-चातुर्मास के अतिरिक्त का समय।

शैलेशी अवस्था—चौदहवें गुणस्थान में जब मन, वचन, और काय योग का निरोध हो जाता है तब उसे शैलेशी अवस्था कहते हैं। इसमें ध्यान की पराकाष्ठा के कारण मेरु सदृश निष्प्रकम्पता व निश्चलता आती है।

श्रुतज्ञान—शब्द संकेत के आधार पर होने वाला ज्ञान।

श्रुतभक्ति—श्रुतज्ञान का अनवद्यप्रचार प्रसार तथा उसके प्रति होने वाली जन-अरुचि को दूर करना।

संघ—गण के समुदाय को संघ कहते हैं।

संथारा—अन्तिम समय में आहार आदि का परित्याग करना।

संलेखना—शारीरिक तथा मानसिक एकाग्रता से कषाय आदि का शमन करते हुए तपस्या करना।

संवर—कर्म बन्ध करने वाले आत्म परिणामों का निरोध!

संस्थान—शरीर का आकाश।

समचतुरस्र—पुरुष जब सुखासन (पालथीं लगाकर) से बैठता है तो उसके दोनों घुटनों का और दोनों बाहुमूल-स्कंधों का अन्तर (दायां घुटना बायां स्कंध, बायां घुटना दायां स्कंध) इन चारों का बराबर अन्तर रहे वह समुचतुरस्र संस्थान कहलाता है। भगवती सूत्र की टीका में अभयदेव ने लिखा है—जो आकार सामुद्रिक आदि लक्षण शास्त्रों के अनुसार सर्वथा

योग्य हो वह समचतुरस्र कहलाता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती वासुदेव और बलदेव का यही संस्थान होता है।

संहनन— शरीर की अस्थियों का बंधन।

समय—काल का सूक्ष्मतम अविभाज्य अंश।

समवसरण—तीर्थंकर परिषद् अथवा वह स्थान जहां पर तीर्थंकर का उपदेश होता है।

समाचारी—साधुओं को अवश्य करणीय क्रियाएं व व्यवहार।

समाधिमरण—श्रुत और चारित्र में स्थित रहते हुए निर्मोह भाव से मृत्यु। अर्थात् राग द्वेष से रहित होकर समभाव पूर्वक पण्डित मरण।

समिति—संयम के अनुकूल प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। वे पाँच हैं

(१) **ईर्या**—अहिंसा के पालन के निमित्त युग परिमाण भूमि को देखते हुए तथा स्वाध्याय व इन्द्रियों के विषयों का वर्जन करते हुए चलना।

(२) **भाषा**— भाषा-दोषों का परिहार करते हुए पाप रहित एवं सत्य, हित, मित और असंदिग्ध वचन बोलना।

(३) **एषणा**—गवेषणा, ग्रहण और ग्रास सम्बन्धी एषणा के दोषों का परिहार करते हुए आहार पानी आदि औधिक उपधि और शय्या, पाट औपग्रहिक उपधि का अन्वेषण करना।

(४) **आदान निक्षेप**—वस्त्र, पात्र, प्रभृति उपकरणों को सावधानीपूर्वक लेना व रखना।

(५) **उत्सर्ग**—मल-मूत्र, खेल, थूंक, कफ, आदि का विधि पूर्वक पूर्वदृष्ट एवं प्रमार्जित निर्जीव भूमि पर विसर्जन करना।

सम्यक्त्व—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा

सम्यक्त्वी—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा से सम्पन्न

सागरोपम— पल्योपम की दस कोटाकोटी से एक सागरोपम होता है। पल्योपम देखें। उपमाकाल विशेष।

सावद्य—पापसहित

सिद्ध—कर्मों का निर्मूल नाश कर जन्म-मरण से मुक्त हुई आत्मा।

सिद्धि—सर्व कर्मो के क्षय से प्राप्त होने वाली अवस्था, चरम लक्ष्य की प्राप्ति।

स्थविर- वृद्ध स्थविर तीन प्रकार के होते हैं—१ प्रव्रज्यास्थविर—जिन्हें प्रव्रजित हुए बीस वर्ष हो गये हों, २ वयस्थविर—जिनका वय साठ वर्ष का हो गया हो (३) श्रुत स्थविर—जिन्होंने स्थानाङ्ग समवायांग आदि का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया हो।

परिशिष्ट ५

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूची

●

अन्तकृद्दशांग —आचार्य श्री हस्तीमल जी म०

अन्तगड़ दशा —जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना

अष्टाध्यायी —पाणिनी,

अतीत का अनावरण —मुनि श्री नथमल जी

अरिष्टनेमि चरित — श्री रत्नप्रभ सूरि

अरिष्टनेमि चरित —श्री विजय गणी

अर्हत् अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण —श्री चन्द रामपुरीया,

अथर्ववेद

अमयस्वामी चरित्र —मुनि रत्नसूरि रचित अनु० भानुचन्द्रविजय

अमर कोष —निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ७, —राजेन्द्र सूरि, रतलाम

अभिधान चिन्तामणि (कोप) —हेमचन्द्राचार्य रचित

अंगुत्तर निकाय —सं० भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा

अन्नल्स आफ दी भण्डारकर रिचर्स इन्स्टीट्यूट पत्रिका —जिल्द २३

अरिष्टनेमि —धीरजलाल टोकरशी शाह

आवश्यक निर्युक्ति —आचार्य भद्रबाहु

आवश्यक निर्युक्ति-मलयगिरिवृत्ति सहित —आगमोदय० बम्बई

आवश्यक चूर्णि जिनदास गणी —ऋषभदेव केसरीमल संस्था, रतलाम
आचारांग —प्रसिद्धवक्ता सौभाग्यमल जी म०
आदि पुराण —आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
आदि पुराण में प्रतिपादित भारत —नेमिचन्द्र जैन, वर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी
आवश्यक निर्युक्ति दीपिका —माणिक्यशेखर, सूरत
इसिभासियं —श्री सुधर्मा ज्ञान मन्दिर, कान्दावाडी बम्बई
इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली
इण्डियन एन्टीक्वेरी, सन् १९२५, सप्लिमेण्ट
इण्डिया अजड्स्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्ट्स ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म
उत्तरपुराण —आचार्य गुणभद्र, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
उत्तराध्ययन —श्वे० तेरापंथी महासभा, कलकत्ता १
उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन — मुनि नथमल जी
उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति —वेतालवादी शान्ति सूरि
उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति
उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास —प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी
उपदेशमालाप्रकरण (पुष्पमाला)— मलधारी हेमचन्द्र प्रकाशक-ऋषभदेवजी केशरीमल, संस्था इन्दौर
ऋषभदेव : एक परिशीलन —देवेन्द्र मुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
ऋग्वेद
ऐतरेय ब्राह्मण
ऐतरेय आरण्यक
अेरीयन —चिनोक आवृत्ति
एथनिक सेटिलमेन्ट इन् एन्शियन्ट इण्डिया
ऐंटरयेंट ज्यागरफी आफ इण्डिया
औपपातिक सूत्र
ओघनिर्युक्ति, श्रीमती वृत्ति सहित, द्वि० भद्रबाहु प्र० आगमोदय समिति
कल्पसूत्र —आगमप्रभाकर मुनि पुण्यविजयजी सम्पादित
कल्पसूत्र —देवेन्द्र मुनि सम्पादित, श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान, गढ़ सिवाना
कल्पसूत्र कल्प सुबोधिका —उपाध्याय विनय विजय जी

जातक (प्रथम खण्ड) —ईशानचन्द्र घोष

जातक मानचित्र —भदन्त आनन्द कौशल्यायन

ज्योग्राफिकल एण्ड इकोनॉमिक स्टडीज इन दी महाभारत

जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग १

ज्यागरैफिकल डिक्शनरी आव ऐंशेंट ऐंड मिडिवल इण्डिया —नन्दलाल दे रचित (ल्युजाक ऐंड कम्पनी, लन्दन)

जातक पालि (त्रिपिटक) —भिक्षु जगदीश काश्यप,

जयवाणी —आचार्य जयमल जी म०, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा

जैन दर्शन और संस्कृति परिषद् शोधपत्र —जैन श्वे० तेरापंथी महासभा-कलकत्ता

जिनवाणी (पत्रिका) —सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

जवाहर किरणावली —आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, २ भाग, —जी० पी० मलालशेखर-सम्पादित (लन्दन)

तैत्तिरीयारण्यक

थावच्चापुत्र रास —मुनि जीवराज जी

थेरगाथा —(हिन्दी अनुवाद) अ० भिक्षु धर्मरत्न एम० ए महावोधिसभा सारनाथ, बनारस

थेरीगाथा —(हिन्दी अनुवाद) अ० भरतसिंह उपाध्याय सस्तासाहित्य मंडल, दिल्ली

थेरीगाथा —बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण

दशाश्रुतस्कंध— —आत्माराम जी महाराज,

दीघनिकाय —नालन्दा महाविहार से

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता

द्विसंधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य —धनञ्जय

देवी भागवत

दरबार —अनकचन्द्र भायालाल नो लेख

दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ ईण्डिया

दशवैकालिक

नन्दीसूत्र —श्री पुण्यविजय जी म० सम्पादित

नन्दीसूत्र —श्री हस्तीमल जी म०

नन्दीसूत्र —मलयगिरिवृत्ति, आगमोदय समिति

नेमवाणी —(नेमिचन्द्र जी म०) पं० प्रवर पुष्कर मुनि जी म० सम्पादित
नेमिनाथ चरित्र —विजयसेन सूरि
नेमिनाथ अने राजुल —वैद्यकवि दुर्लभश्यामध्रुव, (गुजराती)
नेमिनाथ चरित्र —संकलित-उपाध्याय कीर्तिराज, मुनिहर्षविजय विरचित
नेमिनाथ चरित्र —हरिसेन
नेमिनाथ चरित्र —तिलकाचार्य
नेमिनिर्वाण काव्य —वाग्भट्ट
नेमिनाथ रास —सुमति गणी
नेमिनाह चरिउ —द्वि० हरिभद्र सूरि; लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद-९
नेमिनाथ चरित —पं० काशीनाथ जैन
नेम-राजुल (गुजराती) —जया बहन ठाकोर
नारद पुराण
निशीथ चूर्णि —उपा० अमर मुनि सं०, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा
नेमिरंगरत्नाकर छंद —कवि लावण्यसमय रचित, डा० शिवलाल जेसलपुरा, ला० द० भा० वि० अहमदाबाद-९
नेमिचरित —विक्रम कवि रचित, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई
निरियावलिका
पाली-इंग्लिश-डिक्शनरी — रीस डेविड्स तथा विलीयम स्टेड सम्पादित (पाली टेक्स सोसाइटी, लंदन)
पाण्डव पुराण —शुभचन्द्राचार्य, सोलापुर से
प्रभास पुराण
प्रज्ञापना —पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित
प्रवचन सारोद्धार —नेमिचन्दसूरि, प्र० देवचन्द लालभाई फंड
प्राचीन तीर्थमाला संग्रह —आचार्य विजयधर्मसूरि सम्पादित
पाण्डव चरित्र (महाकाव्यम्) — मलधारी देवप्रभसूरि विरचित —मेसर्स ए० एम० एण्ड कम्पनी पालीताणा (सौराष्ट्र)
पाण्डव चरित्र —अनुवादक भीमसिंह माणेक, सन् १९७८
प्रद्युम्न चरितम् —महासेनाचार्य विरचितम्, माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति बम्बई
प्रद्युम्न चरित्र —उपाध्याय रत्नचन्द्रगणी, भाषांतर—

विशेषावश्यक भाष्य — यशोविजय ग्रन्थमाला
विविध तीर्थकल्प —आचार्य जिनप्रभ सूरि सं० जिनविजय गणी
वसुदेव हिण्डी (१-२) —संघदासगणी, पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित आत्मानन्द सभा भावनगर
वसुदेव हिण्डी अनु० डा० भोगीलाल साण्डेसरा
वायु पुराण
व्यवहार सूत्र सभाष्य —सं० मुनि माणेक, वकील त्रिकमदास अगरचन्द
वासुदेव श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य —प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया
व्रज का सांस्कृतिक इतिहास —प्रभुदयाल मित्तल
विपाक सूत्र —पूज्य घासीलाल जी म०
वृहत्कल्प भाष्य वृत्ति —मुनि पुण्यविजय जी सम्पादित
वाल्मिकी रामायण
समवायाङ्ग —मुनि कन्हैयालाल 'कमल' सम्पादित
सूरदास —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
सांख्य कारिका —ईश्वरचन्द्र चौखम्बा विद्याभवन काशी
सामवेद
स्कन्ध पुराण
सूत्रकृताङ्ग वृत्ति —आचार्य शीलाङ्क
संस्कृत जैन साहित्य नो इतिहास —भाग-१-२, प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया
सूर सागर —नागरी प्रचारिणी सभा
सूर और उनका साहित्य —डा० हरवंशलाल शर्मा
सौराष्ट्र नुं इतिहास —शम्भुप्रसाद हरप्रसाद देसाई
सुत्तनिपात की भूमिका —धर्म रक्षित
समवायाङ्ग —जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर
सुत्तागमे —धर्मोपदेष्टा फूलचन्द जी म०
स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया
स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विटीज
[illegible]कृत साहित्य का इतिहास —वाचस्पति गैरोला
[illegible]डीज इन दी ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया
[illegible]ंगलविलासिनी

समराइच्च कहा
शिवपुराण
शिशुपालवध महाकाव्यम् —महाकवि माघ, चौखम्बा-विद्याभवन वाराणसी
शतपथब्राह्मण
शक्ति तंत्र
शत्रुंजय महात्म्य
शुक्ल यजुर्वेद
हिन्दी साहित्य में राधा —द्वारकाप्रसाद
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डा० रामकुमार वर्मा
/ हरिवंशपुराण भाग-१-२ —जिनसेनाचार्य माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई
हरिवंशपुराण —भारतीय ज्ञानपीठ काशी
हरिवंशपुराण (वैदिक)
हिन्दु मिलन मन्दिर (पत्रिका) —सूरत
हरिवंशपुराण —भट्टारक सकलकीर्ति
हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (मूल) —आचार्य हेमचन्द्र
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र —(गुजराती अनु०) जैन धर्म प्रचारक सभा भावनगर
ज्ञाता सूत्र
श्रमण भगवान् महावीर —पं० कल्याण विजयगणी
श्रीमद्भगवद् गीता

परिशिष्ट ६

लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियां

●

१ ऋषभदेव: एक परिशीलन (शोध प्रबन्ध) मूल्य ३)०० रु०

२ धर्म और दर्शन (निबन्ध) मूल्य ४)०० रु०

दोनों के प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी आगरा—२

३ भगवान् पार्श्व: एक समीक्षात्मक अध्ययन

(शोध प्रबन्ध) मूल्य ५)०० रु०

प्रकाशक—पं० मुनि श्रीमल प्रकाशन

जैन साधना सदन: २५६ नानापेठ पूना—२

४ साहित्य और संस्कृति (निबन्ध) मूल्य १०)०० रु०

प्रकाशक—भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बोक्स १०८-कचौड़ी गली, वाराणसी—१

५ चिन्तन की चांदनी (उद्बोधक चिन्तनसूत्र) मूल्य ३)०० रु०

६ अनुभूति के आलोक में (मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४)०० रु०

दोनों के प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (राज०)

७ संस्कृति के अंचल में (निबन्ध) मूल्य १)५० रु०

प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल; जोधपुर

८ कल्प सूत्र मूल्य : राजसंस्करण २०, रु० साधारण० १६)

प्रकाशक—श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान

गढ़ सिवाना, जिला बाड़मेर (राजस्थान)

९ अनुभव रत्न कणिका (गुजराती; चिन्तन सूत्र) मूल्य २) रु०
सन्मति साहित्य प्रकाशन व स्थानकवासी जैन संघ
उपाश्रयलेन घाटकोपर वम्बई—८४

१० चिन्तन की चांदनी (गुजराती भाषा में)
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भंडार, गांधी मार्ग (अहमदाबाद)

११ फूल और पराग (कहानियां) मूल्य १)५० रु०
१२ खिलती कलियाँ: मुस्कराते फूल (लघु रूपक) मूल्य ३)५० रु०
१३ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण: एक अनुशीलन
मूल्य १०) रु०
१४ बोलते चित्र (शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहानियां) मूल्य १)५० रु०
१५ बुद्धि के चमत्कार मूल्य १)५० रु०
१६ प्रतिध्वनि (विचारोत्तेजक रूपक) ३)५० रु०
सभी पुस्तकों के प्रकाशक—
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराड़ा (उदयपुर, राज०)

सम्पादित

१७ जिन्दगी की मुस्कान (प्रवचन संग्रह) मूल्य १)४० रु०
१८ जिन्दगी की लहरें ,, ,, मूल्य २)५० रु०
१९ साधना का राजमार्ग ,, ,, मूल्य २)५० रु०
२० रामराज (राजस्थानी प्रवचन) मूल्य १)०० रु०
२१ मिनख पणा री मोल (राज० प्रवचन) मूल्य १)०० रु०
सभी पुस्तकों के प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल, जोधपुर
२२ ओंकार : एक अनुचिन्तन मूल्य १)०० रु०
२३ नेमवाणी (कविवर पं० नेमिचन्द जी म० की
कविताओं का संकलन) मूल्य २)५० रु०
प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराड़ा उदयपुर, राज०

२४ जिन्दगी नो आनन्द (गुजराती प्रवचन) मूल्य० ३)२५ रु०
२५ जीवन नो झंकार ,, ,, मूल्य ४)७५ रु०
२६ सफल जीवन ,, ,, मूल्य ३)७५ रु०
२७ स्वाध्याय ,, ,, मूल्य ०)५० रु०
२८ धर्म अने संस्कृति (गुजराती निवन्ध मूल्य ४)०० रु०
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भण्डार गांधी मार्ग, अहमदाबाद—

शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

२९ कल्पसूत्र (गुजराती संस्करण)
३० विचार रश्मियाँ
३१ चिन्तन के क्षण
३२ महावीर जीवन दर्शन
३३ महावीर साधना दर्शन
३४ महावीर तत्त्व दर्शन
३५ सांस्कृतिक सौन्दर्य
३६ आगम मंथन
३७ अन्तगडदशा सूत्र
३८ अनेकान्तवाद : एक मीमांसा
३९ संस्कृति रा सुर
४० अणविंध्या मोती
४१ जैन लोक कथाएँ (नौ भाग)
४२ जैन धर्म : एक परिचय
४३ ज्ञाता सूत्र : एक परिचय
४४ महासती सोहनकुंवर जी : व्यक्तित्व और कृतित्व

मुनि श्री के सभी प्रकाशन इस पते पर प्राप्त हो सकें:

श्रीलक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गांधी मार्ग, अहमदाबाद-१

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१३	वदिक	वैदिक
२०	१२	चतन्य	चैतन्य
४३	२५	शत्र	शत्रु
४६	१६	अनगदेव	अनंगदेव
५२	१४	प्रस्तिथ	प्रस्थित
१५६	६	म्पदा	सम्पदा
१५६	७	१०००६६ श्रमणोपासक	१६६००० श्रमणोपासक
१५६	८	३०००३६ श्रमणोपासिकाएँ	३३६००० श्रमणोपासिकाएं
१५८	७	कल्पसूत्र १०००६६ श्रमणोपासक	१६६००० श्रमणोपासक
१५८	८	कल्पसूत्र ३०००३६ श्रमणोपासिकाएं	३३६००० श्रमणोपासिका
१६५	१०	में दुवारा नेमिनाह् चरिउ का उल्लेख हो गया है।	
१७७	८	वादेसुव	वासुदेव
१८१	१३	कृष्ण पाणिग्रहण	कृष्ण के पाणिग्रहण
२६२	१४	गजा	राजा
२६४	१८	यद्ध	युद्ध
२६६	२६	श्रयस्कर	श्रेयस्कर

इनके अतिरिक्त भी कुछ प्रूफ तथा टाइप आदि कटिंग होने से अशुद्धियां रह गई हैं उन्हें विज्ञ सुधार लें। हेमचन्द्र के नाम के पूर्व मल्लधारी छपा है वहां मलधारी पढ़ें।